मन्त्र नहीं है। यह जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है।*

द्विजवरो! आषाढ़, श्रावण अथवा भादोंकी पूर्णिमाको वेदोंका उपाकर्म बताया गया है अर्थात् उक्त तिथिसे वेदोंका स्वाध्याय प्रारम्भ किया जाता है। जबतक सूर्य दक्षिणायनके मार्गपर चलते हैं, तबतक अर्थात् साढ़े चार महीने प्रतिदिन पवित्र स्थानमें बैठकर ब्रह्मचारी एकाग्रतापूर्वक वेदोंका स्वाध्याय करे। तत्पश्चात् द्विज पुष्यनक्षत्रमें घरके बाहर जाकर वेदोंका उत्सर्ग—स्वाध्यायकी समाप्ति करे। शुक्लपक्षमें प्रातःकाल और कृष्णपक्षमें संध्याके समय वेदोंका स्वाध्याय करना चाहिये।

वेदोंका अध्ययन, अध्यापन प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करनेवाले पुरुषको नीचे लिखे अनध्यायोंके समय सदा ही अध्ययन बंद रखना चाहिये। यदि रातमें ऐसी तेज हवा चले, जिसकी सनसनाहट कानोंमें गूँज उठे तथा दिनमें धूल उड़ानेवाली आँधी चलने लगे तो अनध्याय होता है। यदि बिजलीकी चमक, मेघोंकी गर्जना, वृष्टि तथा महान् उल्कापात हो तो प्रजापति मनुने अकालिक अनध्याय बताया है—ऐसे अवसरोंपर उस समयसे लेकर दूसरे दिन उसी समयतक अध्ययन रोक देना उचित है। यदि अग्निहोत्रके लिये अग्नि प्रज्वलित करनेपर इन उत्पातोंका उदय जान पड़े तो वर्षाकालमें अनध्याय समझना चाहिये तथा वर्षासे भिन्न ऋतुमें यदि बादल दीख भी जाय तो अध्ययन रोक देना चाहिये। वर्षा-ऋतुमें और उससे भिन्न कालमें भी यदि उत्पात-सूचक शब्द, भूकम्प, चन्द्र-सूर्यादि ज्योतिर्मय ग्रहोंके उपद्रव हों तो अकालिक (उस समयसे लेकर दूसरे दिन उसी समयतक) अनध्याय समझना चाहिये। यदि प्रातःकालमें होमाग्नि प्रज्वलित होनेपर बिजलीकी गड़गड़ाहट और मेघकी गर्जना सुनायी दे तो सज्योति अनध्याय होता है अर्थात् ज्योति—सूर्यके रहनेतक ही अध्ययन बंद रहता है। इसी प्रकार रातमें भी अग्नि प्रज्वलित होनेके पश्चात् यदि उक्त उत्पात हों तो दिनकी ही भाँति सज्योति—ताराओंके दीखनेतक अनध्याय माना जाता है। धर्मकी निपुणता चाहनेवाले पुरुषोंके लिये गाँवों, नगरों तथा दुर्गन्धपूर्ण स्थानोंमें सदा ही अनध्याय रहता है। गाँवके भीतर मुर्दा रहनेपर, शूद्रकी समीपता होनेपर, रोनेका शब्द कानमें पड़नेपर तथा मनुष्योंकी भारी भीड़ रहनेपर भी सदा ही अनध्याय होता है। जलमें, आधी रातके समय, मल-मूत्रका त्याग करते समय, जूठा मुँह रहनेपर तथा श्राद्धका भोजन कर लेनेपर मनसे भी वेदका चिन्तन नहीं करना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मण एकोद्दिष्ट श्राद्धका निमन्त्रण लेकर तीन दिनोंतक वेदोंका अध्ययन बंद रखे। राजाके यहाँ सूतक (जननाशौच) हो या ग्रहणका सूतक लगा हो, तो भी तीन दिनोंतक वेद-मन्त्रोंका उच्चारण न करे। एकोद्दिष्टमें सम्मिलित होनेवाले विद्वान् ब्राह्मणके शरीरमें जबतक श्राद्धके चन्दनकी सुगन्ध और लेप रहे, तबतक वह वेद-मन्त्रका उच्चारण न करे। लेटकर, पैर फैलाकर, घुटने मोड़कर तथा शूद्रका श्राद्धान्न भोजन करके वेदाध्ययन न करे। कुहरा पड़नेपर, बाणका शब्द होनेपर, दोनों संध्याओंके समय, अमावास्या, चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा अष्टमीको भी वेदाध्ययन निषिद्ध है। वेदोंके उपाकर्मके पहले और उत्सर्गके बाद तीन राततक अनध्याय माना गया है। अष्टका तिथियोंको एक दिन-रात तथा ऋतुके अन्तकी रात्रियोंको रातभर अध्ययन निषिद्ध है। मार्गशीर्ष, पौष और माघ मासके कृष्णपक्षमें जो अष्टमी तिथियाँ आती हैं, उन्हें विद्वान् पुरुषोंने तीन अष्टकाओंके नामसे कहा है। बहेड़ा, सेमल, महुआ, कचनार और कैथ—इन वृक्षोंकी छायामें कभी वेदाध्ययन नहीं करना चाहिये। अपने सहपाठी अथवा साथ रहनेवाले ब्रह्मचारी या आचार्यकी

---

* ओङ्कारस्तत्परं ब्रह्म सावित्री स्यात्तदक्षरम्। एष मन्त्रो महायोगः सारात् सार उदाहृतः॥
योऽधीतेऽहन्यहन्येतां गायत्रीं वेदमातरम्। विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिम्॥
गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी। गायत्र्या न परं जप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते॥ (५३।५६—५८)

मृत्यु हो जानेपर तीन राततक अनध्याय माना गया है। ये अवसर वेदपाठी ब्राह्मणोंके लिये छिद्ररूप हैं, अतः अनध्याय कहे गये हैं। इनमें अध्ययन करनेसे राक्षस हिंसा करते हैं; अतः इन अनध्यायोंका त्याग कर देना चाहिये। नित्य कर्ममें अनध्याय नहीं होता। संध्योपासन भी बराबर चलता रहता है। उपाकर्ममें, उत्सर्गमें, होमके अन्तमें तथा अष्टकार्की आदि तिथियोंको वायुके चलते रहनेपर भी स्वाध्याय करना चाहिये। वेदांगों, इतिहास-पुराणों तथा अन्य धर्मशास्त्रोंके लिये भी अनध्याय नहीं है। इन सबको अनध्यायकी कोटिसे पृथक् समझना चाहिये।

यह मैंने ब्रह्मचारीके धर्मका संक्षेपसे वर्णन किया है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने शुद्ध अन्तःकरणवाले ऋषियोंके सामने इस धर्मका प्रतिपादन किया था। जो द्विज वेदका अध्ययन न करके दूसरे शास्त्रोंमें परिश्रम करता है, वह मूढ़ और वेदबाह्य माना गया है। द्विजातियोंको उससे बात नहीं करनी चाहिये। द्विजको केवल वेदोंके पाठ मात्रसे ही संतोष नहीं कर लेना चाहिये। जो केवल पाठ मात्रमें लगा रह जाता है, वह कीचड़में फँसी हुई गौकी भाँति कष्ट उठाता है। जो विधिपूर्वक वेदका अध्ययन करके उसके अर्थका विचार नहीं करता, वह मूढ़ एवं शूद्रके समान है। वह सुपात्र नहीं होता[1]। यदि कोई सदाके लिये गुरुकुलमें वास करना चाहे तो सदा उद्यत रहकर शरीर छूटनेतक गुरुकी सेवा करता रहे। वनमें जाकर विधिवत् अग्निमें होम करे तथा ब्रह्मनिष्ठ एवं एकाग्रचित्त होकर सदा स्वाध्याय करता रहे। वह भिक्षाके अन्नपर निर्भर रहकर योगयुक्त हो सदा गायत्रीका जप और शतरुद्रिय तथा विशेषतः उपनिषदोंका अभ्यास करता रहे। वेदाध्ययनके विषयमें जो यह परम प्राचीन विधि है, इसका भलीभाँति मैंने आपलोगोंसे वर्णन किया है। पूर्वकालमें श्रेष्ठ महर्षियोंके पूछनेपर दिव्यशक्तिसम्पन्न स्वायम्भुव मनुने इसका प्रतिपादन किया था।

स्नातक और गृहस्थके धर्मोंका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणो! श्रेष्ठ ब्रह्मचारी अपनी शक्तिके अनुसार एक, दो, तीन अथवा चारों वेदों तथा वेदांगोंका अध्ययन करके उनके अर्थको भलीभाँति हृदयंगम करके ब्रह्मचर्य-व्रतकी समाप्तिका स्नान करे[2]। गुरुको दक्षिणारूपमें धन देकर उनकी आज्ञा ले स्नान करना चाहिये। व्रतको पूरा करके मनको काबूमें रखनेवाला समर्थ पुरुष स्नातक होनेके योग्य है। वह बाँसकी छड़ी, अधोवस्त्र तथा उत्तरीय (चादर) धारण करे। एक जोड़ा यज्ञोपवीत और जलसे भरा हुआ कमण्डलु धारण करे। बाल और नख कटाकर स्नान आदिसे शुद्ध हो उसे छाता, साफ पगड़ी, खड़ाऊँ या जूता तथा सोनेके कुण्डल धारण करने चाहिये। ब्राह्मण सोनेकी मालाके सिवा दूसरी कोई लाल रंगकी माला न धारण करे। वह सदा श्वेत वस्त्र पहने, उत्तम गन्धका सेवन करे और वेश-भूषा ऐसी रखे, जो देखनेमें प्रिय जान पड़े। धन रहते हुए फटे और मैले वस्त्र न पहने। अधिक लाल और दूसरेके पहने हुए वस्त्र, कुण्डल, माला, जूता और खड़ाऊँको अपने काममें न लाये। यज्ञोपवीत, आभूषण, कुश और काला मृगचर्म—इन्हें अपसव्य भावसे न धारण करे। अपने योग्य स्त्रीसे विधिपूर्वक विवाह करे। स्त्री शुभ गुणोंसे युक्त, रूपवती, सुलक्षणा और योनिगत दोषोंसे रहित होनी चाहिये।

१-योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः। स सम्मूढो न सम्भाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभिः॥
न वेदपाठमात्रेण संतुष्टो वै भवेद् द्विजः। पाठमात्रावसन्नस्तु पङ्के गौरिव सीदति॥
योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थं न विचारयेत्। स सम्मूढः शूद्रकल्पः पात्रतां न प्रपद्यते॥ (५३।८८—८९)

२-वेदं वेदौ तथा वेदान् वेदाङ्गानि तथा द्विजः। अधीत्य चाधिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमः॥ (५४।१)

माताके गोत्रमें जिसका जन्म न हुआ हो, जो अपने गोत्रमें उत्पन्न न हुई हो तथा उत्तम शील और पवित्रतासे युक्त हो, ऐसी भार्यासे ब्राह्मण विवाह करे। जबतक पुत्रका जन्म न हो, तबतक केवल ऋतुकालमें स्त्रीके साथ समागम करे। इसके लिये शास्त्रोंमें जो निषिद्ध दिन हैं, उनका यत्नपूर्वक त्याग करे। षष्ठी, अष्टमी, पूर्णिमा, द्वादशी तथा चतुर्दशी—ये तिथियाँ स्त्री-समागमके लिये निषिद्ध हैं। उक्त नियमोंका पालन करनेसे गृहस्थ भी सदा ब्रह्मचारी ही माना जाता है। विवाह-कालकी अग्निको सदा स्थापित रखे और उसमें अग्निदेवताके निमित्त प्रतिदिन हवन करे। स्नातक पुरुष इन पावन नियमोंका सदा ही पालन करे।

अपने [वर्ण और आश्रमके लिये विहित] वेदोक्त कर्मका सदा आलस्य छोड़कर पालन करना चाहिये। जो नहीं करता, वह अत्यन्त भयंकर नरकोंमें पड़ता है। सदा संयमशील रहकर वेदोंका अभ्यास करे, पंच महायज्ञोंका त्याग न करे, गृहस्थोचित समस्त शुभ कार्य और संध्योपासन करता रहे। अपने समान तथा अपनेसे बड़े पुरुषोंके साथ मित्रता करे, सदा ही भगवान्‌की शरणमें रहे। देवताओंके दर्शनके लिये यात्रा करे तथा पत्नीका पालन-पोषण करता रहे। विद्वान् पुरुष लोगोंमें अपने किये हुए धर्मकी प्रसिद्धि न करे तथा पापको भी न छिपाये। सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करते हुए सदा अपने हितका साधन करे। अपनी वय, कर्म, धन, विद्या, उत्तम कुल, देश, वाणी और बुद्धिके अनुरूप आचरण करते हुए सदा विचरण करता रहे। श्रुतियों और स्मृतियोंमें जिसका विधान हो तथा साधु पुरुषोंने जिसका भलीभाँति सेवन किया हो, उसी आचारका पालन करे; अन्य कार्योंके लिये कदापि चेष्टा न करे। जिसका उसके पिताने अनुसरण किया हो तथा जिसका पितामहोंने किया हो, उसी वृत्तिसे वह भी सत्पुरुषोंके मार्गपर चले; उसका अनुसरण करनेवाला पुरुष दोषका भागी नहीं होता। प्रतिदिन स्वाध्याय करे, सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहे तथा सर्वदा सत्य बोले। क्रोधको जीते और लोभ मोहका परित्याग कर दे। गायत्रीका जप तथा पितरोंका श्राद्ध करनेवाला गृहस्थ मुक्त हो जाता है। माता-पिताके हितमें संलग्न, ब्राह्मणोंके कल्याणमें तत्पर, दाता, याज्ञिक और वेदभक्त गृहस्थ ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। सदा ही धर्म, अर्थ एवं कामका सेवन करते हुए प्रतिदिन देवताओंका पूजन करे और शुद्धभावसे उनके चरणोंमें मस्तक झुकाये। बलिवैश्वदेवके द्वारा सबको अन्नका भाग दे। निरन्तर क्षमाभाव रखे और सबपर दयाभाव बनाये रहे। ऐसे पुरुषको ही गृहस्थ कहा गया है; केवल घरमें रहनेसे कोई गृहस्थ नहीं हो सकता।

क्षमा, दया, विज्ञान, सत्य, दम, शम, सदा अध्यात्मचिन्तन तथा ज्ञान—ये ब्राह्मणके लक्षण हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मणको उचित है कि वह विशेषतः इन गुणोंसे कभी च्युत न हो। अपनी शक्तिके अनुसार धर्मका अनुष्ठान करते हुए निन्दित कर्मोंको त्याग दे। मोहरूपी कीचड़को धोकर परम उत्तम ज्ञानयोगको प्राप्त करके गृहस्थ पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।

निन्दा, पराजय, आक्षेप, हिंसा, बन्धन और वधको तथा दूसरोंके क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंको सह लेना 'क्षमा' है। अपने दुःखमें करुणा तथा दूसरोंके दुःखमें सौहार्द—स्नेहपूर्ण सहानुभूतिके होनेको मुनियोंने 'दया' कहा है, जो धर्मका साक्षात् साधन है। छहों अंग, चारों वेद, मीमांसा, विस्तृत न्याय-शास्त्र, पुराण और धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्याएँ हैं। इन चौदह विद्याओंको यथार्थरूपसे धारण करना—इसीको 'विज्ञान' समझना चाहिये। जिससे धर्मकी वृद्धि होती है। विधिपूर्वक विद्याका अध्ययन करके तथा धनका उपार्जन कर धर्म-कार्यका अनुष्ठान करे—इसे भी 'विज्ञान' कहते हैं। सत्यसे मनुष्यलोकपर विजय पाता है, वह सत्य ही परम पद है। जो बात जैसी हुई हो उसे उसी रूपमें कहनेको मनीषी पुरुषोंने 'सत्य' कहा है। शरीरकी उपरामताका नाम 'दम' है। बुद्धिकी निर्मलतासे 'शम' सिद्ध होता है। अक्षर (अविनाशी) पदको 'अध्यात्म' समझना चाहिये; जहाँ जाकर मनुष्य शोकमें नहीं पड़ता। जिस विद्यासे षड्विध

ऐश्वर्ययुक्त परम देवता साक्षात् भगवान् हृषीकेशका ज्ञान होता है, उसे 'ज्ञान' कहा गया है। जो विद्वान् ब्राह्मण उस ज्ञानमें स्थित, भगवत्परायण, सदा ही क्रोधसे दूर रहनेवाला, पवित्र तथा महायज्ञके अनुष्ठानमें तत्पर रहनेवाला है, वह उस उत्तम पदको प्राप्त कर लेता है। यह मनुष्य-शरीर धर्मका आश्रय है, इसका यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये; क्योंकि देहके बिना कोई भी पुरुष परमात्मा श्रीविष्णुका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। द्विजको चाहिये कि वह सदा नियमपूर्वक रहकर धर्म, अर्थ और कामके साधनमें लगा रहे। धर्महीन काम या अर्थका कभी मनसे चिन्तन भी न करे। धर्मपर चलनेसे कष्ट हो, तो भी अधर्मका आचरण नहीं करना चाहिये; क्योंकि धर्म-देवता साक्षात् भगवान्के स्वरूप हैं; वे ही सब प्राणियोंकी गति हैं। द्विज सब भूतोंका प्रिय करनेवाला बने; दूसरोंके प्रति द्रोहभावसे किये जानेवाले कर्ममें मन न लगाये; वेदों और देवताओंकी निन्दा न करे तथा निन्दा करनेवालोंके साथ निवास भी न करे। जो ब्राह्मण प्रतिदिन नियमपूर्वक रहकर पवित्रताके साथ इस धर्माध्यायको पढ़ता, पढ़ाता अथवा सुनाता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है।*

---

* श्रुतिस्मृत्युदितः सम्यक्साधुभिर्यश्च सेवितः। तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित्॥
येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति॥
नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान्। सत्यवादी जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः॥
सावित्रीजापनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यते गृही। मातापित्रोर्हिते युक्तो ब्राह्मणस्य हिते रतः॥
दाता यज्वा वेदभक्तो ब्रह्मलोके महीयते। त्रिवर्गसेवी सततं देवानां च समर्चनम्॥
कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत्प्रयतः सुरान्। विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः॥
....। गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत्॥
क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः। अध्यात्मनित्यता ज्ञानमेतद् ब्राह्मणलक्षणम्॥
एतस्मान्न प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तमः। यथाशक्ति चरन् धर्मं निन्दितानि विवर्जयेत्॥
विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम्। गृहस्थो मुच्यते बन्धान्नात्र कार्या विचारणा॥
विगर्हातिक्रमाक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम्। अन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणं क्षमा॥
स्वदुःखेषु च कारुण्यं परदुःखेषु सौहृदम्। दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य साधनम्॥
अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥
चतुर्दशानां विद्यानां धारणा हि यथार्थतः। विज्ञानमिति तद्विद्याद्येन धर्मो विवर्धते॥
अधीत्य विधिवद्विद्यामर्थं चैवोपलभ्य तु। धर्मकार्याणि कुर्वीत ह्येतद्विज्ञानमुच्यते॥
सत्येन लोकाञ्जयति सत्यं तत्परमं पदम्। यथाभूतप्रवादं तु सत्यमाहुर्मनीषिणः॥
दमः शरीरोपरतिः शमः प्रज्ञाप्रसादतः। अध्यात्ममक्षरं विद्याद्यत्र गत्वा न शोचति॥
यया स देवो भगवान् विद्यया वेद्यते परः। साक्षाद्देवो हृषीकेशस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम्॥
तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधनः शुचिः। महायज्ञपरो विप्रो लभते तदनुत्तमम्॥
धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं परिपालयेत्। न हि देहं विना विष्णुः पुरुषैर्विद्यते परः॥
नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः। न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत्॥
सीदन्नपि हि धर्मेण न त्वधर्मं समाचरेत्। धर्मो हि भगवान् देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु॥
भूतानां प्रियकारी स्यान्न परद्रोहकर्मधीः। न वेददेवतानिन्दां कुर्यात्तैश्च न संवसेत्॥
यस्त्विमं नियतो विप्रो धर्माध्यायं पठेच्छुचिः। अध्यापयेच्छ्रावयेद्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

(५८।१८—४१)

व्यावहारिक शिष्टाचारका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणो! किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे। कभी झूठ न बोले। अहित करनेवाला तथा अप्रिय वचन मुँहसे न निकाले। कभी चोरी न करे। किसी दूसरेकी वस्तु—चाहे वह तिनका, साग, मिट्टी या जल ही क्यों न हो—चुरानेवाला मनुष्य नरकमें पड़ता है। राजासे, शूद्रसे, पतितसे तथा दूसरे किसीसे भी दान न ले। यदि विद्वान् ब्राह्मण असमर्थ हो—उसका दान लिये बिना काम न चले, तो भी उसे निन्दित पुरुषोंको तो त्याग ही देना चाहिये। कभी याचक न बने; [याचना करे भी, तो] एक ही पुरुषसे दुबारा याचना न करे। इस प्रकार सदा या बारंबार माँगनेवाला याचक कभी-कभी दुर्बुद्धि दाताका प्राण भी ले लेता है। श्रेष्ठ द्विज विशेषतः देवसम्बन्धी द्रव्यका अपहरण न करे तथा ब्राह्मणका धन तो कभी आपत्ति पड़नेपर भी न ले। विषको विष नहीं कहते; ब्राह्मण और देवताका धन ही विष कहलाता है; अतः सर्वदा प्रयत्नपूर्वक उससे बचा रहे।[1]

द्विजो! देवपूजाके लिये सदा एक ही स्थानसे मालिककी आज्ञा लिये बिना फूल नहीं तोड़ने चाहिये। विद्वान् पुरुष केवल धर्मकार्यके लिये दूसरेके घास, लकड़ी, फल और फूल ले सकता है; किन्तु इन्हें सबके सामने—दिखाकर ले जाना चाहिये। जो इस प्रकार नहीं करता, वह गिर जाता है। विप्रगण! जो लोग कहीं मार्गमें हों और भूखसे पीड़ित हों, वे ही किसी खेतसे मुट्ठीभर तिल, मूँग या जौ आदि ले सकते हैं अन्यथा जो भूखे एवं राही न हों, वे उन वस्तुओंको लेनेके अधिकारी नहीं हैं—यही मर्यादा है। जो वास्तवमें अलिंगी है—जिसने किसी आश्रमका चिह्न नहीं ग्रहण किया है, वह भी यदि दिखावेके तौरपर आश्रमविशेषका चिह्न—उसकी वेश-भूषा धारण करके जीविका चलाता है तो वह वास्तविक लिंगी (आश्रमचिह्नधारी) पुरुषके पापको ग्रहण करता है तथा तिर्यग्योनिमें जन्म लेता है। नीच पुरुषसे याचना, योनिसम्बन्ध, सहवास और बातचीत करनेवाला द्विज गिर जाता है; अतः इन सब बातोंसे यत्नपूर्वक दूर रहना चाहिये। देवद्रोह और गुरुद्रोह न करे; देवद्रोहसे भी गुरुद्रोह कोटि-कोटिगुना अधिक है तथा उससे भी करोड़गुना अधिक है दूसरे लोगोंपर लांछन लगाना और ईश्वर तथा परलोकपर अविश्वास करना। कुत्सित विचार, क्रियालोप, वेदोंके न पढ़ने और ब्राह्मणका तिरस्कार करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं। असत्यभाषण, परस्त्रीसंगम, अभक्ष्यभक्षण तथा अपने कुलधर्मके विरुद्ध आचरण करनेसे कुलका शीघ्र ही नाश हो जाता है।[2]

जो गाँव अधार्मिकोंसे भरा हो तथा जहाँ रोगोंकी अधिकता हो, वहाँ निवास न करे। शूद्रके राज्यमें तथा पाखण्डियोंसे घिरे हुए स्थानमें भी न रहे। द्विज हिमालय और विन्ध्याचलके तथा पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्रके बीचके पवित्र देशको छोड़कर अन्यत्र निवास न करे। जिस देशमें कृष्णसार मृग सदा स्वभावतः विचरण करता है अथवा पवित्र एवं प्रसिद्ध नदियाँ प्रवाहित होती हैं, वहीं द्विजको निवास करना चाहिये। श्रेष्ठ द्विजको उचित है कि नदी-तटसे आधे कोसकी भूमि छोड़कर अन्यत्र

१—न हिंस्यात् सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत् क्वचित्। नाहितं नाप्रियं वाक्यं न स्तेनः स्यात् कदाचन॥
तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव वा। परस्यापहरञ्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते॥
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयान्न शूद्रात् पतितादपि। न चान्यस्मादशक्तश्चेन्निन्दितान् वर्जयेद् बुधः॥
नित्यं याचनको न स्यात् पुनस्तं नैव याचयेत्। प्राणानपहरत्येष याचकस्तस्य दुर्मतिः॥
न देवद्रव्यहारी स्याद् विशेषेण द्विजोत्तमः। ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापद्यपि कदाचन॥
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते। देवस्वं चापि यत्नेन सदा परिहरेत्ततः॥ (५५। १—६)

२—अनृतात् पारदार्याच्च तथाभक्ष्यस्य भक्षणात्। अगोत्रधर्माचरणात् क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्॥ (५५। १८)

निवास न करे। चाण्डालोंके गाँवके समीप नहीं रहना चाहिये। पतित, चाण्डाल, पुल्कस (निषादसे शूद्रामें उत्पन्न), मूर्ख, अभिमानी, अन्त्यज तथा अन्त्यावसायी (निषादकी स्त्रीमें चाण्डालसे उत्पन्न) पुरुषोंके साथ कभी निवास न करे। एक शय्यापर सोना, एक आसनपर स्थित होना, एक पंक्तिमें बैठना, एक बर्तनमें खाना, दूसरोंके पके हुए अन्नको अपने अन्नमें मिलाकर भोजन करना, यज्ञ करना, पढ़ाना, विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना, साथ बैठकर भोजन करना, साथ-साथ पढ़ना और एक साथ यज्ञ कराना ये संकरताका प्रसार करनेवाले ग्यारह सांकर्यदोष बताये गये हैं। समीप रहनेसे भी मनुष्योंके पाप एक दूसरेमें फैल जाते हैं। इसलिये पूरा प्रयत्न करके सांकर्यदोषसे बचना चाहिये। जो रास्ता आदिसे सीमा बनाकर एक पंक्तिमें बैठते और एक दूसरेका स्पर्श नहीं करते, उनमें संकरताका दोष नहीं आता। अग्नि, भस्म, जल, विशेषतः द्वार, खंभा तथा मार्ग—इन छःसे पंक्तिका भेद (पृथक्करण) होता है।

अकारण वैर न करे, विवादसे दूर रहे, किसीकी चुगली न करे, दूसरेके खेतमें चरती हुई गौका समाचार कदापि न कहे। चुगलखोरके साथ न रहे, किसीको चुभनेवाली बात न कहे। सूर्यमण्डलका घेरा, इन्द्रधनुष, बाणसे प्रकट हुई आग, चन्द्रमा तथा सोना—इन सबकी ओर विद्वान् पुरुष दूसरेका ध्यान आकृष्ट न करे। बहुत-से मनुष्यों तथा भाई-बन्धुओंके साथ विरोध न करे। जो बर्ताव अपने लिये प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरोंके लिये भी न करे। द्विजवरो! रजस्वला स्त्री अथवा अपवित्र मनुष्यके साथ बातचीत न करे। देवता, गुरु और ब्राह्मणके लिये किये जानेवाले दानमें रुकावट न डाले। अपनी प्रशंसा न करे तथा दूसरेकी निन्दाका त्याग कर दे। वेदनिन्दा और देवनिन्दाका यत्नपूर्वक त्याग करे।[1] मुनीश्वरो! जो द्विज देवताओं, ऋषियों अथवा वेदोंकी निन्दा करता है, शास्त्रोंमें उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं देखा गया है। जो गुरु, देवता, वेद अथवा उसका विस्तार करनेवाले इतिहास-पुराणकी निन्दा करता है, वह मनुष्य सौ करोड़ कल्पसे अधिक कालतक रौरव नरकमें पकाया जाता है। जहाँ इनकी निन्दा होती हो, वहाँ चुप रहे; कुछ भी उत्तर न दे। कान बंद करके वहाँसे चला जाय। निन्दा करनेवालेकी ओर दृष्टिपात न करे।[2] विद्वान् पुरुष दूसरोंकी निन्दा न करे। अच्छे पुरुषोंके साथ कभी विवाद न करे, पापियोंके पापकी चर्चा न करे। जिनपर झूठा कलंक लगाया जाता है, उन मनुष्योंके रोनेसे जो आँसू गिरते हैं, वे मिथ्या कलंक लगानेवालोंके पुत्रों और पशुओंका विनाश कर डालते हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरुपत्नीगमन आदि पापोंसे शुद्ध होनेका उपाय वृद्ध पुरुषोंने देखा है; किन्तु मिथ्या कलंक लगानेवाले मनुष्यकी शुद्धिका कोई उपाय नहीं देखा गया है।[3]

बिना किसी निमित्तके सूर्य और चन्द्रमाको उदयकालमें न देखे; उसी प्रकार अस्त होते हुए, जलमें प्रतिबिम्बित, मेघसे ढके हुए, आकाशके मध्यमें स्थित, छिपे हुए तथा दर्पण आदिमें छायाके रूपमें दृष्टिगोचर होते हुए सूर्य-चन्द्रमाको भी न देखे। नंगी स्त्री और नंगे पुरुषकी ओर भी कभी दृष्टिपात न करे। मल-मूत्रको न देखे; मैथुनमें प्रवृत्त पुरुषकी ओर दृष्टि न डाले। विद्वान् पुरुष अपवित्र अवस्थामें सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी

१-न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दां च वर्जयेत्। वेदनिन्दां देवनिन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ (५५। ४५)

२-निन्दयेद्वा गुरुं देवं वेदं वा सोपबृंहणम्। कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः॥
तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात् किञ्चिदुत्तरम्। कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैतमवलोकयेत्॥ (५५। ४८-४९)

३-नृणां मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात्। तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम्॥
ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेये गुर्वङ्गनागमे। दृष्टं हि शोधनं वृद्धैर्नास्ति मिथ्याभिशंसिने॥ (५५। ५२-५३)

ओर न देखे। उच्छिष्ट अवस्थामें या कपड़ेसे अपने सारे बदनको ढककर दूसरेसे बात न करे। क्रोधमें भरे हुए गुरुके मुखपर दृष्टि न डाले। तेल और जलमें अपनी परछाईं न देखे। भोजन समाप्त हो जानेपर जूठी पंक्तिकी ओर दृष्टिपात न करे। बन्धनसे खुले हुए और मतवाले हाथीकी ओर दृष्टि न डाले। पत्नीके साथ भोजन न करे। भोजन करती, छींकती, जँभाई लेती और अपनी मौजसे आसनपर बैठी हुई भार्याकी ओर दृष्टिपात न करे। बुद्धिमान् पुरुष किसी शुभ या अशुभ वस्तुको न तो लाँघे और न उसपर पैर ही रखे। कभी क्रोधके अधीन नहीं होना चाहिये। राग और द्वेषका त्याग करना चाहिये तथा लोभ, दम्भ, अवज्ञा, दोषदर्शन, ज्ञाननिन्दा, ईर्ष्या, मद, शोक और मोह आदि दोषोंको छोड़ देना चाहिये। किसीको पीड़ा न दे। पुत्र और शिष्यको शिक्षाके लिये ताड़ना दे। नीच पुरुषोंकी सेवा न करे तथा कभी तृष्णामें मन न लगाये। दीनताको यत्नपूर्वक त्याग दे। विद्वान् पुरुष किसी विशिष्ट व्यक्तिका अनादर न करे।

नखसे धरती न कुरेदे। गौको जबर्दस्ती न बिठाये। साथ साथ यात्रा करनेवालेको कहीं ठहरने या भोजन करनेके समय छोड़ न दे। नग्न होकर जलमें प्रवेश न करे। अग्निको न लाँघे। मस्तकपर लगानेसे बचे हुए तेलको शरीरमें न लगाये।[1] साँपों और हथियारोंसे खिलवाड़ न करे। अपनी इन्द्रियोंका स्पर्श न करे। रोमावलियों तथा गुप्त अंगोंको भी न छुए। अशिष्ट मनुष्यके साथ यात्रा न करे। हाथ, पैर, वाणी, नेत्र, शिश्न, उदर तथा कान आदिको चंचल न होने दे। अपने शरीर और नख आदिसे बाजेका काम न ले। अंजलिसे जल न पीये। पानीपर कभी पैर या हाथसे आघात न करे। ईंटे मारकर कभी फल या मूल न तोड़े। म्लेच्छोंकी भाषा न सीखे। पैरसे आसन न खींचे। बुद्धिमान् पुरुष अकारण नख तोड़ना, ताल ठोंकना, धरतीपर रेखा खींचना या अंगोंको मसलना आदि व्यर्थका कार्य न करे। खाद्य पदार्थको गोदमें लेकर न खाय। व्यर्थकी चेष्टा न करे। नाच-गान न करे। बाजे न बजाये। दोनों हाथ सटाकर अपना सिर न खुजलाये। जुआ न खेले। दौड़ते हुए न चले। पानीमें पेशाब या पाखाना न करे। जूठे मुँह बैठना या लेटना निषिद्ध है। नग्न होकर स्नान न करे। चलते हुए न पढ़े। दाँतोंसे नख और रोएँ न काटे। सोये हुएको न जगाये। सबेरेकी धूपका सेवन न करे। चिताके धुएँसे बचकर रहे। सूने घरमें न सोये। अकारण न थूके। भुजाओंसे तैरकर नदी पार न करे। पैरसे कभी पैर न धोये। पैरोंको आगमें न तपाये। काँसीके बर्तनमें पैर न धुलाये। देवता, ब्राह्मण, गौ, वायु, अग्नि, राजा, सूर्य तथा चन्द्रमाकी ओर पाँव न पसारे। अशुद्ध अवस्थामें शयन, यात्रा, स्वाध्याय, स्नान, भोजन तथा बाहर प्रस्थान न करे। दोनों संध्याओं तथा मध्याह्नके समय शयन, क्षौरकर्म, स्नान, उबटन, भोजन तथा यात्रा न करे। ब्राह्मण जूठे मुँह गौ, ब्राह्मण तथा अग्निका स्पर्श न करे। उन्हें पैरसे कभी न छेड़े तथा देवताकी प्रतिमाका भी जूठे मुँह स्पर्श न करे। अशुद्धावस्थामें अग्निहोत्र तथा देवता और ऋषियोंका कीर्तन न करे। अगाध जलमें न घुसे तथा अकारण न दौड़े। बायें हाथसे जल उठाकर या पानीमें मुँह लगाकर न पिये। आचमन किये बिना जलमें न उतरे। पानीमें वीर्य न छोड़े। अपवित्र तथा बिना लिपी हुई भूमि, रक्त तथा विषको लाँघकर न चले। रजस्वला स्त्रीके साथ अथवा जलमें मैथुन न करे। देवालय या श्मशानभूमिमें स्थित वृक्षको न काटे। जलमें न थूके। हड्डी, राख, ठीकरे, बाल, काँटे, भूसी, कोयले तथा कंडोंपर कभी पैर न रखे।

बुद्धिमान् पुरुष न तो अग्निको लाँघे और न कभी उसे नीचे रखे। अग्निकी ओर पैर न करे तथा मुँहसे उसे कभी न फूँके।[2] पेड़पर न चढ़े। अपवित्रावस्थामें किसीकी ओर दृष्टिपात न करे। आगमें आग न डाले तथा उसे पानी डालकर न बुझाये। अपने किसी सुहृद्की

---

१. नावगाहेदपो नग्नो वह्निं नातिक्रमेत्तथा। शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत्॥ (५५।५६-५७)

२. न चाग्निं लङ्घयेद्धीमान् नोपदध्यादधः क्वचित्। न चैनं पादतः कुर्यान्मुखेन न धमेद् बुधः॥ (५५।७०)

मृत्युका समाचार स्वयं दूसरोंको न सुनाये। माल बेचते समय बेमोलका भाव अथवा झूठा मूल्य न बताये। विद्वान्‌को उचित है कि वह मुखके निःश्वाससे और अपवित्रावस्थामें अग्निको प्रज्वलित न करे। पहलेकी की हुई प्रतिज्ञा भंग न करे। पशुओं, पक्षियों तथा व्याघ्रोंको परस्पर न लड़ाये। जल, वायु और धूप आदिके द्वारा दूसरेको कष्ट न पहुँचाये। पहले अच्छे कर्म करवाकर बादमें गुरुजनोंको धोखा न दे। सबेरे और सायंकालको रक्षाके लिये घरके दरवाजोंको बंद कर दे। विद्वान् ब्राह्मणको भोजन करते समय खड़ा होना और बातचीत करते समय हँसना उचित नहीं है। अपने द्वारा स्थापित अग्निको हाथसे न छूए तथा देरतक जलके भीतर न रहे। अग्नि-को पंखेसे, सूपसे, हाथसे अथवा मुँहसे न फूँके। विद्वान् पुरुष परायी स्त्रीसे वार्तालाप न करे। जो यज्ञ करानेयोग्य नहीं है, उसका यज्ञ न कराये। ब्राह्मण कभी अकेला न चले और समुदायसे भी दूर रहे। कभी देवालयको बायें रखकर न जाय, वस्त्रोंको कूटे नहीं और देवमन्दिरमें सोये नहीं। अधार्मिक मनुष्योंके साथ भी न चले। रोगी, शूद्र तथा पतित मनुष्योंके साथ भी यात्रा करना मना है। द्विज बिना जूतेके न चले। जल आदिका प्रबन्ध किये बिना यात्रा न करे। मार्गमें चिताको पार करके न जाय। योगी, सिद्ध, व्रतधारी, संन्यासी, देवालय, देवता तथा याज्ञिक पुरुषोंकी कभी निन्दा न करे। जान-बूझकर गौ तथा ब्राह्मणकी छायापर पैर न रखे। झाड़की धूलसे बचकर रहे। स्नान किया हुआ वस्त्र तथा घड़ेसे छलकता हुआ जल—इन दोनोंके स्पर्शसे बचना चाहिये। द्विजको उचित है कि वह अभक्ष्य वस्तुका भक्षण और नहीं पीनेयोग्य वस्तुका पान न करे।

गृहस्थधर्ममें भक्ष्याभक्ष्यका विचार तथा दान-धर्मका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—द्विजवरो! ब्राह्मणको शूद्रका अन्न नहीं खाना चाहिये; जो ब्राह्मण आपत्तिकालके बिना ही मोहवश या स्वेच्छासे शूद्रान्न भक्षण करता है, वह मरकर शूद्र-योनिमें जन्म लेता है। जो द्विज छः मासतक शूद्रके कुत्सित अन्नका भोजन करता है, वह जीते-जी ही शूद्रके समान हो जाता है और मरनेपर कुत्ता होता है। मुनीश्वरो! मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—जिसके अन्नको पेटमें रखकर प्राण-त्याग करता है, उसीकी योनिमें जन्म लेता है। नट, नाचनेवाला, चाण्डाल, चमार, समुदाय तथा वेश्या—इन छःके अन्नका परित्याग करना चाहिये। तेली, धोबी, चोर, शराब बेचनेवाले, नाचने-गानेवाले, लुहार तथा मरणाशौचसे युक्त मनुष्यका अन्न भी त्याग देना चाहिये।[1] कुम्हार, चित्रकार, सूदखोर, पतित, द्वितीय पति स्वीकार करनेवाली स्त्रीके पुत्र, अभिशापग्रस्त, सुनार, रंगमंचपर खेल दिखाकर जीवन-निर्वाह करनेवाले, व्याध, वन्ध्या, रोगी, चिकित्सक (वैद्य या डॉक्टर), व्यभिचारिणी स्त्री, हाकिम, नास्तिक, देवनिन्दक, सोमरसका विक्रय करनेवाले, स्त्रीके वशीभूत रहनेवाले, स्त्रीके उपपतिको घरमें रखनेवाले, पुरुष-परित्यक्त, कृपण, जूठा खानेवाले, महापापी, शस्त्रोंसे जीविका चलानेवाले, भयभीत तथा रोनेवाले मनुष्यका अन्न भी त्याज्य है। ब्रह्मद्वेषी और पापमें रुचि रखनेवालेका अन्न, मृतकके श्राद्धका अन्न, बलिवैश्वदेवरहित रसोईका अन्न तथा रोगीका अन्न भी नहीं खाना चाहिये। संतानहीन स्त्री, कृतघ्न, कारीगर और नाजिर तथा परिवेत्ता (बड़े भाईको अविवाहित छोड़कर अपना विवाह करनेवाले)-का अन्न भी खानेयोग्य नहीं है। पुनर्विवाहिता स्त्री तथा दिधिषू-पतिका[2] अन्न भी त्याज्य है। अवहेलना,

१-नटान्नं नर्तकान्नं च चाण्डालचर्मकारिणाम्। गणान्नं गणिकान्नं च षडन्नं च विवर्जयेत्॥
चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा। गान्धर्वलोहकारान्नं सूतकान्नं विवर्जयेत्॥ (५६। १०-११)

२-जो कामवश भाईकी विधवा पत्नीके साथ सम्भोग करता है, उसे 'दिधिषू-पति' कहते हैं। बड़ी बहिनके अविवाहित होनेपर भी यदि छोटी बहिन विवाह कर ले तो बड़ी बहिन 'दिधिषू' कहलाती है, उसका पति 'दिधिषू-पति' है।

अनादर तथा रोषपूर्वक मिला हुआ अन्न भी नहीं खाना चाहिये। गुरुका अन्न भी यदि संस्काररहित हो तो वह भोजन करनेयोग्य नहीं है। क्योंकि मनुष्यका सारा पाप अन्नमें स्थित होता है। जो जिसका अन्न खाता है, वह उसका पाप भोजन करता है।

आर्धिक (किसान), कुलमित्र (कुर्मी), गोपाल (ग्वाला), दास, नाई तथा आत्मसमर्पण करनेवाला पुरुष—इनका अन्न भोजन करनेके योग्य है। कुशीलव—चारण और क्षेत्रकर्मक—(खेतमें काम करनेवाले) इनका भी अन्न खानेयोग्य है। विद्वान् पुरुष इन्हें थोड़ी कीमत देकर इनका अन्न ग्रहण कर सकते हैं। तेलमें पकायी हुई वस्तु, गोरस, सत्तू, तिलकी खली और तेल—ये वस्तुएँ द्विजातियोंद्वारा शूद्रसे ग्रहण करनेयोग्य हैं। भाँटा, कमलनाल, कुसुम्भ, प्याज, लहसुन, शुक्त और गोंदका त्याग करना चाहिये। छत्राक तथा यन्त्रसे निकाले हुए आसव आदिका भी परित्याग करना उचित है। गाजर, मूली, कुम्हड़ा, गूलर और लौकी खानेसे द्विज गिर जाता है। रातमें तेल और दहीका यत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये। दूधके साथ मट्ठा और नमकीन अन्न नहीं मिलाना चाहिये।

जिस अन्नके प्रति दूषित भावना हो गयी हो, जो दुष्ट पुरुषोंके सम्पर्कमें आ गया हो, जिसे कुत्तेने सूँघ लिया हो, जिसपर चाण्डाल, रजस्वला स्त्री अथवा पतितोंकी दृष्टि पड़ गयी हो, जिसे गायने सूँघ लिया हो, जिसे कौए अथवा मुर्गेने छू लिया हो, जिसमें कीड़े पड़ गये हों, जो मनुष्योंद्वारा सूँघा अथवा कोढ़ीसे छू गया हो, जिसे रजस्वला, व्यभिचारिणी अथवा रोगिणी स्त्रीने दिया हो, ऐसे अन्नको त्याग देना चाहिये। दूसरेका वस्त्र भी त्याज्य है। बिना बछड़ेकी गायका, ऊँटनीका, एक खुरवाले पशु—घोड़ी आदिका, भेड़का तथा हथिनीका दूध पीनेयोग्य नहीं है—यह मनुका कथन है। मांस-भक्षण न करे। द्विजातियोंके लिये मदिरा किसीको देना, स्वयं उसे पीना, उसका स्पर्श करना तथा उसकी ओर देखना भी मना है—पाप है; उससे सदा दूर ही रहना चाहिये—यही सनातन मर्यादा है। इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके सर्वदा मद्यका त्याग करे। जो द्विज मद्य-पान करता है, वह द्विजोचित कर्मोंसे भ्रष्ट हो जाता है; उससे बात भी नहीं करनी चाहिये।[1] अतः ब्राह्मणको सदा यत्नपूर्वक अभक्ष्य एवं अपेय वस्तुओंका परित्याग करना उचित है। यदि त्याग न करके उक्त निषिद्ध वस्तुओंका सेवन करता है तो वह रौरव नरकमें जाता है।[2]

अब मैं परम उत्तम दानधर्मका वर्णन करूँगा। इसे पूर्वकालमें ब्रह्माजीने ब्रह्मवादी ऋषियोंको उपदेश किया था। योग्य पात्रको श्रद्धापूर्वक धन अर्पण करना दान कहलाता है। ओंकारके उच्चारणपूर्वक किया हुआ दान भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला होता है। दान तीन प्रकारका बतलाया जाता है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। एक चौथा प्रकार भी है, जिसे 'विमल' नाम दिया गया है। विमल दान सब प्रकारके दानोंमें परमोत्तम है। जिसका अपने ऊपर कोई उपकार न हो, ऐसे ब्राह्मणको फलकी इच्छा न रखकर प्रतिदिन जो कुछ दिया जाता है, वह 'नित्यदान' है। जो पापोंकी शान्तिके लिये विद्वानोंके हाथमें अर्पण किया जाता है, उसे श्रेष्ठ पुरुषोंने 'नैमित्तिक' दान बताया है; वह भी उत्तम दान है। जो सन्तान, विजय, ऐश्वर्य और सुखकी प्राप्तिके उद्देश्यसे दिया जाता है, उसे धर्मका विचार करनेवाले ऋषियोंने 'काम्य' दान कहा है तथा जो भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये धर्मयुक्त चित्तसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंको कुछ अर्पण किया जाता है, वह कल्याणमय दान 'विमल' (सात्त्विक) माना गया है।[3]

१—अदेयं चाप्यपेयं च तथैवास्पृश्यमेव वा। द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मद्यं नित्यं विवर्जयेत्। पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसंभाष्यो भवेद् द्विजः॥ (५६।४३-४४)

२—तस्मात् परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः। अपेयानि च विप्रो वै तथा चेद् याति रौरवम्॥ (५६।४६)

३—नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते। चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥
अहन्यहनि यत्किंचिद् दीयतेऽनुपकारिणे। अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यकम्॥

सुयोग्य पात्रके मिलनेपर अपनी शक्तिके अनुसार दान अवश्य करना चाहिये। कुटुम्बको भोजन और वस्त्र देनेके बाद जो बच रहे, उसीका दान करना चाहिये; अन्यथा कुटुम्बका भरण-पोषण किये बिना जो कुछ दिया जाता है, वह दान दानका फल देनेवाला नहीं होता। वेदपाठी, कुलीन, विनीत, तपस्वी, व्रतपरायण एवं दरिद्रको भक्तिपूर्वक दान देना चाहिये।* जो अग्निहोत्री ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक पृथ्वीका दान करता है; वह उस परमधामको प्राप्त होता है जहाँ जाकर जीव कभी शोक नहीं करता। जो मनुष्य वेदवेत्ता ब्राह्मणको गन्नोंसे भरी हुई तथा जौ और गेहूँकी खेतीसे लहलहाती हुई भूमि दान करता है, वह फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जो दरिद्र ब्राह्मणको गौके चमड़े बराबर भूमि भी प्रदान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भूमिदानसे बढ़कर इस संसारमें दूसरा कोई दान नहीं है। केवल अन्नदान उसकी समानता करता है और विद्यादान उससे अधिक है। जो शान्त, पवित्र और धर्मात्मा ब्राह्मणको विधिपूर्वक विद्यादान करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। गृहस्थ ब्राह्मणको अन्नदान करके मनुष्य उत्तम फलको प्राप्त होता है। गृहस्थको अन्न ही देना चाहिये, उसे देकर मानव परमगतिको प्राप्त होता है। वैशाखकी पूर्णिमाको विधिपूर्वक उपवास करके शान्त, पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर काले तिलों और विशेषतः मधुसे सात या पाँच ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा इससे धर्मराज प्रसन्न हों—ऐसी भावना करे। जब मनमें यह भाव स्थिर हो जाता है, उसी क्षण मनुष्यके जीवनभरके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। काले मृगचर्मपर तिल, सोना, मधु और घी रखकर जो ब्राह्मणको दान देता है, वह सब पापोंसे तर जाता है। जो विशेषतः वैशाखकी पूर्णिमाको धर्मराजके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको घी और अन्नसहित जलका घड़ा दान करता है, वह भयसे छुटकारा पा जाता है। जो सुवर्ण और तिलसहित जलके पात्रोंसे सात या पाँच ब्राह्मणोंको तृप्त करता है, वह ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। माघ मासके कृष्णपक्षमें द्वादशी तिथिको उपवास करे और श्वेत वस्त्र धारण करके काले तिलोंसे अग्निमें हवन करे। तत्पश्चात् एकाग्रचित्त हो ब्राह्मणोंको तिलोंका ही दान करे। इससे द्विज जन्मभरके किये हुए सब पापोंको पार कर जाता है। अमावास्या आनेपर देवदेवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ भी बन पड़े, तपस्वी ब्राह्मणको दान दे और सबका शासन करनेवाले इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न हों, यह भाव रखे। ऐसा करनेसे सात जन्मोंका किया हुआ पाप तत्काल नष्ट हो जाता है।

जो कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको स्नान करके ब्राह्मणके मुखमें अन्न डालकर इस प्रकार भगवान् शंकरकी आराधना करता है, उसका पुनः इस संसारमें जन्म नहीं होता। विशेषतः कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको स्नान करके चरण धोने आदिके द्वारा विधिपूर्वक पूजा करनेके पश्चात् धार्मिक ब्राह्मणको 'मुझपर महादेवजी प्रसन्न हों' इस उद्देश्यसे अपना द्रव्य दान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होता है। भक्त द्विजोंको उचित है कि वे कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, अष्टमी तथा विशेषतः अमावास्याके दिन भगवान् महादेवजीकी पूजा करें। जो एकादशीको निराहार रहकर द्वादशीको ब्राह्मणके मुखमें अन्न दे इस प्रकार पुरुषोत्तमकी अर्चना करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। यह शुक्लपक्षकी द्वादशी भगवान् विष्णुकी तिथि है। इस दिन भगवान् जनार्दनकी प्रयत्नपूर्वक आराधना करनी चाहिये। भगवान् शंकर अथवा श्रीविष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ भी पवित्र ब्राह्मणको दान

यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे। नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुत्तमम्॥
अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गसुखार्थं यत्प्रदीयते। दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः॥
यदीश्वरस्य प्रीत्यर्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते। चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद् विमलं शिवम्॥ (५३। ४—८)

* श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने। वृत्तस्थाय दरिद्राय प्रदेयं भक्तिपूर्वकम्॥ (५३। ११)

दिया जाता है, उसका अक्षय फल माना गया है। जो मनुष्य जिस देवताकी आराधना करना चाहे, उसके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंका ही यत्नपूर्वक पूजन करे, इससे वह उस देवताको संतुष्ट कर लेता है। देवता सदा ब्राह्मणोंके शरीरका आश्रय लेकर ही रहते हैं। ब्राह्मणोंके न मिलनेपर वे कहीं-कहीं प्रतिमा आदिमें भी पूजित होते हैं। प्रतिमा आदिमें बहुत यत्न करनेपर अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। अतः सदा विशेषतः द्विजोंमें ही देवताओंका पूजन करना उचित है।

ऐश्वर्य चाहनेवाला मनुष्य इन्द्रकी पूजा करे। ब्रह्मतेज और ज्ञान चाहनेवाला पुरुष ब्रह्माजीकी आराधना करे। आरोग्यकी अभिलाषा रखनेवाला पुरुष सूर्यकी, धनकी कामनावाला मनुष्य अग्निकी तथा कर्मोंकी सिद्धि चाहनेवाला पुरुष गणेशजीका पूजन करे। जो भग चाहता हो, वह चन्द्रमाकी, बल चाहनेवाला वायुकी तथा सम्पूर्ण संसार-बन्धनसे छूटनेकी अभिलाषा रखनेवाला मनुष्य यत्नपूर्वक श्रीहरिकी आराधना करे। जो योग, मोक्ष तथा ईश्वरीय ज्ञान—तीनोंकी इच्छा रखता हो, वह यत्न करके देवताओंके स्वामी महादेवजीकी अर्चना करे। जो महान् भोग तथा विविध प्रकारके ज्ञान चाहते हैं, वे भोगी पुरुष श्रीभूतनाथ महेश्वर तथा भगवान् श्रीविष्णुकी भी पूजा करते हैं। जल देनेवाले मनुष्यकी तृप्ति होती है; अतः जलदानका महत्त्व अधिक है। तेल दान करनेवालेको अनुकूल संतान और दीप देनेवालेको उत्तम नेत्रकी प्राप्ति होती है। भूमि-दान करनेवालोंको सब कुछ सुलभ होता है। सुवर्ण-दाताको दीर्घ आयु प्राप्त होती है। गृह-दान करनेवालेको श्रेष्ठ भवन और चाँदी दान करनेवालेको उत्तम रूप मिलता है। वस्त्र-दान करनेवाला चन्द्रमाके लोकमें जाता है। अश्व-दान करनेवालेको उत्तम सवारी मिलती है। अन्न-दाताको अभीष्ट सम्पत्ति और गोदान करनेवालेको सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। सवारी और शय्या-दान करनेवाले पुरुषको पत्नी मिलती है। अभय-दान करनेवालेको ऐश्वर्य प्राप्त होता है। धान्य-दाताको सनातन सुख और ब्रह्म (वेद) दान करनेवालेको शाश्वत ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

जो वेदविद्याविशिष्ट ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार अनाज देता है, वह मृत्युके पश्चात् स्वर्गका सुख भोगता है। गौओंको अन्न देनेसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है; ईंधन दान करनेसे मनुष्यकी जठराग्नि दीप्त होती है। जो ब्राह्मणोंको फल, मूल, पीनेयोग्य पदार्थ और तरह-तरहके शाक-दान करता है, वह सदा आनन्दित होता है। जो रोगीके रोगको शान्त करनेके लिये उसे औषध, तेल और आहार प्रदान करता है, वह रोगहीन, सुखी और दीर्घायु होता है। जो छत्र और जूते दान करता है, वह नरकोंके अन्तर्गत असिपत्रवन, छूरेकी धारसे युक्त मार्ग तथा तीखे तापसे बच जाता है। संसारमें जो-जो वस्तु अत्यन्त प्रिय मानी गयी है तथा जो मनुष्यके घरमें अपेक्षित है, उसीको यदि अक्षय बनानेकी इच्छा हो तो गुणवान् ब्राह्मणको उसका दान करना चाहिये। अयन-परिवर्तनके दिन, विषुव[1] नामक योग आनेपर, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें तथा संक्रान्ति आदिके अवसरोंपर दिया हुआ दान अक्षय होता है।[2] प्रयाग आदि तीर्थों, पुण्य मन्दिरों, नदियों तथा वनोंमें भी दान करके मनुष्य अक्षय फलका भागी होता है। प्राणियोंके लिये इस संसारमें दानधर्मसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। इसलिये द्विजातियोंको चाहिये कि वे श्रोत्रिय ब्राह्मणको अवश्य दान दें। ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुष स्वर्गकी प्राप्तिके लिये तथा मुमुक्षु पुरुष पापोंकी शान्तिके लिये प्रतिदिन ब्राह्मणोंको दान देते रहें।

जो पापात्मा मानव गौ, ब्राह्मण, अग्नि और देवताके लिये दी जानेवाली वस्तुको मोहवश रोक देता है, उसे पशु-पक्षियोंकी योनिमें जाना पड़ता है। जो द्रव्यका उपार्जन करके ब्राह्मणों और देवताओंका पूजन नहीं

१-तुला और मेषकी संक्रान्तिको, जब कि दिन और रात बराबर होते हैं, 'विषुव' कहते हैं।

२-अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम्॥ (५७।५८)

करता, उसका सर्वस्व छीनकर राजा उसे राज्यसे बाहर निकाल दे। जो अकालके समय ब्राह्मणोंके मरते रहनेपर भी अन्न आदिका दान नहीं करता, वह ब्राह्मण निन्दित है। ऐसे ब्राह्मणसे दान नहीं लेना चाहिये तथा उसके साथ निवास भी नहीं करना चाहिये। राजाको उचित है वह उसके शरीरमें कोई चिह्न अंकित करके उसे अपने राज्यसे बाहर कर दे। द्विजोत्तमगण! जो ब्राह्मण स्वाध्यायशील, विद्वान्, जितेन्द्रिय तथा सत्य और संयमसे युक्त हों, उन्हें दान करना चाहिये। जो सम्मानपूर्वक देता और सम्मानपूर्वक ग्रहण करता है, वे दोनों स्वर्गमें जाते हैं; इसके विपरीत आचरण करनेपर उन्हें नरकमें गिरना पड़ता है, यदि अविद्वान् ब्राह्मण चाँदी, सोना, गौ, घोड़ा, पृथ्वी और तिल आदिका दान ग्रहण करे तो सूखे ईंधनकी भाँति भस्म हो जाता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणको उचित है कि वह उत्तम ब्राह्मणोंसे धन लेनेकी इच्छा रखे। क्षत्रिय और वैश्योंसे भी वह धन ले सकता है; किन्तु शूद्रसे तो वह किसी प्रकार धन न ले।

अपनी जीविका-वृत्तिको कम करनेकी ही इच्छा रखे, धन बढ़ानेकी चेष्टा न करे; धनके लोभमें फँसा हुआ ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे ही भ्रष्ट हो जाता है। सम्पूर्ण वेदोंको पढ़कर और सब प्रकारके यज्ञोंका पुण्य पाकर भी ब्राह्मण उस गतिको नहीं पा सकता, जिसे वह संतोषसे पा लेता है।[1] दान लेनेकी रुचि न रखे। जीवन-निर्वाहके लिये जितना आवश्यक है, उससे अधिक धन ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण अधोगतिको प्राप्त होता है। जो संतोष नहीं धारण करता, वह स्वर्गलोकको पानेका अधिकारी नहीं है। वह लोभवश प्राणियोंको उद्विग्न करता है; चोरकी जैसी स्थिति है, वैसी ही उसकी भी है।[2] गुरुजनों और भृत्यजनोंके उद्धारकी इच्छा रखनेवाला पुरुष देवताओं और अतिथियोंका तर्पण करनेके लिये सब ओरसे प्रतिग्रह ले; किन्तु उसे अपनी तृप्तिका साधन न बनाये—स्वयं उसका उपभोग न करे। इस प्रकार गृहस्थ पुरुष मनको वशमें करके देवताओं और अतिथियोंका पूजन करता हुआ जितेन्द्रियभावसे रहे तो वह परमपदको प्राप्त होता है।

तदनन्तर गृहस्थ पुरुषको उचित है कि पत्नीको पुत्रोंके हवाले कर दे और स्वयं वनमें जाकर तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके सदा एकाग्रचित्त हो उदासीन भावसे अकेला विचरे। द्विजवरो! यह गृहस्थोंका धर्म है, जिसका मैंने आपलोगोंसे वर्णन किया है। इसे जानकर नियमपूर्वक आचरणमें लावे और दूसरे द्विजोंसे भी इसका अनुष्ठान करावे। जो इस प्रकार गृहस्थधर्मके द्वारा निरन्तर एक, अनादि देव ईश्वरका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण भूतयोनियोंका अतिक्रमण करके परमात्माको प्राप्त होता है, फिर संसारमें जन्म नहीं लेता।

वानप्रस्थ-आश्रमके धर्मका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—द्विजवरो! इस प्रकार आयुके दो भाग व्यतीत होनेतक गृहस्थ-आश्रममें रहकर पत्नी तथा अग्निसहित वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश करे अथवा पत्नीका भार पुत्रोंपर रखकर या पुत्रके पुत्रको देख लेनेके पश्चात् जरा-जीर्ण कलेवरको लेकर वनके लिये प्रस्थान करे। उत्तरायणका श्रेष्ठ काल आनेपर शुक्लपक्षके पूर्वाह्न-भागमें वनमें जाय और वहाँ नियमोंका पालन करते हुए एकाग्रचित्त होकर तपस्या करे। प्रतिदिन फल-मूलका पवित्र आहार ग्रहण करे। जैसा अपना आहार हो, उसीसे देवताओं और पितरोंका पूजन किया करे। नित्यप्रति अतिथि-सत्कार करता रहे। स्नान करके देवताओंकी पूजा करे। घरसे लाकर एकाग्रचित्त हो आठ

१-वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः। न तां गतिमवाप्नोति संतोषाद् यामवाप्नुयात्॥ (५७। ७२)

२-यस्तु याति न संतोषं न स स्वर्गस्य भाजनम्। उद्वेजयति भूतानि यथा चौरस्तथैव सः॥ (५७। ७३)

ग्रास भोजन करे। सदा जटा धारण किये रहे। नख और रोएँ न कटाये। सर्वथा स्वाध्याय किया करे। अन्य समयमें मौन रहे। अग्निहोत्र करता रहे तथा अपने-आप उत्पन्न हुए भाँति-भाँतिके पदार्थों और शाक या मूल-फलके द्वारा पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान करे। सदा फटा-पुराना वस्त्र पहने। तीनों समय स्नान करे। पवित्रतासे रहे। प्रतिग्रह न लेकर सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करता रहे।

द्विजको चाहिये कि वह नियमपूर्वक दर्श एवं पौर्णमास नामक यज्ञोंका अनुष्ठान करे। ऋत्विष्टि, आग्रयण तथा चातुर्मास्य व्रतोंका भी आचरण करे। क्रमशः उत्तरायण और दक्षिणायन यज्ञ करे। वसन्त और शरद्-ऋतुओंमें उत्पन्न हुए पवित्र पदार्थोंको स्वयं लाकर उनके द्वारा पुरोडाश और चरु बनाये और विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् देवताओंको अर्पण करे। परम पवित्र जंगली अन्नद्वारा निर्मित हविष्यका देवताओंके निमित्त हवन करके स्वयं भी यज्ञ-शेष अन्नका भोजन करे। मद्य-मांसका त्याग करे। जमीनपर उगा हुआ तृण, घास तथा बहेड़ेके फल न खाय। हलसे जोते हुए खेतका अन्न किसीके देनेपर भी न खाय; कष्टमें पड़नेपर भी ग्रामीण फूलों और फलोंका उपभोग न करे। श्रौत-विधिके अनुसार सदा अग्निदेवकी उपासना—अग्निहोत्र करता रहे। किसी भी प्राणीसे द्रोह न करे। निर्द्वन्द्व और निर्भय रहे। रातमें कुछ भी न खाय, उस समय केवल परमात्माके ध्यानमें संलग्न रहे। इन्द्रियोंको वशमें करके क्रोधको काबूमें रखे। तत्त्वज्ञानका चिन्तन करे। सदा ब्रह्मचर्यका पालन करता रहे। अपनी पत्नीमें भी संसर्ग न करे। जो पत्नीके साथ वनमें जाकर कामनापूर्वक मैथुन करता है, उसका वानप्रस्थ-व्रत नष्ट हो जाता है तथा वह द्विज प्रायश्चित्तका भागी होता है। वहाँ उससे जो बच्चा पैदा होता है, वह द्विजातियोंके स्पर्श करनेयोग्य नहीं रहता। उस बालकका वेदाध्ययनमें अधिकार नहीं होता। यही बात उसके वंशमें होनेवाले अन्य लोगोंके लिये भी लागू होती है। वानप्रस्थोंको सदा भूमिपर शयन करना और गायत्रीके जपमें तत्पर रहना चाहिये। वह सब भूतोंकी रक्षामें तत्पर रहे तथा सत्-पुरुषोंको सदा अन्नका भाग देता रहे। उसे निन्दा, मिथ्या अपवाद, अधिक निद्रा और आलस्यका परित्याग करना चाहिये। वह एकमात्र अग्निका सेवन करे। कोई घर बनाकर न रहे। भूमिपर जल छिड़ककर बैठे। जितेन्द्रिय होकर मृगोंके साथ विचरे और उन्हींके साथ निवास करे। एकाग्रचित्त होकर पत्थर या कंकड़पर सो रहे। वानप्रस्थ-आश्रमके नियममें स्थित होकर केवल फूल, फल और मूलके द्वारा सदा जीवन-निर्वाह करे। वह भी तोड़कर नहीं; जो स्वभावतः पककर अपने-आप झड़ गये हों, उन्हींका उपभोग करे। पृथ्वीपर लोटता रहे अथवा पंजोंके बलपर दिनभर खड़ा रहे। कभी धैर्यका त्याग न करे।

गर्मीमें पंचाग्निका सेवन करे। वर्षाके समय खुले मैदानमें रहे। हेमन्त-ऋतुमें भीगा वस्त्र पहने रहे। इस प्रकार क्रमशः अपनी तपस्याको बढ़ाता रहे। तीनों समय स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। एक पैरसे खड़ा रहे अथवा सदा सूर्यकी किरणोंका पान करे। पंचाग्निके धूम, गर्मी अथवा सोमरसका पान करे। शुक्लपक्षमें जल और कृष्णपक्षमें गोबरका पान करे अथवा सूखे पत्ते चबाकर रहे अथवा और किसी क्लेशमय वृत्तिसे सदा जीवन-निर्वाह करे। योगाभ्यासमें तत्पर रहे। प्रतिदिन रुद्राष्टाध्यायीका पाठ किया करे। अथर्ववेदका अध्ययन और वेदान्तका अभ्यास करे। आलस्य छोड़कर सदा यम नियमोंका सेवन करे। काला मृगचर्म और उत्तरीय वस्त्र धारण करे। श्वेत यज्ञोपवीत पहने। अग्नियोंको अपने आत्मामें आरोपित करके ध्यानपरायण हो जाय अथवा अग्नि और गृहसे रहित हो मुनिभावसे रहते हुए मोक्षपरायण हो जाय। यात्राके समय तपस्वी ब्राह्मणोंसे ही भिक्षा ग्रहण करे अथवा वनमें निवास करनेवाले अन्य गृहस्थ द्विजोंसे भी वह भिक्षा ले सकता है। यह भी सम्भव न हो तो वह गाँवसे ही आठ ग्रास लाकर भोजन करे और सदा वनमें ही रहे। दोनेमें, हाथमें अथवा टुकड़ेमें लेकर खाय। आत्मज्ञानके लिये नाना प्रकारके उपनिषदोंका अभ्यास

करे। किसी विशेष मन्त्र, गायत्री-मन्त्र तथा रुद्राष्टाध्यायीका जप करता रहे अथवा वह महाप्रस्थान आमरण यात्रा आरम्भ करके निरन्तर उपवास करे अथवा ब्रह्मार्पण-विधिमें स्थित होकर और कोई ऐसा ही कार्य करे।

संन्यास-आश्रमके धर्मका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार आयुके तीसरे भागको वानप्रस्थ-आश्रममें व्यतीत करके क्रमशः चतुर्थ भागको संन्यासके द्वारा बिताये। उस समय द्विजको उचित है कि वह अग्नियोंको अपनेमें स्थापित करके परिव्राजक—संन्यासी हो जाय और योगाभ्यासमें तत्पर, शान्त तथा ब्रह्मविद्या-परायण रहे। जब मनमें सब वस्तुओंकी ओरसे वैराग्य हो जाय, उस समय संन्यास लेनेकी इच्छा करे। इसके विपरीत आचरण करनेपर वह गिर जाता है। प्राजापत्य अथवा आग्नेयी इष्टिका अनुष्ठान करके मनकी वासना धुल जानेपर जितेन्द्रियभावसे ब्रह्माश्रम—संन्यासमें प्रवेश करे। संन्यासी तीन प्रकारके बताये गये हैं—कोई तो ज्ञानसंन्यासी होते हैं, कुछ वेदसंन्यासी होते हैं तथा कुछ दूसरे कर्मसंन्यासी होते हैं। जो सब ओरसे मुक्त, निर्द्वन्द्व और निर्भय होकर आत्मामें ही स्थित रहता है, उसे 'ज्ञानसंन्यासी' कहा जाता है। जो कामना और परिग्रहका त्याग करके मुक्तिकी इच्छासे जितेन्द्रिय होकर सदा वेदका ही अभ्यास करता रहता है, वह 'वेदसंन्यासी' कहलाता है। जो द्विज अग्निको अपनेमें लीन करके स्वयं ब्रह्ममें समर्पित हो जाता है, उसे महायज्ञपरायण 'कर्मसंन्यासी' जानना चाहिये।* इन तीनोंमें ज्ञानी सबसे श्रेष्ठ माना गया है। उस विद्वान्‌के लिये कोई कर्तव्य या आश्रम-चिह्न आवश्यक नहीं रहता। संन्यासीको ममता और भयसे रहित, शान्त एवं निर्द्वन्द्व होना चाहिये। वह पत्ता खाकर रहे, पुराना कौपीन पहने अथवा नंगा रहे। उसे ज्ञानपरायण होना चाहिये। वह ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए आहारको जीते और भोजनके लिये बस्तीसे अन्न माँग लाया करे। वह अध्यात्मतत्त्वके चिन्तनमें अनुरक्त हो सब ओरसे निरपेक्ष रहे और भोग्य वस्तुओंका परित्याग कर दे। केवल आत्माको ही सहायक बनाकर आत्मसुखके लिये इस संसारमें विचरता रहे। जीवन या मृत्यु—किसीका अभिनन्दन न करे। जैसे सेवक स्वामीके आदेशकी प्रतीक्षा करता रहता है, उसी प्रकार संन्यासी कालकी ही प्रतीक्षा करे। उसे कभी अध्ययन, प्रवचन अथवा श्रवण नहीं करना चाहिये।

इस प्रकार ज्ञानपरायण योगी ब्रह्मभावका अधिकारी होता है। विद्वान् संन्यासी एक वस्त्र धारण करे अथवा केवल कौपीन धारण किये रहे। सिर मुँड़ाये रहे या बाल बढ़ाये रखे। त्रिदण्ड धारण करे, किसी वस्तुका संग्रह न करे। गेरुए रंगका वस्त्र पहने और सदा ध्यानयोगमें तत्पर रहे। गाँवके समीप किसी वृक्षके नीचे अथवा देवालयमें रहे। शत्रु और मित्रमें तथा मान और अपमानमें समानभाव रखे। सदा भिक्षासे ही जीवन निर्वाह करे। कभी एक स्थानके अन्नका भोजन न करे। जो संन्यासी मोहवश या और किसी कारणसे एक जगहका अन्न खाने लगता है, धर्मशास्त्रोंमें उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं देखा गया है। संन्यासीका चित्त राग-द्वेषसे रहित होना चाहिये। उसे मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णको एक-सा समझना चाहिये तथा प्राणियोंकी हिंसासे दूर रहना चाहिये। वह मौनभावका

* ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् वेदसंन्यासिनोऽपरे। कर्मसंन्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधाः परिकीर्तिताः॥
यः सर्वत्र विनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भयः। प्रोच्यते ज्ञानसंन्यासी आत्मन्येव व्यवस्थितः॥
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं निराशीर्निष्परिग्रहः। प्रोच्यते वेदसंन्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः॥
यस्त्वग्निमात्मसात् कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विजः। ज्ञेयः स कर्मसंन्यासी महायज्ञपरायणः॥ (५९।५—८)

आश्रय ले सबसे निःस्पृह रहे। संन्यासी भलीभाँति देख-भालकर आगे पैर रखे। वस्त्रसे छानकर जल पिये। सत्यसे पवित्र हुई वाणी बोले तथा मनसे जो पवित्र जान पड़े, उसीका आचरण करे।[1]

संन्यासीको उचित है कि वह वर्षाकालके सिवा और किसी समय एक स्थानपर निवास न करे। स्नान करके शौचाचारसे सम्पन्न रहे। सदा हाथमें कमण्डलु लिये रहे। ब्रह्मचर्य-पालनमें संलग्न होकर सदा वनमें ही निवास करे। मोक्षसम्बन्धी शास्त्रोंके विचारमें तत्पर रहे। ब्रह्मसूत्रका ज्ञान रखे और जितेन्द्रियभावसे रहे। संन्यासी यदि दम्भ एवं अहंकारसे मुक्त, निन्दा और चुगलीसे रहित तथा आत्मज्ञानके अनुकूल गुणोंसे युक्त हो तो वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यति विधिपूर्वक स्नान और आचमन करके पवित्र हो देवालय आदिमें प्रणव नामक सनातन देवताका निरन्तर जप करता रहे। वह यज्ञोपवीतधारी एवं शान्त-चित्त होकर हाथमें कुश धारण करके धुला हुआ गेरुआ वस्त्र पहने, सारे शरीरमें भस्म रमाये, वेदान्तप्रतिपादित अधियज्ञ, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक ब्रह्मका एकाग्रभावसे चिन्तन करे। जो सदा वेदका ही अभ्यास करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। अहिंसा, सत्य, चोरीका अभाव, ब्रह्मचर्य, उत्तम तप, क्षमा, दया और संतोष—ये संन्यासीके विशेष व्रत हैं। वह प्रतिदिन स्वाध्याय तथा दोनों संध्याओंके समय गायत्रीका जप करे। एकान्तमें बैठकर निरन्तर परमेश्वरका ध्यान करता रहे। सदा एक स्थानके अन्नका त्याग करे; साथ ही काम, क्रोध तथा संग्रहको भी त्याग दे। वह एक या दो वस्त्र पहनकर शिखा और यज्ञोपवीत धारण किये हाथमें कमण्डलु लिये रहे। इस प्रकार त्रिदण्ड धारण करनेवाला विद्वान् संन्यासी परमपदको प्राप्त होता है।

संन्यासीके नियम

व्यासजी कहते हैं—द्विजवरो! इस प्रकार आश्रममें निष्ठा रखनेवाले तथा नियमित जीवन बितानेवाले संन्यासियोंके लिये फल-मूल अथवा भिक्षासे जीवन-निर्वाहकी बात कही गयी। उसे एक ही समय भिक्षा माँगनी चाहिये। अधिक भिक्षाके संग्रहमें आसक्त नहीं होना चाहिये; क्योंकि भिक्षामें आसक्त होनेवाला संन्यासी विषयोंमें भी आसक्त हो जाता है। सात घरोंतक भिक्षाके लिये जाय। यदि उनमें न मिले तो फिर न माँगे। भिक्षुको चाहिये कि वह एक बार भिक्षाका नाम लेकर चुप हो जाय और नीचे मुँह किये एक द्वारपर उतनी ही देरतक खड़ा रहे, जितनी देरमें एक गाय दुही जाती है। भिक्षा मिल जानेपर हाथ-पैर धोकर विधिपूर्वक आचमन करे और पवित्र हो मौन-भावसे भोजन करे।[2] पहले वह अन्न सूर्यको दिखा ले; फिर पूर्वाभिमुख हो पाँच बार प्राणाग्निहोत्र करके अर्थात् **'प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा,'**—इन मन्त्रोंसे पाँच ग्रास अन्न मुँहमें डालकर एकाग्रचित्त हो आठ ग्रास अन्न भोजन करे। भोजनके पश्चात् आचमन करके भगवान् ब्रह्माजी एवं परमेश्वरका ध्यान करे। तूँबी, लकड़ी, मिट्टी तथा बाँस—इन्हीं चारोंके बने हुए पात्र संन्यासीके उपयोगमें आते हैं, ऐसा प्रजापति मनुका कथन है। रातके पहले पहरमें मध्यरात्रिमें तथा रातके पिछले पहरमें विश्वकी उत्पत्तिके कारण एवं विश्व-नामसे प्रसिद्ध ईश्वरको अपने हृदय-कमलमें स्थापित करके ध्यान-सम्बन्धी विशेष श्लोकों एवं मन्त्रोंके द्वारा उनका इस प्रकार

---

1. दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्। सत्यपूतां वदेद्वाणीं मनःपूतं समाचरेत्॥ (५९। १९)

2. सप्तागारं चरेद् भैक्षमलाभे न पुनश्चरेत्। गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालं भिक्षुरधोमुखः॥
भिक्षेत्युक्त्वा सकृत्तूष्णीमश्नीयाद् वाग्यतः शुचिः। प्रक्षाल्य पाणिपादं च समाचम्य यथाविधि॥ (६०। ३-४)

चिन्तन करे। परमेश्वर सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा, अज्ञानमय अन्धकारसे परे विराजमान, सबके आधार, अव्यक्त-स्वरूप, आनन्दमय, ज्योतिर्मय, अविनाशी, प्रकृति और पुरुषसे अतीत, आकाशकी भाँति निर्लेप, परम कल्याणमय, समस्त भावोंकी चरम सीमा, सबका शासन करनेवाले तथा ब्रह्मरूप हैं।

तदनन्तर प्रणव-जपके पश्चात् आत्माको आकाश-स्वरूप परमात्मामें लीन करके उनका इस प्रकार ध्यान करे—'परमात्मदेव सबके ईश्वर, हृदयाकाशके बीच विराजमान, समस्त भावोंकी उत्पत्तिके कारण, आनन्दके एकमात्र आधार तथा पुराणपुरुष श्रीविष्णु हैं। इस प्रकार ध्यान करनेवाला पुरुष भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो समस्त प्राणियोंका जीवन है, जहाँ जगत्‌का लय होता है तथा मुमुक्षु पुरुष जिसे ब्रह्मका सूक्ष्म आनन्द समझते हैं, उस परम व्योमके भीतर केवल—अद्वितीय ज्ञानस्वरूप ब्रह्म स्थित है, जो अनन्त, सत्य एवं ईश्वररूप है।' इस प्रकार ध्यान करके मौन हो जाय। यह संन्यासियोंके लिये गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय ज्ञानका वर्णन किया गया। जो सदा इस ज्ञानमें स्थित रहता है, वह इसके द्वारा ईश्वरीय योगका अनुभव करता है। इसलिये संन्यासीको उचित है कि वह सदा ज्ञानके अभ्यासमें तत्पर और आत्मविद्यापरायण होकर ज्ञानस्वरूप ब्रह्मका चिन्तन करे, जिससे भव-बन्धनसे छुटकारा मिले।

पहले आत्माको सब (दृश्य-पदार्थों)-से पृथक्, केवल—अद्वितीय, आनन्दमय, अक्षर—अविनाशी एवं ज्ञानस्वरूप जान ले; इसके बाद उसका ध्यान करे। जिनसे सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति होती है, जिन्हें जानकर मनुष्य पुनः इस संसारमें जन्म नहीं लेता, वे परमात्मा इसलिये ईश्वर कहलाते हैं कि वे सबसे परे स्थित हैं—सबके ऊपर अध्यक्षरूपसे विराजमान हैं। उन्हींके भीतर उस शाश्वत, कल्याणमय अविनाशी ब्रह्मका ज्ञान होता है, जो इस दृश्य जगत्‌के रूपमें प्रत्यक्ष और स्वस्वरूपसे परोक्ष है, वे ही महेश्वर देव हैं। संन्यासियोंके जो व्रत बताये गये हैं, वैसे ही उनके भी व्रत हैं।[1] उन व्रतोंमेंसे एक-एकका उल्लंघन करनेपर भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

संन्यासी यदि कामनापूर्वक स्त्रीके पास चला जाय तो एकाग्रचित्त होकर प्रायश्चित्त करे। उसे पवित्र होकर प्राणायामपूर्वक सांतपन[2]-व्रत करना चाहिये। सांतपनके बाद चित्तको एकाग्र करके शौच-संतोषादि नियमोंका पालन करते हुए वह कृच्छ्रव्रतका[3] अनुष्ठान करे। तदनन्तर आश्रममें आकर पुनः आलस्यरहित हो भिक्षुरूपसे विचरता रहे। असत्यका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह झूठका प्रसंग बड़ा भयंकर होता है। धर्मकी अभिलाषा रखनेवाला संन्यासी यदि झूठ बोल दे तो उसे उसके प्रायश्चित्तके लिये एक रात

१-ॐकारेणाथ चात्मानं संस्थाप्य परमात्मनि। आकाशे देवमीशानं ध्यायीताकाशमध्यगम्॥
कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम्। पुराणपुरुषं विष्णुं ध्यायन्मुच्येत बन्धनात्॥
जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते। आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत्पश्यन्ति मुमुक्षवः॥
तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम्। अनन्तं सत्यमीशानं विचिन्त्यासीत संयतः॥
गुह्याद् गुह्यतमं ज्ञानं यतीनामेतदीरितम्। योऽत्र तिष्ठेत्सदानेन सोऽश्नुते योगमैश्वरम्॥
तस्माज्ज्ञानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः। ज्ञानं समभ्यसेद् ब्रह्म येन मुच्येत बन्धनात्॥
मत्वा पृथक् स्वमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम्। आनन्दमक्षरं ज्ञानं ध्यायेत च ततः परम्॥
यस्माद् भवन्ति भूतानि यज्ज्ञात्वा नेह जायते।
स तस्मादीश्वरो देवः परस्माद् योऽधितिष्ठति। यदन्तरे तद्गगनं शाश्वतं शिवमच्युतम्॥
य इदं स्वपरोक्षम् स देवः स्यान्महेश्वरः। व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवास्य व्रतानि च॥ (६०। ११-१२, १४—२०)

२-गोमूत्र, गोबर, गायका दूध, गायका दही, गायका घी और कुशका जल—इन सबको मिलाकर पी ले तथा उस दिन और कुछ भी न खाय; फिर दूसरे दिन चौबीस घंटे उपवास करे। यह दो दिनका सांतपन-व्रत होता है। ३-यदि उपर्युक्त छः वस्तुओंमेंसे एक-एकको एक-एक दिन खाकर रहे और सातवें दिन उपवास करे तो यह कृच्छ्र या महासांतपन-व्रत कहलाता है।

उपवास और सौ प्राणायाम करने चाहिये।

बहुत बड़ी आपत्तिमें पड़नेपर भी संन्यासीको किसी दूसरेके यहाँसे चोरी नहीं करनी चाहिये। स्मृतियोंका कथन है कि चोरीसे बढ़कर दूसरा कोई अधर्म नहीं है[1] हिंसा, तृष्णा और याचना—ये आत्मज्ञानका नाश करनेवाली हैं। जिसे धन कहते हैं, वह मनुष्योंका बाह्य प्राण ही है। जो जिसके धनका अपहरण करता है, वह मानो उसके प्राण ही हर लेता है। ऐसा करके दुष्टात्मा पुरुष आचारभ्रष्ट हो अपने व्रतसे गिर जाता है। यदि संन्यासी अकस्मात् किसी जीवकी हिंसा कर बैठे तो कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र अथवा चान्द्रायणव्रतका अनुष्ठान करे।[2] यदि भिक्षुका उसकी अपनी इन्द्रियोंकी दुर्बलताके कारण किसी स्त्रीको देखकर वीर्यपात हो जाय तो उसे सोलह प्राणायाम करने चाहिये। विद्वानो! दिनमें वीर्यपात होनेपर वह तीन रातका व्रत और सौ प्राणायाम करे। यदि वह एक स्थानका अन्न, मधु, नवीन श्राद्धका अन्न तथा खाली नमक खा ले तो उसकी शुद्धिके लिये प्राजापत्यव्रत[3] बताया गया है।

सदा ध्यानमें स्थित रहनेवाले पुरुषके सारे पातक नष्ट हो जाते हैं। इसलिये महेश्वरका चिन्तन करते हुए सदा उन्हींके ध्यानमें संलग्न रहना चाहिये। जो परम ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म, सबका आश्रय, अक्षर, अव्यय, अन्तरात्मा तथा परब्रह्म हैं उन्हींको भगवान् महेश्वर समझना चाहिये। ये महादेवजी केवल परम शिवरूप हैं। ये ही अक्षर, अद्वैत एवं सनातन परमपद हैं। वे देव स्वप्रकाशस्वरूप हैं, ज्ञान उनकी संज्ञा है, वे ही आत्मयोगरूप तत्त्व हैं, उनमें सबकी महिमा—प्रतिष्ठा होती है, इसलिये उन्हें महादेव कहा गया है।[4] जो महादेवजीके सिवा दूसरे किसी देवताको नहीं देखता, अपने आत्मस्वरूप उन महादेवजीका ही अनुसरण करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। जो अपनेको उन परमेश्वरसे भिन्न मानते हैं, वे उन महादेवजीका दर्शन नहीं पाते; उनका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। एकमात्र परब्रह्म ही जानने-योग्य अविनाशी तत्त्व है, वे ही देवाधिदेव महादेवजी हैं। इस बातको जान लेनेपर मनुष्य कभी बन्धनमें नहीं पड़ता। इसलिये संन्यासी अपने मनको वशमें करके नियमपूर्वक साधनमें लगा रहे तथा शान्तभावसे महादेवजीके शरणागत होकर ज्ञानयोगमें तत्पर रहे।[5]

१-परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमन्यतः। स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृतिः॥ (६०। २५)

२-कृच्छ्रव्रत पहले बताया जा चुका है। तीन दिन सबेरे, तीन दिन शामको और तीन दिन बिना माँगे एक-एक ग्रास अन्न खाय और अन्तमें तीन दिनोंतक उपवास करे—यह अतिकृच्छ्रव्रत है। चान्द्रायणव्रत कई प्रकारका होता है; एक वृद्धि-क्रमसे किया जाता है और दूसरा ह्रास-क्रमसे। प्रतिदिन सायं, प्रातः और मध्याह्नकालमें स्नान करते हुए पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भोजन करे, तदनन्तर कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे एक-एक ग्रास घटावे। चतुर्दशीको एक ग्रास भोजन करके अमावास्याको उपवास करे। फिर शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ाता रहे। पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास खाकर व्रत पूर्ण किया जाता है। यह एक प्रकार है। दूसरा अमावास्याको उपवास करके आरम्भ किया जाता है; इसमें पहले एक-एक ग्रास बढ़ाया जाता है, फिर पूर्णिमाके बाद एक-एक ग्रास घटाते हुए अमावास्याको उपवास करके समाप्त किया जाता है।

३-तीन दिन सबेरे, तीन दिन शामको और तीन दिन अयाचित अन्न भोजन करके अन्तमें तीन दिनोंतक लगातार उपवास करे; यह प्राजापत्यव्रत है।

४-ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम्। तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वा तस्य ध्यानपरो भवेत्॥
यद् ब्रह्म परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम्। योऽन्तरात्मा परं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः॥
एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः। तदेवाक्षरमद्वैतं सदाभिन्नं परं पदम्॥
तस्मिन्महीयते देवे स्वधाम्नि ज्ञानसंज्ञिते। आत्मयोगाख्यके तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः॥ (६०। ३२—३५)

५-एकमेव परं ब्रह्म विज्ञेयं तत्त्वमव्ययम्। स देवस्तु महादेवो नैतद् विज्ञाय बध्यते॥
तस्माद् यतेत नियतं यतिः संयतमानसः। ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः॥ (६०। ३८-३९)

ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे संन्यासियोंके कल्याणमय आश्रम-धर्मका वर्णन किया। इसे मुनिवर भगवान् ब्रह्माजीने पूर्वकालमें उपदेश किया था। संन्यास-धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला यह परम उत्तम कल्याणमय ज्ञान साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माजीका बताया हुआ है; अतः पुत्र, शिष्य तथा योगियोंके सिवा दूसरे किसीको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। द्विजवरो! इस प्रकार मैंने संन्यासियोंके नियमोंका विधान बताया है; यह देवेश्वर ब्रह्माजीके संतोषका एकमात्र साधन है। जो मन लगाकर प्रतिदिन इन नियमोंका पालन करते हैं, उनका जन्म अथवा मरण नहीं होता।

भगवद्भक्तिकी प्रशंसा, स्त्री-संगकी निन्दा, भजनकी महिमा, ब्राह्मण, पुराण और गंगाकी महत्ता, जन्म आदिके दुःख तथा हरिभजनकी आवश्यकता

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! पूर्वकालमें अमित तेजस्वी व्यासजीने इस प्रकार आश्रम-धर्मका वर्णन किया था। इतना उपदेश करनेके पश्चात् उन सत्यवती-नन्दन भगवान् व्यासने समस्त मुनियोंको भलीभाँति आश्वासन दिया और जैसे आये थे, वैसे ही वे चले गये। वही यह वर्णाश्रम-धर्मकी विधि है, जिसका मैंने आपलोगोंसे वर्णन किया है। इस प्रकार वर्ण-धर्म तथा आश्रम-धर्मका पालन करके ही मनुष्य भगवान् विष्णुका प्रिय होता है, अन्यथा नहीं। द्विजवरो! अब इस विषयमें मैं आपलोगोंको रहस्यकी बात बताता हूँ, सुनिये। यहाँ वर्ण और आश्रमसे सम्बन्ध रखनेवाले जो धर्म बताये गये हैं, वे सब हरि-भक्तिकी एक कलाके अंशके अंशकी भी समानता नहीं कर सकते। कलियुगमें मनुष्योंके लिये इस मर्त्यलोकमें एकमात्र हरि-भक्ति ही साध्य है। जो कलियुगमें भगवान् नारायणका पूजन करता है, वह धर्मके फलका भागी होता है। अनेकों नामोंद्वारा जिन्हें पुकारा जाता है तथा जो इन्द्रियोंके नियन्ता हैं, उन परम शान्त सनातन भगवान् दामोदरको हृदयमें स्थापित करके मनुष्य तीनों लोकोंपर विजय पा जाता है। जो द्विज हरिभक्तिरूपी अमृतका पान कर लेता है, वह कलिकालरूपी साँपके डँसनेसे फैले हुए पापरूपी भयंकर विषसे आत्मरक्षा करनेके योग्य हो जाता है। यदि मनुष्योंने श्रीहरिके नामका आश्रय ग्रहण कर लिया तो उन्हें अन्य मन्त्रोंके जपकी क्या आवश्यकता है।* जो अपने मस्तकपर श्रीविष्णुका चरणोदक धारण करता है, उसे स्नानसे क्या लेना है। जिसने अपने हृदयमें श्रीहरिके चरणकमलोंको स्थापित कर लिया है, उसको यज्ञसे क्या प्रयोजन है। जिन्होंने सभामें भगवान्‌की लीलाओंका वर्णन किया है, उन्हें दानकी क्या आवश्यकता है। जो श्रीहरिके गुणोंका श्रवण करके बारंबार हर्षित होता है, भगवान् श्रीकृष्णमें चित्त लगाये रखनेवाले उस भक्त पुरुषको वही गति प्राप्त होती है, जो समाधिमें आनन्दका अनुभव करनेवाले योगीको मिलती है। पाखण्डी और पापासक्त पुरुष उस आनन्दमें विघ्न डालनेवाले बताये गये हैं। नारियाँ तथा उनका अधिक संग करनेवाले पुरुष भी हरिभक्तिमें बाधा पहुँचानेवाले हैं।

स्त्रियाँ नेत्रोंके कटाक्षसे जो संकेत करती हैं, उसका उल्लंघन करना देवताओंके लिये भी कठिन होता है। जिसने उसपर विजय पा ली है, वही संसारमें भगवान्‌का भक्त कहलाता है। मुनि भी इस लोकमें नारीके चरित्रपर लुभाकर मतवाले हो उठते हैं। ब्राह्मणो! जो लोग

---

* कलौ नारायणं देवं यजते यः स धर्मभाक्। दामोदरं हृषीकेशं पुरुहूतं सनातनम्॥
हृदि कृत्वा परं शान्तं जितमेव जगत्त्रयम्। कलिकालोरगादंशात् किल्बिषात् कालकूटतः॥
हरिभक्तिसुधां पीत्वा उल्लङ्घ्यो भवति द्विजः। किं जपैः श्रीहरेर्नाम गृहीतं यदि मानुषैः॥
(६१। ६—८)

नारीकी भक्तिका आश्रय लेते हैं, उन्हें भगवान्‌की भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है।[१] द्विजो! बहुत-सी राक्षसियाँ कामिनीका वेष धारण करके इस संसारमें विचरती रहती हैं; वे सदा मनुष्योंकी बुद्धि एवं विवेकको अपना ग्रास बनाया करती हैं।

विप्रगण! अबतक किसी सुन्दरी स्त्रीके चंचल नेत्रोंका कटाक्ष, जो सम्पूर्ण धर्मोंका लोप करनेवाला है, मनुष्यके ऊपर नहीं पड़ता तभीतक उसकी विद्या कुछ करनेमें समर्थ होती है, तभीतक उसे ज्ञान बना रहता है। तभीतक सब शास्त्रोंको धारण करनेवाली उसकी मेधा-शक्ति निर्मल बनी रहती है। तभीतक जप-तप और तीर्थसेवा बन पड़ती है। तभीतक गुरुकी सेवा सम्भव है और तभीतक इस संसार-सागरसे पार होनेके साधनमें मनुष्यका मन लगता है। इतना ही नहीं, बोध, विवेक, सत्संगकी रुचि तथा पौराणिक बातोंको सुननेकी लालसा भी तभीतक रहती है।

जो भगवच्चरणारविन्दोंके मकरन्दका लेशमात्र भी पाकर आनन्दमग्न हो जाते हैं, उनके ऊपर नारियोंके चंचल कटाक्षपातका प्रभाव नहीं पड़ता। द्विजो! जिन्होंने प्रत्येक जन्ममें भगवान् हृषीकेशका सेवन किया है, ब्राह्मणोंको दान दिया है तथा अग्निमें हवन किया है, उन्हींको उन-उन विषयोंकी ओरसे वैराग्य होता है।[२] स्त्रियोंमें सौन्दर्य नामकी वस्तु ही क्या है? पीब, मूत्र, विष्ठा, रक्त, त्वचा, मेदा, हड्डी और मज्जा—इन सबसे युक्त जो ढाँचा है, उसीका नाम है शरीर। भला, इसमें सौन्दर्य कहाँसे आया। उपर्युक्त वस्तुओंको पृथक्-पृथक् करके यदि छू लिया जाय तो स्नान करके ही मनुष्य शुद्ध होता है। किन्तु ब्राह्मणो! इन सभी वस्तुओंसे युक्त जो अपवित्र शरीर है, वह लोगोंको सुन्दर दिखायी देता है। अहो! यह मनुष्योंकी अत्यन्त दुर्दशा है, जो दुर्भाग्यवश घटित हुई है। पुरुष उभरे हुए कुचोंसे युक्त शरीरमें स्त्री-बुद्धि करके प्रवृत्त होता है; किन्तु कौन स्त्री है? और कौन पुरुष? विचार करनेपर कुछ भी सिद्ध नहीं होता। इसलिये साधु पुरुषको सब प्रकारसे स्त्रीके संगका परित्याग करना चाहिये। भला, स्त्रीका आश्रय लेकर कौन पुरुष इस पृथ्वीपर सिद्धि पा सकता है। कामिनी और उसका संग करनेवाले पुरुषका संग भी त्याग देना चाहिये। उनके संगसे रौरव नरककी प्राप्ति होती है, यह बात प्रत्यक्ष प्रतीत होती है।[३] जो लोग अज्ञानवश स्त्रियोंपर लुभाये रहते हैं, उन्हें दैवने ठग लिया है। नारीकी योनि साक्षात् नरकका कुण्ड है। कामी पुरुषको उसमें पकना पड़ता है। क्योंकि जिस भूमिसे उसका आविर्भाव हुआ है, वहीं वह फिर रमण करता है। अहो! जहाँसे मलजनित मूत्र और रज बहता है, वहीं मनुष्य रमण करता है! उससे बढ़कर अपवित्र कौन होगा। वहाँ अत्यन्त कष्ट है; फिर भी मनुष्य उसमें प्रवृत्त होता है! अहो! यह दैवकी कैसी विडम्बना है? उस अपवित्र योनिमें बारंबार रमण करना—यह मनुष्योंकी कितनी निर्लज्जता है! अतः बुद्धिमान् पुरुषको स्त्री-प्रसंगसे होनेवाले बहुतेरे दोषोंपर विचार करना चाहिये।

मैथुनसे बलकी हानि होती है और उससे उसको अत्यन्त निद्रा (आलस्य) आने लगती है। फिर नींदसे बेसुध रहनेवाले मनुष्यकी आयु कम हो जाती है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह नारीको

१-नारीणां नयनादेशः सुराणामपि दुर्जयः। स येन विजितो लोके हरिभक्तः स उच्यते॥
मायन्ति मुनयोऽप्यत्र नारीचरितलोलुपाः। हरिभक्तिः कुतः पुंसां नारीभक्तिजुषां द्विजाः॥
(६१।१२-१३)

२-तत्र ये हरिपादाब्जमधुलेशप्रमोदिताः। तेषां न नारीलीलाक्षिक्षेपेण हि प्रभुर्भवेत्॥
जन्म जन्म हृषीकेशसेवनं यैः कृतं द्विजाः। द्विजे दत्तं हुतं वह्नौ विरक्तिस्तत्र तत्र हि॥
(६१।१९-२०)

३-कामिनीकामिनीसंगिसंगमप्यपि संत्यजेत्। तत्संगाद् रौरवमिति साक्षादेव प्रतीयते॥
(६१।२७)

अपनी मृत्युके समान समझे और मनको प्रयत्नपूर्वक भगवान् गोविन्दके चरणकमलोंमें लगावे। श्रीगोविन्दके चरणोंकी सेवा इहलोक और परलोकमें भी सुख देनेवाली है। उसे छोड़कर कौन महामूर्ख पुरुष स्त्रीके चरणोंका सेवन करेगा। भगवान् जनार्दनके चरणोंकी सेवा मोक्ष प्रदान करनेवाली है तथा स्त्रियोंकी योनिका सेवन योनिके ही संकटमें डालनेवाला है।[1] योनिसेवी पुरुषको बार-बार योनिमें ही गिरना पड़ता है; यन्त्रमें कसे जानेवालेको जैसा कष्ट होता है, वैसी ही यातना उसे भी भोगनी पड़ती है। परन्तु फिर भी वह योनिकी ही अभिलाषा करता है। यह पुरुषकी कैसी विडम्बना है। इसे जानना चाहिये। मैं अपनी भुजाएँ ऊपर उठाकर कहता हूँ, मेरी उत्तम बात सुनो—श्रीगोविन्दमें मन लगाओ, यातना देनेवाली योनिमें नहीं।[2]

जो स्त्रीकी आसक्ति छोड़कर विचरता है, वह मानव पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। यदि दैवयोगसे उत्तम कुलमें उत्पन्न सती-साध्वी स्त्रीसे मनुष्यका विवाह हो जाय तो उससे पुत्रका जन्म होनेके पश्चात् फिर उसके साथ समागम न करे। ऐसे पुरुषपर भगवान् जगदीश्वर संतुष्ट होते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। धर्मज्ञ पुरुष स्त्रीके संगको असत्संग कहते हैं। उसके रहते भगवान् श्रीहरिमें सुदृढ़ भक्ति नहीं होती। इसलिये सब प्रकारके संगोंका परित्याग करके भगवान्की भक्ति ही करनी चाहिये।

मेरे विचारसे इस संसारमें श्रीहरिकी भक्ति दुर्लभ है। जिसकी भगवान्में भक्ति होती है, वह मनुष्य निस्सन्देह कृतार्थ हो जाता है। उसी-उसी कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये, जिससे भगवान् प्रसन्न हों। भगवान्के संतुष्ट और तृप्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् संतुष्ट एवं तृप्त होता है। श्रीहरिकी भक्तिके बिना मनुष्योंका जन्म व्यर्थ बताया गया है। जिनकी प्रसन्नताके लिये ब्रह्मा आदि देवता भी यजन करते हैं, उन आदि-अन्तरहित भगवान् नारायणका भजन कौन नहीं करेगा? जो अपने हृदयमें श्रीजनार्दनके युगल चरणोंकी स्थापना करता है, उसकी माता परम सौभाग्यशालिनी और पिता महापुण्यात्मा है। 'जगद्वन्द्य जनार्दन! शरणागतवत्सल!' आदि कहकर जो मनुष्य भगवान्को पुकारते हैं, उनको नरकमें नहीं जाना पड़ता।[3]

विशेषतः ब्राह्मणोंका, जो साक्षात् भगवान्के स्वरूप हैं, जो लोग यथायोग्य पूजन करते हैं, उनके ऊपर भगवान् प्रसन्न होते हैं। भगवान् विष्णु ही ब्राह्मणोंके रूपमें इस पृथ्वीपर विचरते हैं। ब्राह्मणके बिना कोई भी कर्म सिद्ध नहीं होता। जिन्होंने भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंका चरणोदक पीकर उसे मस्तकपर चढ़ाया है, उन्होंने अपने पितरोंको तृप्त कर दिया तथा आत्माका भी उद्धार कर लिया। जिन्होंने ब्राह्मणोंके मुखमें सम्मानपूर्वक मधुर अन्न अर्पित किया है, उनके द्वारा साक्षात् श्रीकृष्णके ही मुखमें वह अन्न दिया गया है।

१-मैथुनाद् बलहानिः स्यान्निद्राऽतिक्रमणात्तथा। निद्राक्रान्तो ह्यल्पायुर्जायते नरः॥
तस्मात् प्रयत्नतो धीमान्नारीं मृत्युमिवात्मनः। पश्येद्गोविन्दपादाब्जे मनो वै रमयेद् बुधः॥
इहामुत्र सुखं नृणां गोविन्दपदसेवनम्। विहाय को महामूढो नारीपादं हि सेवते॥
जनार्दनाङ्घ्रिसेवा हि ह्यपुनर्भवदायिनी। नारीणां योनिसेवा हि योनिसंकटकारिणी॥ (६१। ३२—३५)

२-ऊर्ध्वबाहुरहं वच्मि शृणु मे परमं वचः। गोविन्दे धेहि हृदयं न योनौ यातनायुषि॥ (६१। ३७)

३-हरिभक्तिरत्र लोकेऽत्र दुर्लभा हि मता मम। हरौ यस्य भवेद् भक्तिः स कृतार्थो न संशयः॥
तत्तदेवाचरेत्कर्म हरिः प्रीणाति येन हि। तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत्॥
हरौ भक्तिं विना नृणां वृथा जन्म प्रकीर्तितम्। ब्रह्मादयः सुरा यस्य यजन्ते प्रीतिहेतवे॥
नारायणमनाद्यन्तं न तं सेवेत को जनः।
तस्य माता महाभागा पिता तस्य महाकृती। जनार्दनपदद्वन्द्वं हृदये येन धार्यते॥
जनार्दन जगद्वन्द्य शरणागतवत्सल। इतीरयन्ति ये मर्त्या न तेषां निरये गतिः॥ (६१। ४१—४६)

इसमें सन्देह नहीं कि साक्षात् श्रीहरि ही उस अन्नको भोग लगाते हैं। ब्राह्मणोंके रहनेसे ही यह पृथ्वी धन्य मानी गयी है। उनके हाथमें जो कुछ दिया जाता है, वह भगवान्‌के हाथमें ही समर्पित होता है। उनको नमस्कार करनेसे पापोंका नाश होता है। ब्राह्मणकी वन्दना करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसलिये ब्राह्मण सत्पुरुषोंके लिये विष्णुबुद्धिसे आराधना करनेके योग्य हैं। भूखे ब्राह्मणके मुखमें यदि कुछ अन्न दिया जाय तो दाता मृत्युके पश्चात् परलोकमें जानेपर करोड़ कल्पोंतक अमृतकी धारासे अभिषिक्त होता है। ब्राह्मणोंका मुख ऊसर और काँटोंसे रहित बहुत बड़ा खेत है; वहाँ यदि कुछ बोया जाता है तो उसका कोटि-कोटिगुना अधिक फल प्राप्त होता है। ब्राह्मणको घृतसहित भोजन देकर मनुष्य एक कल्पतक आनन्दका अनुभव करता है। जो ब्राह्मणको संतुष्ट करनेके लिये नाना प्रकारके सुन्दर मिष्टान्न दान करता है, उसे कोटि कल्पोंतक महान् भोगसम्पन्न लोक प्राप्त होते हैं।

ब्राह्मणको आगे करके ब्राह्मणके द्वारा ही कही हुई पुराण-कथाका प्रतिदिन श्रवण करना चाहिये। पुराण बड़े-बड़े पापोंके वनको भस्म करनेके लिये महान् दावानलके समान है। पुराण सब तीर्थोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ तीर्थ बताया जाता है, जिसके चतुर्थांशका श्रवण करनेसे श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। जैसे भगवान् श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाश देने तथा सबको दृष्टि प्रदान करनेके लिये सूर्यका स्वरूप धारण करके विचरते हैं, उसी प्रकार श्रीहरि ही अन्तःकरणमें ज्ञानका प्रकाश फैलानेके लिये पुराणोंका रूप धारण करके जगत्‌में विचरते हैं। पुराण परम पावन शास्त्र है। अतः यदि श्रीहरिकी प्रसन्नता प्राप्त करनेका मन हो तो मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णरूपी परमात्माके पुराणका श्रवण करना चाहिये। विष्णुभक्त पुरुषको शान्तभावसे पुराण सुनना उचित है; क्योंकि वह अत्यन्त दुर्लभ है। पुराणकी कथा बड़ी निर्मल है तथा अन्तःकरणको निर्मल बनानेका उत्कृष्ट साधन है। व्यासरूपधारी श्रीहरिने वेदार्थोंका संग्रह करके पुराणकी रचना की है; अतः उसके श्रवणमें तत्पर रहना चाहिये। पुराणमें धर्मका निश्चय किया गया है और धर्म साक्षात् केशवका स्वरूप है; अतः विद्वान् पुरुष पुराण सुन लेनेपर विष्णुरूप हो जाता है। एक तो ब्राह्मण ही साक्षात् श्रीहरिका रूप है, दूसरे पुराण भी वैसा ही है; अतः उन दोनोंका संग पाकर मनुष्य विष्णुरूप ही हो जाता है।

इसी प्रकार गंगाजीके जलसे अभिषिक्त होनेपर मनुष्य अपने पापोंको दूर भगा देता है; भगवान् केशव ही जलके रूपमें इस भूमण्डलका पापसे उद्धार कर रहे हैं। यदि वैष्णव पुरुष विष्णुके भजनकी अभिलाषा रखता हो तो उसे गंगाजीके जलका निर्मल अभिषेक प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि वह अन्तःकरणको शुद्ध करनेका उत्तम साधन है। इस पृथ्वीपर भगवती गंगा विष्णुभक्ति प्रदान करनेवाली बतायी जाती हैं। लोकोंका उद्धार करनेवाली गंगा वास्तवमें श्रीविष्णुका ही स्वरूप है। ब्राह्मणोंमें, पुराणोंमें, गंगामें, गौओंमें तथा पीपलके वृक्षमें नारायण-बुद्धि करके मनुष्योंको उनके प्रति निष्काम भक्ति करनी चाहिये।* तत्त्वज्ञ पुरुषोंने इन्हें विष्णुका प्रत्यक्ष स्वरूप निश्चित किया है। अतः विष्णु-भक्तिकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंको सदा इनकी पूजा करनी चाहिये।

विष्णुमें भक्ति किये बिना मनुष्योंका जन्म निष्फल बताया जाता है। कलिकाल ही जिसके भीतर जल-राशि है, जो पापरूपी ग्राहोंसे भरा हुआ है, विषयासक्ति ही जिसमें भँवर है, दुर्बोध ही फेनका काम देता है, महादुष्टरूपी सर्पोंके कारण जो अत्यन्त भयानक प्रतीत होता है, उस दुस्तर भवसागरको हरिभक्तिकी नौकापर

* विष्णुभक्तिप्रदा देवी गंगा भुवि च गीयते। विष्णुरूपा हि सा गंगा लोकनिस्तारकारिणी॥
ब्राह्मणेषु पुराणेषु गंगायां गोषु पिप्पले। नारायणधिया पुम्भिर्भक्तिः कार्या ह्यहैतुकी॥
(६१। ६९-७०)

बैठे हुए मनुष्य पार कर जाते हैं। इसलिये लोगोंको हरिभक्तिकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। लोग बुरी-बुरी बातोंको सुननेमें क्या सुख पाते हैं, जो अद्भुत लीलाओंवाले श्रीहरिकी लीलाकथामें आसक्त नहीं होते। यदि मनुष्योंका मन विषयमें ही आसक्त हो तो लोकमें नाना प्रकारके विषयोंसे मिश्रित उनकी विचित्र कथाओंका ही श्रवण करना चाहिये। द्विजो! यदि निर्वाणमें ही मन रमता हो, तो भी भगवत्कथाओंको सुनना उचित है; उन्हें अवहेलनापूर्वक सुननेपर भी श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं। भक्तवत्सल भगवान् हृषीकेश यद्यपि निष्क्रिय हैं, तथापि उन्होंने श्रवणकी इच्छावाले भक्तोंका हित करनेके लिये नाना प्रकारकी लीलाएँ की हैं। सौ वाजपेय आदि कर्म तथा दस हजार राजसूय यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी भगवान् उतनी सुगमतासे नहीं मिलते, जितनी सुगमतासे वे भक्तिके द्वारा प्राप्त होते हैं। जो हृदयसे सेवन करनेयोग्य, संतोंके द्वारा बारंबार सेवित तथा भवसागरसे पार होनेके लिये सार वस्तु है, श्रीहरिके उन चरणोंका आश्रय लो। रे विषयलोलुप पामरो! अरे निष्ठुर मनुष्यो! क्यों स्वयं अपने-आपको रौरव नरकमें गिरा रहे हो। यदि तुम अनायास ही दुःखोंके पार जाना चाहते हो तो गोविन्दके चारु-चरणोंका सेवन किये बिना नहीं जा सकोगे। भगवान् श्रीकृष्णके युगल चरण मोक्षके हेतु हैं, उनका भजन करो। मनुष्य कहाँसे आया है और कहाँ पुनः उसे जाना है, इस बातका विचार करके बुद्धिमान् पुरुष धर्मका संग्रह करे।* क्योंकि नाना प्रकारके नरकोंमें गिरनेके पश्चात् यदि पुनः उत्थान होता है, तभी मनुष्यका जन्म मिलता है। वहाँ उसे गर्भवासका अत्यन्त दुःखदायी कष्ट तो भोगना ही पड़ता है। द्विजो! फिर कर्मवश जीव यदि इस पृथ्वीपर जन्म लेता है, तो बाल्यावस्था आदिके अनेक दोषोंसे उसे पीड़ा सहनी पड़ती है। फिर युवावस्थामें पहुँचनेपर यदि दरिद्रता हुई तो उससे बहुत कष्ट होता है। भारी रोगसे तथा अनावृष्टि आदि आपत्तियोंसे भी क्लेश उठाना पड़ता है। वृद्धावस्थामें मनके इधर-उधर भटकनेसे जो कष्ट उसे प्राप्त होता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। तदनन्तर व्याधिके कारण समयानुसार मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। संसारमें मृत्युसे बढ़कर दूसरे किसी दुःखका अनुभव नहीं होता।

तत्पश्चात् जीव अपने कर्मवश यमलोकमें पीड़ा भोगता है; वहाँ अत्यन्त दारुण यातना भोगकर फिर संसारमें जन्म लेता है। इस प्रकार वह बारंबार जन्मता और मरता तथा मरता और जन्मता रहता है। जिसने भगवान् गोविन्दके चरणोंकी आराधना नहीं की है, उसीकी ऐसी दशा होती है। गोविन्दके चरणोंकी आराधना न करनेवाले मनुष्यकी बिना कष्टके मृत्यु नहीं होती तथा बिना कष्टके उसे जीवन भी नहीं मिलता। यदि घरमें धन हो तो उसे रखनेसे क्या फल हुआ। जिस समय यमराजके दूत आकर जीवको खींचते हैं, उस समय धन क्या उसके पीछे-पीछे जाता है? अतः ब्राह्मणोंके सत्कारमें लगाया हुआ धन ही सब प्रकारके

---

* किं सुखं लभते जन्तुरसद्वार्ताश्रवादरात्। हरेरद्भुतलीलस्य लीलाख्याने न मज्जते॥
तद्विचित्रकथा लोके नाना विषयमिश्रिताः। श्रोतव्या यदि वै नृणां विषये मज्जते मनः॥
निर्वाणे यदि वा चित्तं श्रोतव्या तदपि द्विजाः। हेलया श्रवणाच्चापि तस्य तुष्टो भवेद्धरिः॥
निष्क्रियोऽपि हृषीकेशो नाना कर्म चकार सः। शुश्रूषूणां हितार्थाय भक्तानां भक्तवत्सलः॥
न लभ्यते कर्मणापि वाजपेयशतादिना। राजसूयायुतेनापि यथा भक्त्या स लभ्यते॥
स्वान्तेन सेव्यं सद्भिरासेवितं मुहुः। भवाब्धितरणे सारमाश्रयध्वं हरेः पदम्॥
रे रे विषयलोलुपाः पामरा निष्ठुरा नराः। रौरवे हि किमात्मानमात्मना पातयिष्यथ॥
विना गोविन्दसौम्याङ्घ्रिसेवनं ना गमिष्यथ। अनायासेन दुःखानां तरणं यदि वाञ्छथ॥
भजध्वं कृष्णचरणावपुनर्भवकारणे। कुत एवागतो मर्त्यः कुत एव पुनर्व्रजेत्॥
एतद्विचार्य मतिमान् कुर्याद् धर्मसंग्रहम्। (३१। ३५—४४)

सुख देनेवाला है। दान स्वर्गकी सीढ़ी है, दान सब पापोंका नाश करनेवाला है। गोविन्दका भक्तिपूर्वक किया हुआ भजन महान् पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है। यदि मनुष्यमें बल हो तो उसे व्यर्थ ही नष्ट न करे। आलस्य छोड़कर भगवान्‌के सामने नृत्य करे और गीत गाये। मनुष्यके पास जो कुछ हो, उसे भगवान् श्रीकृष्णको समर्पित कर दे। श्रीकृष्णको समर्पित की हुई वस्तु कल्याणदायिनी होती है और किसीको दी हुई वस्तु केवल दुःख देनेवाली होती है। नेत्रोंसे श्रीहरिकी ही प्रतिमा आदिका दर्शन तथा कानोंसे श्रीकृष्णके गुण और नामोंका ही अहर्निश श्रवण करे। विद्वान् पुरुषोंको अपनी जिह्वासे श्रीहरिके चरणोदकका आस्वादन करना चाहिये। नासिकासे श्रीगोविन्दके चरणारविन्दोंपर चढ़े हुए श्रीतुलसीदलको सूँघकर, त्वचासे हरिभक्तका स्पर्श कर तथा मनसे भगवान्‌के चरणोंका ध्यान करके जीव कृतार्थ हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। विद्वान् पुरुष भगवान्‌में ही मन लगाये और हृदयमें उन्हींकी भावना करे; ऐसा करनेवाला मनुष्य अन्तमें भगवान्‌को ही प्राप्त होता है—इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो मनसे भी निरन्तर चिन्तन करनेपर भक्तको अपना पद प्रदान कर देते हैं, उन आदि-अन्तरहित भगवान् नारायणका कौन मनुष्य सेवन नहीं करेगा। जो श्रीविष्णुके चरणारविन्दोंमें निरन्तर चित्त लगाये रहता है, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये अपनी शक्तिके अनुसार दान किया करता है तथा उन्हींके युगल चरणोंमें प्रणाम करता, मन लगाता और अनुराग रखता है, वह इस मनुष्यलोकमें निश्चय ही पुण्यभावको प्राप्त होता है।*

श्रीहरिके पुराणमय स्वरूपका वर्णन तथा पद्मपुराण और स्वर्गखण्डका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! इस प्रकार संसारमें जिनकी महिमा समस्त लोकोंका उद्धार करनेवाली है, उन नानारूपधारी परमेश्वर विष्णुका एक विग्रह पुराण भी है। पुराणोंमें पद्मपुराणका बहुत बड़ा महत्त्व है। (१) ब्रह्मपुराण श्रीहरिका मस्तक है। (२) पद्मपुराण हृदय है। (३) विष्णुपुराण उनकी दाहिनी भुजा है। (४) शिवपुराण उन महेश्वरकी बायीं भुजा है। (५) श्रीमद्भागवतको भगवान्‌का ऊरुयुगल कहा गया है। (६) नारदीय पुराण नाभि है। (७) मार्कण्डेयपुराण दाहिना तथा (८) अग्निपुराण बायाँ चरण है। (९) भविष्यपुराण महात्मा श्रीविष्णुका दाहिना घुटना है। (१०) ब्रह्मवैवर्तपुराणको बायाँ घुटना बताया गया है। (११) लिंगपुराण दाहिना और (१२) वाराहपुराण बायाँ गुल्फ (घुट्ठी) है। (१३) स्कन्दपुराण रोएँ तथा

* यद्यत्नो धूयते वापि किं भयमग्निसमान। तस्माद् द्विजातिसत्कारो दानानां सर्वसौख्यदम्॥
दानं स्वर्गस्य सोपानं दानं किल्बिषनाशनम्। गोविन्दभक्तिभजनं महापुण्यविवर्धनम्॥
बलं यदि भवेन्मर्त्ये न वृथा तद्गमयं चरेत्। हरेरग्रे नृत्यगीते कुर्यादालस्यवर्जितः॥
यत्किञ्चिद् विद्यते पुंसां तत्सर्वं कृष्ण समर्पयेत्। कृष्णार्पितं कुशलदमन्यार्पितमसौख्यदम्॥
चक्षुर्भ्यां श्रीहरेश्च प्रतिमादिनिरूपणम्। श्रोत्राभ्यां कलयेत्कृष्णगुणनामान्यहर्निशम्॥
जिह्वया हरिपादाम्बु स्वादितव्यं विचक्षणैः। घ्राणेनाघ्राय गोविन्दपादाब्जतुलसीदलम्॥
त्वचा स्पृष्ट्वा हरेर्भक्तं मनसा ध्याय तत्पदम्। कृतार्थो जायते जन्तुर्नात्र कार्या विचारणा॥
तन्मना हि भवेद्विद्वांस्तथा ध्यायेद्धृदा तु तम्। सोऽन्तेऽभ्येति लोको नात्र कार्या विचारणा॥
चेतसा चापयत्यान्त्यं स्वपदं यः प्रयच्छति। नारायणमनाद्यन्तं न तं सेवेत को नरः॥
सततमिह निविष्टचित्तो विष्णुपादारविन्दे वितरणमनुशक्ति प्रीतये यस्य कुर्यात्।
नतिमतिरतिमस्याप्यङ्घ्रियुग्मे विदध्यात् स हि खलु नरलोके पुण्यधामाप्नुयाच्च॥
(६२। ९१—१०२)

(१४) वामनपुराण त्वचा माना गया है। (१५) कूर्मपुराणको पीठ तथा (१६) मत्स्यपुराणको मेदा कहा जाता है। (१७) गरुडपुराण मज्जा बताया गया है और (१८) ब्रह्माण्डपुराणको अस्थि (हड्डी) कहते हैं। इसी प्रकार पुराणविग्रहधारी सर्वव्यापक श्रीहरिका आविर्भाव हुआ है।[1] उनके हृदय-स्थानमें पद्मपुराण है, जिसे सुनकर मनुष्य अमृतपद—मोक्ष-सुखका उपभोग करता है। यह पद्मपुराण साक्षात् भगवान् श्रीहरिका स्वरूप है; इसके एक अध्यायका भी पाठ करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

स्वर्गखण्डका श्रवण करके महापातकी मनुष्य भी केंचुलसे छूटे हुए सर्पकी भाँति समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। कितना ही बड़ा दुराचारी और सब धर्मोंसे बहिष्कृत क्यों न हो, स्वर्गखण्डका श्रवण करके वह पवित्र हो जाता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। द्विजो! समस्त पुराणोंको सुनकर मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वह सब केवल पद्मपुराणको सुनकर ही प्राप्त कर लेता है। कैसी अद्भुत महिमा है! समूचे पद्मपुराणको सुननेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल मनुष्य केवल स्वर्गखण्डको सुनकर प्राप्त कर लेता है। माघमासमें मनुष्य प्रतिदिन प्रयागमें स्नान करके जैसे पापसे मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार इस स्वर्गखण्डके श्रवणसे भी वह पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जिस पुरुषने भरी सभामें इस स्वर्गखण्डको सुना और सुनाया है, उसने मानो समूची पृथ्वी दानमें दे दी है, निरन्तर भगवान् विष्णुके सहस्र-नामोंका पाठ किया है, सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन तथा उसमें बताये हुए भिन्न-भिन्न पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान कर लिया है, बहुत-से अध्यापकोंको वृत्ति देकर पढ़ानेके कार्यमें लगाया है, भयभीत मनुष्योंको अभयदान किया है, गुणवान् ज्ञानी तथा धर्मात्मा पुरुषोंको आदर दिया है, ब्राह्मणों और गौओंके लिये प्राणोंका परित्याग किया है तथा उस बुद्धिमान्ने और भी बहुतेरे उत्तम कर्म किये हैं। तात्पर्य यह कि स्वर्गखण्डके श्रवणसे उक्त सभी शुभकर्मोंका फल प्राप्त हो जाता है। स्वर्गखण्डका पाठ करनेसे मनुष्यको नाना प्रकारके भोग प्राप्त होते हैं तथा वह तेजोमय शरीर धारण करके ब्रह्मलोकमें जाता और वहाँ ज्ञान पाकर मोक्षको प्राप्त हो जाता है। बुद्धिमान् मनुष्य उत्तम पुरुषोंके साथ निवास, उत्तम तीर्थमें स्नान, उत्तम वार्तालाप तथा उत्तम शास्त्रका श्रवण करे।[2] उन शास्त्रोंमें पद्मपुराण महाशास्त्र है, यह सम्पूर्ण वेदोंका फल देनेवाला है। इसमें भी स्वर्गखण्ड महान् पुण्यका फल प्रदान करनेवाला है।

ओ संसारके मनुष्यो! मेरी बात सुनो—गोविन्दको भजो और एकमात्र देवेश्वर विष्णुको प्रणाम करो। यदि कामनाकी उत्ताल तरंगोंको सुखपूर्वक पार करना चाहते हो तो एकमात्र हरिनामका, जिसकी कहीं तुलना नहीं है, उच्चारण करो।

॥ स्वर्गखण्ड समाप्त ॥

१-एकं पुराणरूपं वै तत्र पाद्मं परं महत्। ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञकम्॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः। ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम्॥
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते। भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहृतः। लैङ्गं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम्॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम्। कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते॥
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते। एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः॥ (६२।२—७)

२-सद्भिः सह वसेद्धीमान् सत्तीर्थे स्नानमाचरेत्। कुर्यादिष्टं सदालापं सच्छास्त्रं शृणुयान्नरः॥ (६२।२४)

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

संक्षिप्त पद्मपुराण

पातालखण्ड

शेषजीका वात्स्यायन मुनिसे रामाश्वमेधकी कथा आरम्भ करना, श्रीरामचन्द्रजीका लंकासे अयोध्याके लिये विदा होना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥*

ऋषि बोले—महाभाग सूतजी! हमने आपके मुखसे सम्पूर्ण स्वर्गखण्डकी मनोहर कथा सुनी; आयुष्मन्! अब हमलोगोंको श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र सुनाइये।

सूतजीने कहा—महर्षिगण! एक समय मुनिवर वात्स्यायनने पृथ्वीको धारण करनेवाले नागराज भगवान् अनन्तसे इस परम निर्मल कथाके विषयमें प्रश्न किया।

श्रीवात्स्यायन बोले—भगवन्! शेषनाग! मैंने आपके मुखसे संसारकी सृष्टि और प्रलय आदिके विषयकी सब बातें सुनीं; भूगोल, खगोल, ग्रह-तारे और नक्षत्र आदिकी गतिका निर्णय, महत्तत्त्व आदिकी सृष्टियोंके तत्त्वका पृथक्-पृथक् निरूपण तथा सूर्यवंशी राजाओंके अद्भुत चरित्रका भी मैंने श्रवण किया है। इसी प्रसंगमें आपने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी कथाका भी वर्णन किया है, जो अनेकों महापापोंको दूर करनेवाली है। परन्तु उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके अश्वमेध यज्ञकी कथा संक्षेपसे ही सुननेको मिली, अतः अब मैं उसे आपके द्वारा विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। यह वही कथा है जो कहने, सुनने तथा स्मरण करनेसे बड़े-बड़े पातकोंको भी नष्ट कर डालती है। इतना ही नहीं, वह मनोवांछित वस्तुको देनेवाली तथा भक्तोंके चित्तको प्रसन्न करनेवाली है।

भगवान् शेषने कहा—ब्रह्मन्! आप ब्राह्मणकुलमें श्रेष्ठ एवं धन्यवादके पात्र हैं; क्योंकि आपको ऐसी बुद्धि प्राप्त हुई है, जो श्रीरामचन्द्रजीके युगल चरणारविन्दोंका मकरन्द पान करनेके लिये लोलुप रहती है। सभी ऋषि-महर्षि साधु पुरुषोंके

समागमको श्रेष्ठ बतलाते हैं; इसका कारण यही है कि सत्संग होनेपर श्रीरघुनाथजीकी उस कथाके लिये अवसर मिलता है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। देवता और असुर प्रणाम करते समय अपने मुकुटोंकी मणियोंसे जिनके चरणोंकी आरती उतारते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीरामका स्मरण कराकर आपने मुझपर बहुत बड़ा अनुग्रह किया है। जहाँ ब्रह्मा आदि देवता भी मोहित होकर कुछ नहीं जान पाते, उसी श्रीरघुनाथ-

* भगवान् नारायण, पुरुषश्रेष्ठ नर, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (इतिहास-पुराण)-का पाठ करना चाहिये।

कथारूपी महासागरकी थाह लगानेके लिये मेरे-जैसे मशक-समान तुच्छ जीवकी कितनी शक्ति है। तथापि मैं अपनी शक्तिके अनुसार आपसे श्रीराम-कथाका वर्णन करूँगा; क्योंकि अत्यन्त विस्तृत आकाशमें भी पक्षी अपनी गमन-शक्तिके अनुसार उड़ते ही हैं। श्रीरघुनाथजीका चरित्र करोड़ों श्लोकोंमें वर्णित है। जिनकी जैसी बुद्धि होती है, वे वैसा ही उसका वर्णन करते हैं। जैसे अग्निके सम्पर्कसे सोना शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजीकी उत्तम कीर्ति मेरी बुद्धिको भी निर्मल बना देगी।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! मुनिवर वात्स्यायनसे यों कहकर भगवान् शेषने ध्यानस्थ हो अपनी आँखें बंद कर लीं और ज्ञानदृष्टिके द्वारा उस लोकोत्तर कल्याणमयी कथाका अवलोकन किया। फिर तो अत्यन्त हर्षके कारण उनके शरीरमें रोमांच हो आया और वे गद्गदवाणीसे युक्त होकर दशरथ-नन्दन श्रीरघुनाथजीकी विशद कथाका वर्णन करने लगे।

भगवान् शेष बोले—वात्स्यायनजी! देवता और दानवोंको दुःख देनेवाले लंकापति रावणके मारे

जानेपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंको बड़ा सुख मिला। वे आनन्दमग्न होकर दासकी भाँति भगवान्‌के चरणोंमें पड़ गये और उनकी स्तुति करने लगे।

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी धर्मात्मा विभीषणको लंकाके राज्यपर स्थापित करके सीताके साथ पुष्पक विमानपर आरूढ़ हुए। उनके साथ लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान् आदि भी विमानपर जा बैठे। उस समय भगवान्‌के विरहके भयसे विभीषणके मनमें भी साथ जानेकी उत्कण्ठा हुई और उन्होंने अपने मन्त्रियोंके साथ श्रीरघुनाथजीका अनुसरण किया। इसके बाद लंका और अशोक-वाटिकापर दृष्टि डालते हुए भगवान् श्रीराम तुरंत ही अयोध्यापुरीकी ओर प्रस्थित हुए। साथ ही ब्रह्मा आदि देवता भी अपने-अपने विमानोंपर बैठकर यात्रा करने लगे। उस समय भगवान् श्रीराम कानोंको सुख पहुँचानेवाली देव-दुन्दुभियोंकी मधुर ध्वनि सुनते तथा मार्गमें सीताजीको अनेकों आश्रमोंसे युक्त तीर्थों, मुनियों, मुनिपुत्रों तथा पतिव्रता मुनिपत्नियोंका दर्शन कराते हुए चल रहे थे। परम बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीने पहले लक्ष्मणके साथ जिन-जिन स्थानोंपर निवास किया था, वे सभी सीताजीको दिखाये। इस प्रकार उन्हें मार्गके स्थानोंका दर्शन कराते हुए श्रीरामचन्द्रजीने अपनी पुरी अयोध्याको देखा; फिर उसके निकट नन्दिग्रामपर दृष्टिपात किया, जहाँ भाईके वियोगजनित अनेकों दुःखमय चिह्नोंको धारण करके धर्मका पालन करते हुए राजा भरत निवास कर रहे थे। उन दिनों वे जमीनमें गड्ढा खोदकर उसीमें सोया करते थे। ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक मस्तकपर जटा और शरीरमें वल्कल वस्त्र धारण किये रहते थे। उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। वे निरन्तर श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चा करते हुए दुःखसे आतुर रहते थे। अन्नके नामपर तो वे जौ भी नहीं ग्रहण करते थे तथा पानी भी बारंबार नहीं पीते थे।

जब सूर्यदेवका उदय होता, तब वे उन्हें प्रणाम करके कहते—'जगत्‌को नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्य! आप देवताओंके स्वामी हैं, मेरे महान् पापको हर लीजिये [हाय! मुझसे बढ़कर पापी कौन होगा]। मेरे

ही कारण जगत्पूज्य श्रीरामचन्द्रजीको भी वनमें जाना पड़ा। सुकुमार शरीरवाली सीतासे सेवित होकर वे इस समय वनमें रहते हैं। अहो! जो सीता फूलकी शय्यापर पुष्पोंकी डंठलके स्पर्शसे भी व्याकुल हो उठती थीं और जो कभी सूर्यकी धूपमें घरसे बाहर नहीं निकलीं, वे ही पतिव्रता जनककिशोरी आज मेरे कारण जंगलोंमें भटक रही हैं! जिनके ऊपर कभी राजाओंकी भी दृष्टि नहीं पड़ी थी, उन्हीं सीताको आज किरातलोग प्रत्यक्ष देखते हैं। जो यहाँ मीठे-मीठे पकवानोंको भोजनके लिये आग्रह करनेपर भी नहीं खाना चाहती थीं, वे जानकी आज जंगली फलोंके लिये स्वयं याचना करती होंगी।' इस प्रकार श्रीरामके प्रति भक्ति रखनेवाले महाराज भरत प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योपस्थानके पश्चात् उपर्युक्त बातें कहा करते थे। उनके दुःख-सुखमें समान रूपसे हाथ बँटानेवाले शास्त्रचतुर, नीतिज्ञ और विद्वान् मन्त्री जब भरतजीको सान्त्वना देते हुए कुछ कहते तब वे उन्हें इस प्रकार उत्तर देते थे—'अमात्यगण! मुझ भाग्यहीनसे आपलोग क्यों बातचीत करते हैं? मैं संसारके सब लोगोंमें अधम हूँ; क्योंकि मेरे ही कारण मेरे बड़े भाई श्रीराम आज वनमें जाकर कष्ट उठा रहे हैं। मुझ अभागेके लिये अपने पापोंके प्रायश्चित्त करनेका यह अवसर प्राप्त हुआ है, अतः मैं श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका निरन्तर आदरपूर्वक स्मरण करते हुए अपने दोषोंका मार्जन करूँगा। इस जगत्‌में माता सुमित्रा भी धन्य हैं! वे ही अपने पतिसे प्रेम करनेवाली तथा वीर पुत्रकी जननी हैं, जिनके पुत्र लक्ष्मण सदा श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवामें रहते हैं।' इस प्रकार भ्रातृवत्सल भरत जहाँ रहकर उच्चस्वरसे विलाप किया करते थे, उस नन्दिग्रामको भगवान् श्रीरामने देखा।

भरतसे मिलकर भगवान् श्रीरामका अयोध्याके निकट आगमन

शेषजी कहते हैं—मुने! नन्दिग्रामपर दृष्टि पड़ते ही श्रीरघुनाथजीका चित्त भरतको देखनेकी उत्कण्ठासे विह्वल हो गया। उन्हें धर्मात्माओंमें अग्रगण्य भाई भरतकी बारंबार याद आने लगी। तब वे महाबली वायुनन्दन हनुमान्‌जीसे बोले—''वीर! तुम मेरे भाईके पास जाओ। उनका शरीर मेरे वियोगसे क्षीण होकर छड़ीके समान दुबला-पतला हो गया है और वे उसे किसी प्रकार हठपूर्वक धारण किये हुए हैं। जो वल्कल पहनते हैं, मस्तकपर जटा धारण करते हैं, जिनकी दृष्टिमें परायी स्त्री माता और सुवर्ण मिट्टीके ढेलेके समान है तथा जो प्रजाजनोंको अपने पुत्रोंकी भाँति स्नेह-दृष्टिसे देखते हैं, वे मेरे धर्मज्ञ भ्राता भरत दुःखी हैं। उनका शरीर मेरे वियोगजनित दुःखरूप अग्निकी ज्वालामें दग्ध हो रहा है; अतः इस समय तुम तुरंत जाकर मेरे आगमनके संदेशरूपी जलकी वर्षासे उन्हें शान्त करो। उन्हें यह समाचार सुनाओ कि 'सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि कपीश्वरों तथा विभीषणसहित राक्षसोंके साथ ही तुम्हारे भाई श्रीराम पुष्पक विमानपर बैठकर सुखपूर्वक आ पहुँचे हैं।' उससे मेरा आगमन जानकर मेरे छोटे भाई भरत शीघ्र ही प्रसन्न हो जायँगे।''

परम बुद्धिमान् श्रीरघुवीरके ये वचन सुनकर हनुमान्‌जी उनकी आज्ञाका पालन करते हुए भरतजीके निवास-स्थान नन्दिग्रामको गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, भरतजी बूढ़े मन्त्रियोंके साथ बैठे हैं और अपने पूज्य भ्राताके वियोगसे अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। उस समय उनका मन श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दोंके मकरन्दमें डूबा हुआ था और वे अपने वृद्ध मन्त्रियोंसे उन्हींकी कथा-वार्ता कह रहे थे। वे ऐसे जान पड़ते थे मानो धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप हों अथवा विधाताने मानो सम्पूर्ण सत्त्वगुणको एकत्रित करके उसीके द्वारा उनका निर्माण किया हो। भरतजीको इस रूपमें देखकर हनुमान्‌जीने उन्हें प्रणाम किया तथा भरतजी भी उन्हें देखते ही तुरंत हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले—'आइये, आपका स्वागत है; श्रीरामचन्द्रजीकी कुशल कहिये।' वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि इतनेमें उनकी दाहिनी बाँह फड़क उठी। हृदयसे शोक निकल

गया और उनके मुखपर आनन्दके आँसुओंकी धारा बह चली। उनकी ऐसी अवस्था देख वानरराज हनुमान्‌ने

कहा—'लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी इस ग्रामके निकट आ गये हैं।' श्रीरघुनाथजीके आगमनके संदेशने भरतके शरीरपर मानो अमृत छिड़क दिया, वे हर्षमें भरकर बोले—'श्रीरामका संदेश लानेवाले हनुमान्‌जी! मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे यह प्रिय समाचार सुनानेके बदलेमें मैं आपको दे सकूँ; इस उपकारके कारण मैं जीवनभर आपका दास बना रहूँगा।' महर्षि वसिष्ठ तथा वृद्ध मन्त्री भी अत्यन्त हर्षमें भरकर अर्घ्य हाथमें लिये हनुमान्‌जीके दिखाये हुए मार्गसे श्रीरामचन्द्रजीके पास चल दिये। भरतजीकी दृष्टि दूरसे आते हुए परम मनोरम भगवान् श्रीरामपर पड़ी। वे पुष्पक विमानके मध्यभागमें सीता और लक्ष्मणके साथ बैठे थे।

श्रीरामचन्द्रजीने भी जटा, वल्कल और कौपीन धारण किये हुए भरतको पैदल ही आते देखा; साथ ही उनकी दृष्टि उन मन्त्रियोंपर भी पड़ी, जिन्होंने भाईके वेषके समान ही वेष धारण कर रखा था। उनके मस्तकपर भी जटा थी तथा वे भी निरन्तर तपस्याके क्लेश उठानेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। राजा भरतको इस अवस्थामें देखकर श्रीरघुनाथजीको बड़ी चिन्ता हुई, वे कहने लगे—'अहो! राजाओंके भी राजा महाबुद्धिमान् महाराज दशरथका यह पुत्र आज जटा और वल्कल आदि तपस्वीका वेष धारण किये पैदल ही मेरे पास आ रहा है। मित्रो! मैं वनमें गया था; किन्तु मुझे भी ऐसा दुःख नहीं उठाना पड़ा, जैसा कि मेरे वियोगके कारण इस भरतको भोगना पड़ रहा है। अहो! देखो तो सही, प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारा और हितैषी मेरा भाई भरत मुझे निकट आया सुनकर हर्षमें भरे हुए वृद्ध मन्त्रियों तथा महर्षि वसिष्ठजीको साथ लेकर मुझसे मिलनेके लिये आ रहा है।' इस प्रकार भगवान् श्रीराम आकाशमें स्थित पुष्पक विमानसे उपर्युक्त बातें कह रहे थे और विभीषण, हनुमान् तथा लक्ष्मण उनके प्रति आदरका भाव प्रकट कर रहे थे। निकट आनेपर भगवान्‌का हृदय विरहसे कातर हो उठा और वे 'भैया! भैया भरत! तुम कहाँ हो' इस प्रकार कहते तथा बारंबार 'भाई! भाई!! भाई!!!' की रट

लगाते हुए तुरंत ही विमानसे उतर पड़े। सहायकोंसहित श्रीरामचन्द्रजीको भूमिपर उतरे देख भरतजी हर्षके आँसू बहाते हुए उनके सामने दण्डकी भाँति धरतीपर पड़ गये। श्रीरघुनाथजीने भी उन्हें दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ा देख हर्षपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए अपनी दोनों भुजाओंसे उठाकर छातीसे लगा लिया। आरम्भमें श्रीरामचन्द्रजीके बारंबार उठानेपर भी भरतजी उठे नहीं, अपितु अपने दोनों हाथोंसे भगवान्‌के चरण पकड़कर फूट-फूटकर रोते रहे।

भरतजीने कहा—महाबाहु भगवान् श्रीराम! मैं दुष्ट, दुराचारी और पापी हूँ; मुझपर कृपा कीजिये। आप दयाके सागर हैं, अपनी दयासे ही मुझे अनुगृहीत कीजिये। भगवन्! जिन्हें सीताजीके कोमल हाथोंका स्पर्श भी कठोर जान पड़ता था, आपके उन्हीं चरणोंको मेरे कारण वनमें भटकना पड़ा!

यों कहकर भरतजीने दीनभावसे आँसू बहाते हुए बारंबार श्रीरघुनाथजीके चरणोंका आलिंगन किया और हर्षसे विह्वल होकर उनके सामने हाथ जोड़े खड़े हो गये। करुणासागर श्रीरघुनाथजीने अपने छोटे भाईको गले लगाकर प्रधान मन्त्रियोंको भी प्रणाम किया तथा सबसे आदरपूर्वक कुशल-समाचार पूछा। इसके बाद भाई भरतके साथ वे पुष्पक विमानपर जा बैठे। वहाँ भरतजीने अपनी भ्रातृ-पत्नी पतिव्रता सीताजीको देखा, जो अत्रिकी भार्या अनसूया तथा अगस्त्यकी पत्नी लोपामुद्राकी भाँति जान पड़ती थीं। पतिव्रता जनक-किशोरीका दर्शन करके भरतजीने उन्हें सम्मानपूर्वक प्रणाम किया और कहा—'माँ! मैं महामूर्ख हूँ; मेरे द्वारा जो अपराध हो गया है, उसे क्षमा करना; क्योंकि आप-जैसी पतिव्रताएँ सबका भला करनेवाली ही होती हैं।" परम सौभाग्यवती जनक-किशोरीने भी अपने देवर भरतकी ओर आदरपूर्ण दृष्टि डालकर उन्हें आशीर्वाद दिया तथा उनका कुशल-मंगल पूछा। उस श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर सब-के-सब आकाशमें आ गये; फिर एक ही क्षणमें श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि पिताकी राजधानी अयोध्या अब बिलकुल अपने निकट है।

श्रीरामका नगर-प्रवेश, माताओंसे मिलना, राज्य-ग्रहण करना तथा रामराज्यकी सुव्यवस्था

शेषजी कहते हैं—अपनी राजधानीको देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। इधर भरतने अपने मित्र एवं सचिव सुमुखको नागरिक-उत्सवका प्रबन्ध करनेके लिये नगरके भीतर भेजा।

भरतजी बोले—नगरके सब लोग शीघ्र ही श्रीरघुनाथजीके आगमनका उत्सव आरम्भ करें। घर-घरमें सजावट की जाय, सड़कें झाड़-बुहारकर साफ की जायँ और उनपर चन्दन-मिश्रित जलका छिड़काव करके उनके ऊपर फूल बिछा दिये जायँ। हर एक घरके आँगनमें नाना प्रकारकी ध्वजाएँ फहरायी जायँ, प्रकाशका प्रबन्ध हो और सर्वतोभद्र आदि चित्र अंकित किये जायँ। श्रीरामका आगमन सुनकर हर्षमें भरे हुए लोग मेरे कथनानुसार नगरकी शोभा बढ़ानेवाली भाँति-भाँतिकी रचना करें।

शेषजी कहते हैं—भरतजीके ये वचन सुनकर मन्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सुमुखने अयोध्यापुरीको अनेक प्रकारकी सजावट एवं तोरणोंसे सुशोभित करनेके लिये उसके भीतर प्रवेश किया। नगरमें जाकर उसने सब लोगोंमें श्रीरामके आगमन-महोत्सवकी घोषणा करा दी। लोगोंने जब सुना कि श्रीरघुनाथजी अयोध्यापुरीके निकट आ गये हैं, तब उन्हें बड़ा हर्ष हुआ; क्योंकि वे पहले भगवान्‌के विरहसे दुःखी हो अपने सुखभोगका परित्याग कर चुके थे। वैदिक ज्ञानसे सम्पन्न पवित्र ब्राह्मण हाथोंमें कुश लिये धोती और चादरसे सुसज्जित हो श्रीरामचन्द्रजीके पास गये। जिन्होंने संग्राम-भूमिमें अनेकों वीरोंपर विजय पायी थी, वे धनुष-बाण धारण करनेवाले श्रेष्ठ और सूरमा क्षत्रिय भी उनके समीप गये। धन-धान्यसे समृद्ध वैश्य भी सुन्दर वस्त्र पहनकर

महाराज श्रीरामके निकट उपस्थित हुए। उस समय उनके हाथ सोनेकी मुद्राओंसे सुशोभित हो रहे थे तथा वे शूद्र, जो ब्राह्मणोंके भक्त; अपने जातीय आचारमें दृढ़तापूर्वक स्थित और धर्म-कर्मका पालन करनेवाले थे, अयोध्यापुरीके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके पास गये। व्यवसायी लोग जो अपने-अपने कर्ममें स्थित थे, वे सब भी भेंटमें देनेके लिये अपनी-अपनी वस्तु लेकर महाराज श्रीरामके समीप गये। इस प्रकार राजा भरतका संदेश पाकर आनन्दकी बाढ़में डूबे हुए पुरवासी नाना प्रकारके कौतुकोंमें प्रवृत्त होकर अपने महाराजके निकट आये। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने भी अपने-अपने विमानपर बैठे हुए सम्पूर्ण देवताओंसे घिरकर मनोहर रचनासे सुशोभित अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया। आकाशमार्गमें विचरण करनेवाले वानर भी उछलते-कूदते हुए श्रीरघुनाथजीके पीछे-पीछे उस उत्तम नगरमें गये। उस समय उन सबकी पृथक्-पृथक् शोभा हो रही थी। कुछ दूर जाकर श्रीरामचन्द्रजी पुष्पक विमानसे उतर गये और शीघ्र ही श्रीसीताके साथ पालकीपर सवार हुए; उस समय वे अपने सहायक परिवारद्वारा चारों ओरसे घिरे हुए थे। जोर-जोरसे बजाये जाते हुए वीणा, पणव और भेरी आदि बाजोंके द्वारा उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। सूत, मागध और बन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे थे; सब लोग कहते थे—'रघुनन्दन! आपकी जय हो, सूर्यकुलभूषण श्रीराम! आपकी जय हो, देव! दशरथ-नन्दन! आपकी जय हो, जगत्‌के स्वामी श्रीरघुनाथजी! आपकी जय हो।' इस प्रकार हर्षमें भरे पुरवासियोंकी कल्याणमयी बातें भगवान्‌को सुनायी दे रही थीं। उनके दर्शनसे सब लोगोंके शरीरमें रोमांच हो आया था, जिससे वे बड़ी शोभा पा रहे थे। क्रमशः आगे बढ़कर भगवान्‌की सवारी गली और चौराहोंसे सुशोभित नगरके प्रधान मार्गपर जा पहुँची, जहाँ चन्दन-मिश्रित जलका छिड़काव हुआ था और सुन्दर फूल तथा पल्लव बिछे थे। उस समय नगरकी कुछ स्त्रियाँ खिड़कीके सामनेकी छज्जोंका सहारा लेकर भगवान्‌की मनोहर छवि निहारती हुई आपसमें कहने लगीं—

पुरवासिनी स्त्रियाँ बोलीं—सखियो! वनवासिनी भीलोंकी कन्याएँ भी धन्य हो गयीं, जिन्होंने अपने नीलकमलके समान लोचनोंद्वारा श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दका मकरन्द पान किया है। अपने सौभाग्यसे इन कन्याओंने महान् अभ्युदय प्राप्त किया है। अरी! वीरोचित तेजसे युक्त श्रीरघुनाथजीके मुखकी ओर तो देखो, जो कमलकी सुषमाको लज्जित करनेवाले सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित हो रहा है, उसे देखकर धन्य हो जाओगी। अहो! ब्रह्मा आदि देवता भी जिनका दर्शन नहीं कर पाते, वे ही आज हमारी आँखोंके सामने हैं। अवश्य ही हमलोग अत्यन्त बड़भागिनी हैं। देखो, इनके मुखपर कैसी सुन्दर मुसकान है, मस्तकपर किरीट शोभा पा रहा है; ये लाल-लाल ओठ बन्धूक-पुष्पकी अरुण प्रभाको अपनी शोभासे तिरस्कृत कर रहे हैं तथा इनकी ऊँची नासिका मनोहर जान पड़ती है।

इस प्रकार अधिक प्रेमके कारण उपर्युक्त बातें कहनेवाली अवधपुरीकी रमणियाँ भगवान्‌के दर्शनकर प्रसन्न होने लगीं। तदनन्तर जिनका प्रेम बढ़ता चला हुआ था, उन पुरवासी मनुष्योंको अपने दृष्टिपातसे संतुष्ट

करके सम्पूर्ण जगत्‌को मर्यादाका पाठ पढ़ानेवाले श्रीरघुनाथजीने माताके भवनमें जानेका विचार किया। वे राजाओंके राजा तथा अच्छी नीतिका पालन करनेवाले थे; अतः पालकीपर बैठे हुए ही सबसे पहले अपनी माता कैकेयीके घरमें गये। कैकेयी लज्जाके भारसे दबी हुई थी, अतः श्रीरामचन्द्रजीको सामने देखकर भी वह कुछ न बोली। बारंबार गहरी चिन्तामें डूबने लगी। सूर्यवंशकी पताका फहरानेवाले श्रीरामने माताको लज्जित देखकर उसे विनययुक्त वचनोंद्वारा सान्त्वना देते हुए कहा।

श्रीराम बोले—माँ! मैंने वनमें जाकर तुम्हारी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन किया है। अब बताओ, तुम्हारी आज्ञासे इस समय कौन-सा कार्य करूँ?

श्रीरामकी यह बात सुनकर भी कैकेयी अपने मुँहको ऊपर न उठा सकी, वह धीरे-धीरे बोली—'बेटा राम! तुम निष्पाप हो। अब तुम अपने महलमें जाओ।' माताका यह वचन सुनकर कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीने भी उन्हें नमस्कार किया और वहाँसे सुमित्राके भवनमें गये। सुमित्राका हृदय बड़ा उदार था, उन्होंने अपने पुत्र लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीको उपस्थित देख आशीर्वाद देते हुए कहा—'बेटा! तुम चिरजीवी हो।' श्रीरामचन्द्रजीने भी माता सुमित्राके चरणोंमें प्रणाम करके बारंबार प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—'माँ! लक्ष्मण-जैसे पुत्ररत्नको जन्म देनेके कारण तुम रत्नगर्भा हो; बुद्धिमान् लक्ष्मणने जिस प्रकार हमारी सेवा की है, जिस तरह इन्होंने मेरे कष्टोंका निवारण किया है वैसा कार्य और किसीने कभी नहीं किया। रावणने सीताको हर लिया। उसके बाद मैंने पुनः जो इन्हें प्राप्त किया है, वह सब तुम लक्ष्मणका ही पराक्रम समझो।' यों कहकर तथा सुमित्राके दिये हुए आशीर्वादको शिरोधार्य करके वे देवताओंके साथ अपनी माता कौसल्याके महलमें गये। माताको अपने दर्शनके लिये उत्कण्ठित तथा हर्षमग्न देख भगवान् श्रीराम तुरंत ही पालकीसे उतर पड़े और निकट पहुँचकर उन्होंने माताके चरणोंको पकड़ लिया। माता कौसल्याका हृदय बेटेका मुँह देखनेके लिये उत्कण्ठासे विह्वल हो रहा था; उन्होंने अपने रामको बारंबार छातीसे लगाया और बहुत प्रसन्न हुईं। उनके

शरीरमें रोमांच हो आया, वाणी गद्गद हो गयी और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू प्रवाहित होकर चरणोंको भिगोने लगे। विनयशील श्रीरघुनाथजीने देखा कि 'माता अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं। मुझे देखकर ही इन्हें कुछ-कुछ हर्ष हुआ है।' उनकी इस अवस्थापर दृष्टिपात करके उन्होंने कहा।

श्रीराम बोले—माँ! मैंने बहुत दिनोंतक तुम्हारे चरणोंकी सेवा नहीं की है, निश्चय ही मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ; तुम मेरे इस अपराधको क्षमा करना। जो पुत्र अपने माता-पिताकी सेवाके लिये उत्सुक नहीं रहते, उन्हें रज-वीर्यसे उत्पन्न हुआ कीड़ा ही समझना चाहिये। क्या करूँ, पिताजीकी आज्ञासे मैं दण्डकारण्यमें चला गया था। वहाँसे रावण सीताको हरकर लंकामें ले गया था; किन्तु तुम्हारी कृपासे उस राक्षसराजको मारकर मैंने पुनः इन्हें प्राप्त किया है। ये पतिव्रता सीता भी तुम्हारे चरणोंमें पड़ी हैं, इनका चित्त सदा तुम्हारे इन चरणोंमें ही लगा रहता है।

श्रीरामचन्द्रजीकी बात सुनकर माता कौसल्याने अपने पैरोंपर पड़ी हुई पतिव्रता बहू सीताको आशीर्वाद देते हुए कहा—'मानिनी सीते! तुम चिरकालतक अपने पतिकी जीवन-संगिनी बनी रहो। मेरी पवित्र स्वभाववाली बहू! तुम दो पुत्रोंकी जननी होकर अपने इस कुलको पवित्र करो। बेटी! दुःख-सुखमें पतिका साथ देनेवाली तुम्हारी-जैसी पतिव्रता स्त्रियाँ तीनों लोकोंमें कहीं भी दुःखकी भागिनी नहीं होतीं—यह सर्वथा सत्य है। विदेहकुमारी! तुमने महात्मा रामके चरणकमलोंका अनुसरण करके अपने ही द्वारा अपने कुलको पवित्र कर दिया।' सुन्दर नेत्रोंवाली श्रीरघुनाथपत्नी सीतासे यों कहकर माता कौसल्या चुप हो गयीं। हर्षके कारण पुनः उनका सर्वांग पुलकित हो गया।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके भाई भरतने उन्हें पिताजीका दिया हुआ अपना महान् राज्य निवेदन कर दिया। इससे मन्त्रियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मन्त्रके जाननेवाले ज्योतिषियोंको बुलाकर राज्याभिषेकका मुहूर्त पूछा और उद्योग करके उनके बताये हुए उत्तम नक्षत्रसे युक्त अच्छे दिनको शुभ मुहूर्तमें बड़े हर्षके साथ राजा श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक कराया। सुन्दर व्याघ्रचर्मके ऊपर सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका नकशा बनाकर राजाधिराज महाराज श्रीराम उसपर विराजमान हुए। उसी दिनसे साधु पुरुषोंके हृदयमें आनन्द छा गया। सभी स्त्रियाँ पतिके प्रति भक्ति रखती हुई पतिव्रत-धर्मके पालनमें संलग्न हो गयीं। संसारके मनुष्य कभी मनसे भी पापका आचरण नहीं करते थे। देवता, दैत्य, नाग, यक्ष, असुर तथा बड़े-बड़े सर्प—ये सभी न्यायमार्गपर स्थित होकर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको शिरोधार्य करने लगे। सभी परोपकारमें लगे रहते थे। सबको अपने धर्मके अनुष्ठानमें ही सुख और संतोषकी प्राप्ति होती थी। विद्यासे ही सबका विनोद होता था। दिन-रात शुभ कर्मोंपर ही सबकी दृष्टि रहती थी। श्रीरामके राज्यमें चोरीकी तो कहीं चर्चा ही नहीं थी। जोरसे चलनेवाली हवा भी राह चलते हुए पथिकोंके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्त्रको भी नहीं उड़ाती थी। कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव बड़ा दयालु था। वे याचकोंके लिये कुबेर थे।

देवताओंद्वारा श्रीरामकी स्तुति, श्रीरामका उन्हें वरदान देना तथा रामराज्यका वर्णन

शेषजी कहते हैं—मुने! जब श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक हो गया तो राक्षसराज रावणके वधसे प्रसन्नचित्त हुए देवताओंने प्रणाम करके उनका इस प्रकार स्तवन किया।

देवता बोले—देवताओंकी पीड़ा दूर करनेवाले दशरथ-नन्दन श्रीराम! आपकी जय हो। आपके द्वारा जो राक्षसराजका विनाश हुआ है, उस अद्भुत कथाका समस्त कविजन उत्कण्ठापूर्वक वर्णन करेंगे। भुवनेश्वर! प्रलयकालमें आप सम्पूर्ण लोकोंकी परम्पराको लीलापूर्वक ग्रस लेते हैं। प्रभो! आप जन्म और जरा आदिके दुःखोंसे सदा मुक्त हैं। प्रबल शक्तिसम्पन्न परमात्मन्! आपकी जय हो, आप हमारा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। धार्मिक पुरुषोंके कुलरूपी समुद्रमें प्रकट होनेवाले अजर-अमर और अच्युत परमेश्वर! आपकी जय हो। भगवन्! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। आपका नाम लेकर अनेकों प्राणी पवित्र हो गये; फिर जिन्होंने श्रेष्ठ द्विज-वंशमें जन्म ग्रहण करके उत्तम मानव-शरीरको प्राप्त किया है, उनका उद्धार होना कौन बड़ी बात है? शिव और ब्रह्माजी भी जिनको मस्तक झुकाते हैं, जो पवित्र यव आदिके चिह्नोंसे सुशोभित तथा मनोवांछित कामना एवं समृद्धि देनेवाले हैं, उन आपके चरणोंका हम निरन्तर अपने हृदयमें चिन्तन करते रहें, यही हमारी अभिलाषा है। आप कामदेवकी भी शोभाको तिरस्कृत करनेवाली मनोहर कान्ति धारण करते हैं। परमपावन दयामय! यदि आप इस भूमण्डलको अभयदान न दें तो देवता कैसे सुखी हो सकते हैं?

नाथ! जब-जब दानवी शक्तियाँ हमें दुःख देने लगें तब-तब आप इस पृथ्वीपर अवतार ग्रहण करें। विभो! यद्यपि आप सबसे श्रेष्ठ, अपने भक्तोंद्वारा पूजित, अजन्मा तथा अविकारी हैं तथापि अपनी मायाका आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न रूपमें प्रकट होते हैं। आपके सुन्दर चरित्र (पवित्र लीलाएँ) मरनेवाले प्राणियोंके लिये अमृतके समान दिव्य जीवन प्रदान करनेवाले हैं। उनके श्रवणमात्रसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है। आपने अपनी इन लीलाओंसे समस्त भूमण्डलको व्याप्त कर रखा है तथा गुणोंका गान करनेवाले देवताओंद्वारा भी आपकी स्तुति की गयी है। जो सबके आदि हैं, परन्तु जिनका आदि कोई नहीं है, जो अजर (तरुण)-रूप धारण करनेवाले हैं, जिनके गलेमें हार और मस्तकपर किरीट शोभा पाता है, जो कामदेवकी भी कान्तिको लज्जित करनेवाले हैं, साक्षात् भगवान् शिव जिनके चरणकमलोंकी सेवामें लगे रहते हैं तथा जिन्होंने अपने शत्रु रावणका बलपूर्वक वध किया है, वे श्रीरघुनाथजी सदा ही विजयी हों।

ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवताओंने इस प्रकार स्तुति

करके विनीत भावसे श्रीरघुनाथजीको बारंबार प्रणाम किया। महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी देवताओंकी इस स्तुतिसे बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्हें मस्तक झुकाकर चरणोंमें पड़े देख बोले।

श्रीरामने कहा—देवताओ! तुमलोग मुझसे कोई ऐसा वर माँगो जो तुम्हें अत्यन्त दुर्लभ हो तथा जिसे अबतक किसी देवता, दानव, यक्ष और राक्षसने भी नहीं प्राप्त किया हो।

देवता बोले—स्वामिन्! आपने हमलोगोंके इस शत्रु दशाननका जो वध किया है, उसीसे हमें सब उत्तम वरदान प्राप्त हो गया। अब हम यही चाहते हैं कि जब-जब कोई असुर हमलोगोंको क्लेश पहुँचावे तब-तब आप इसी तरह हमारे उस शत्रुका नाश किया करें।

वीरवर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने 'बहुत अच्छा' कहकर देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार की और फिर इस प्रकार कहा।

श्रीराम बोले—देवताओ! तुम सब लोग आदरपूर्वक मेरा वचन सुनो, तुमलोगोंने मेरे गुणोंको ग्रथित करके जो यह अद्भुत स्तोत्र बनाया है, इसका जो मनुष्य प्रातःकाल तथा रात्रिमें एक बार प्रतिदिन पाठ करेगा, उसको कभी अपने शत्रुओंसे पराजित होनेका भयंकर कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा। उसके घरमें दरिद्रताका प्रवेश नहीं होगा तथा उसे रोग नहीं सतायेंगे। इतना ही नहीं, इसके पाठसे मनुष्योंके उल्लासपूर्ण हृदयमें मेरे युगल-चरणोंकी गाढ़ भक्तिका उदय होगा।

यह कहकर नरदेवशिरोमणि श्रीरघुनाथजी चुप हो गये तथा सम्पूर्ण देवता अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने-अपने लोकको चले गये। इधर लोकनाथ श्रीरामचन्द्रजी अपने विद्वान् भाइयोंका पिताकी भाँति पालन करते हुए प्रजाको अपने पुत्रके समान मानकर सबका लालन-पालन करने लगे। उनके शासनकालमें जगत्‌के मनुष्योंको कभी अकाल-मृत्यु नहीं होती थी। किसीके घरमें रोग आदिका प्रकोप नहीं होता था। न

कभी ईति[1] दिखायी देती और न शत्रुसे ही कोई भय होता। वृक्षोंमें सदा फल लगे रहते और पृथ्वीपर अधिक मात्रामें अनाजकी उपज होती थी। स्त्रियोंका जीवन पुत्र-पौत्र आदि परिवारसे सनाथ रहता था। उन्हें निरन्तर अपने प्रियतमका संयोगजनित सुख मिलते रहनेके कारण विरहका क्लेश नहीं भोगना पड़ता था। सब लोग सदा श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंकी कथा सुननेके लिये उत्सुक रहते थे। उनकी वाणी कभी परायी निन्दामें नहीं प्रवृत्त होती थी। उनके मनमें भी कभी पापका संकल्प नहीं होता था। सीतापति श्रीरामके मुखकी ओर निहारते समय लोगोंकी आँखें स्थिर हो जातीं—वे एकटक नेत्रोंसे उन्हें देखते रह जाते थे। सबका हृदय निरन्तर करुणासे भरा रहता था। सदा इष्ट (यज्ञ-यागादि) और आपूर्त (कुएँ खुदवाने, बगीचे लगवाने आदि)-के अनुष्ठान करनेवाले लोगोंके द्वारा उस राज्यकी जड़ और मजबूत होती थी। समूचे राष्ट्रमें सदा हरी-भरी खेती लहराती रहती थी। जहाँ सुगमतापूर्वक यात्रा की जा सके, ऐसे क्षेत्रोंसे वह देश भरा हुआ था। उस राज्यका देश सुन्दर और प्रजा उत्तम थी। सब लोग स्वस्थ रहते थे। गौएँ अधिक थीं और घास-पातका अच्छा सुभीता था। स्थान-स्थानपर देव-मन्दिरोंकी श्रेणियाँ रामराज्यकी शोभा बढ़ाती थीं। उस राज्यमें सभी गाँव भरे-पूरे और धन-सम्पत्तिसे सुशोभित थे। वाटिकाओंमें सुन्दर-सुन्दर फूल शोभा पाते और वृक्षोंमें स्वादिष्ट फल लगते थे। कमलोंसे भरे हुए तालाब वहाँकी भूमिका सौन्दर्य बढ़ा रहे थे।

रामराज्यमें केवल नदी ही सदम्भा (उत्तम जलवाली) थी, वहाँकी जनता कहीं भी सदम्भा (दम्भ या पाखण्डसे युक्त) नहीं दिखायी देती थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णोंके कुल (समुदाय) ही कुलीन (उत्तम कुलमें उत्पन्न) थे, उनके धन नहीं कुलीन थे (अर्थात् उनके धनका कुत्सित मार्गमें लय—उपयोग नहीं होता था)। उस राज्यकी स्त्रियोंमें ही विभ्रम (हाव-भाव या विलास) था; विद्वानोंमें कहीं विभ्रम (भ्रान्ति या भूल)-का नाम भी नहीं था। वहाँकी नदियाँ ही कुटिल मार्गसे जाती थीं, प्रजा नहीं; अर्थात् प्रजामें कुटिलताका सर्वथा अभाव था। श्रीरामके राज्यमें केवल कृष्णपक्षकी रात्रि ही तम (अन्धकार)-से युक्त थी, मनुष्योंमें तम (अज्ञान या दुःख) नहीं था। वहाँकी स्त्रियोंमें ही रजका संयोग देखा जाता था, धर्म-प्रधान मनुष्योंमें नहीं; अर्थात् मनुष्योंमें धर्मकी अधिकता होनेके कारण सत्त्वगुणका ही उद्रेक होता था [रजोगुणका नहीं]। धनसे वहाँके मनुष्य ही अनन्ध थे (मदान्ध होनेसे बचे थे); उनका भोजन अनन्ध (अन्नरहित) नहीं था। उस राज्यमें केवल रथ ही 'अनय' (लोहरहित) था; राजकर्मचारियोंमें 'अनय' (अन्याय)-का भाव नहीं था। फरसे, फावड़े, चँवर तथा छत्रोंमें ही दण्ड (डंडा) देखा जाता था, अन्यत्र कहीं भी क्रोध या बन्धन-जनित दण्ड देखनेमें नहीं आता था। जलोंमें ही जडता (या जलत्व)-की बात सुनी जाती थी; मनुष्योंमें नहीं। स्त्रीके मध्यभाग (कटि)-में ही दुर्बलता (पतलापन) थी; अन्यत्र नहीं। वहाँ ओषधियोंमें ही कुष्ठ (कूट या कूठ नामक दवा)-का योग देखा जाता था, मनुष्योंमें कुष्ठ (कोढ़)-का नाम भी नहीं था। रत्नोंमें ही वेध (छिद्र) होता था, मूर्तियोंके हाथोंमें ही शूल (त्रिशूल) रहता था, प्रजाके शरीरमें वेध या शूलका रोग नहीं था। रसानुभूतिके समय सात्त्विक भावके कारण ही शरीरमें कम्प होता था; भयके कारण कहीं किसीको कँपकँपी होती हो—ऐसी बात नहीं देखी जाती थी। राम-राज्यमें केवल हाथी ही मतवाले होते थे, मनुष्योंमें कोई मतवाला नहीं था। तरंगें जलाशयोंमें ही उठती थीं, किसीके मनमें नहीं; क्योंकि सबका मन स्थिर था। दान (मद)-का त्याग केवल हाथियोंमें ही दृष्टिगोचर होता था; राजाओंमें नहीं। काँटे ही तीखे होते थे, मनुष्योंका स्वभाव नहीं। केवल बाणोंका ही गुणोंसे वियोग होता था[2]

१-'ईति' कई प्रकारकी होती है—अनावृष्टि (सूखा पड़ना), अतिवृष्टि (अधिक वर्षाके कारण बाढ़ आना), खेतोंमें चूहोंका लगना, टिड्डियोंका उपद्रव, सुग्गोंसे हानि और राजासे वैर इत्यादि।

२-धनुषकी डोरीको गुण कहते हैं, छूटते समय बाणोंका उससे वियोग होता है।

मनुष्योंका नहीं। दृढ़ बन्धोक्ति (सुश्लिष्ट प्रबन्धरचना या कमलबन्ध आदि श्लोकोंकी रचना) केवल पुस्तकोंमें ही उपलब्ध होती थी; लोकमें कोई सुदृढ़ बन्धनमें बाँधा या कैद किया गया हो—ऐसी बात नहीं सुनी जाती थी। प्रजाको सदा ही श्रीरामचन्द्रजीसे लाड़-प्यार प्राप्त होता था। अपने द्वारा लालित प्रजाका निरन्तर लालन-पालन करते हुए वे उस सम्पूर्ण देशकी रक्षा करते थे।

श्रीरामके दरबारमें अगस्त्यजीका आगमन, उनके द्वारा रावण आदिके जन्म तथा तपस्याका वर्णन और देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान्‌का अवतार लेना

शेषजी कहते हैं—एक बार एक धोबीके मुखसे श्रीसीताजीके अपमानकी बात सुनकर—धोबीके आक्षेपपूर्ण वचनसे प्रभावित होकर श्रीरघुनाथजीने अपनी पत्नीका परित्याग कर दिया। इसके बाद वे सीतासे रहित एकमात्र पृथ्वीका, जो उनके आदेशसे ही सुरक्षित थी, धर्मानुसार पालन करने लगे। एक दिन महामति श्रीरामचन्द्रजी राजसभामें बैठे हुए थे, इसी समय मुनियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्य ऋषि, जो बहुत बड़े महात्मा थे, वहाँ पधारे। समुद्रको सोख लेनेवाले उन

अद्भुत महर्षिको आया देख महाराज श्रीरामचन्द्रजी अर्घ्य लिये सम्पूर्ण सभासदों तथा गुरु वसिष्ठके साथ उठकर खड़े हो गये। फिर स्वागत सत्कारके द्वारा उन्हें सम्मानित करके भगवान्‌ने उनकी कुशल पूछी और जब वे सुखपूर्वक आसनपर बैठकर विश्राम कर चुके तो श्रीरघुनन्दनने उनसे वार्तालाप आरम्भ किया।

श्रीरामने कहा—महाभाग कुम्भज! आपका स्वागत है। तपोनिधे! निश्चय ही आज आपके दर्शनसे हम सब लोग कुटुम्बसहित पवित्र हो गये। इस भूमण्डलपर कहीं कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है जो आपकी तपस्यामें विघ्न डाल सके। आपकी सहधर्मिणी लोपामुद्रा भी बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं, जिनके पातिव्रत्य-धर्मके प्रभावसे सब कुछ शुभ ही होता है। मुनीश्वर! आप धर्मके साक्षात् विग्रह और करुणाके सागर हैं। लोभ तो आपको छू भी नहीं गया है। बताइये, मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ? महामुने! यद्यपि आपकी तपस्याके प्रभावसे ही सब कुछ सिद्ध हो जाता है, आपके संकल्पमात्रसे ही बहुत कुछ हो सकता है; तथापि मुझपर कृपा करके ही मेरे लिये कोई सेवा बतलाइये।

शेषजी कहते हैं—मुने! राजाओंके भी राजा परम बुद्धिमान् जगद्गुरु श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर महर्षि अगस्त्यजी अत्यन्त विनययुक्त वाणीमें बोले।

अगस्त्यजीने कहा—स्वामिन्! आपका दर्शन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; यही सोचकर मैं यहाँ आया हूँ। राजाधिराज! मुझे अपने दर्शनके लिये ही आया हुआ समझिये। कृपानिधे! आपने रावण नामक असुरका, जो समस्त लोकोंके लिये कण्टकरूप था, वध कर डाला—यह बहुत अच्छा हुआ। अब देवगण

सुखी और विभीषण राजा हुए—यह बड़े सौभाग्यकी बात है। श्रीराम! आज आपका दर्शन पाकर मेरे मनका खाली खजाना भर गया। मेरे सारे पाप नष्ट हो गये।

यों कहकर महर्षि कुम्भज चुप हो गये। भगवान‍्के दर्शनजनित आह्लादसे उनका चित्त विह्वल हो रहा था। उस समय श्रीरघुनाथजीने उन ज्ञान-विशारद मुनिसे पुनः इस प्रकार प्रश्न किया—'मुने! मैं आपसे कुछ बातें पूछ रहा हूँ, आप उन्हें विस्तारपूर्वक बतलावें। देवताओंको पीड़ा देनेवाला वह रावण, जिसे मैंने मारा है, कौन था? तथा उस दुरात्माका भाई कुम्भकर्ण भी कौन था? उसकी जाति—उसके बन्धु-बान्धव कौन थे? सर्वज्ञ! आप इन सब बातोंको विस्तारके साथ जानते हैं, अतः मुझे सब बताइये।' भगवान‍्की ये बातें सुनकर तपोनिधि कुम्भज ऋषिने इन सबका उत्तर देना आरम्भ किया—''राजन्! सम्पूर्ण जगत‍्की सृष्टि करनेवाले जो ब्रह्माजी हैं, उनके पुत्र महर्षि पुलस्त्य हुए। पुलस्त्यजीसे मुनिवर विश्रवाका जन्म हुआ, जो वेदविद्यामें अत्यन्त प्रवीण थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं, जो बड़ी पतिव्रता और सदाचारिणी थीं। उनमेंसे एकका नाम मन्दाकिनी था और दूसरी कैकसी नामसे प्रसिद्ध थी। पहली स्त्री मन्दाकिनीके गर्भसे कुबेरका जन्म हुआ, जो लोकपालके पदको प्राप्त हुए हैं। उन्होंने भगवान् शंकरके प्रसादसे लंकापुरीको अपना निवास-स्थान बनाया था। कैकसी विद्युन्माली नामक दैत्यकी पुत्री थी, उसके गर्भसे रावण, कुम्भकर्ण तथा पुण्यात्मा विभीषण—ये तीन महाबली पुत्र उत्पन्न हुए। महामते! इनमें रावण और कुम्भकर्णकी बुद्धि अधर्ममें निपुण हुई; क्योंकि वे दोनों जिस गर्भसे उत्पन्न हुए थे, उसकी स्थापना सन्ध्याकालमें हुई थी।

एक समयकी बात है, कुबेर परम शोभायमान पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो माता-पिताका दर्शन करनेके लिये उनके आश्रममें गये। वहाँ जाकर वे अधिक कालतक माता-पिताके चरणोंमें पड़े रहे। उस समय उनका हृदय हर्षसे विह्वल हो रहा था और सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच हो आया था। वे बोले—'माता और पिताजी! आजका दिन मेरे लिये बहुत ही सुन्दर तथा महान् सौभाग्यजनक फलको प्रकट करनेवाला है;

क्योंकि इस समय मुझे आपके इन युगल चरणोंका दर्शन मिला है जो अनन्त पुण्य प्रदान करनेवाला है।' इस प्रकार स्तुतियुक्त पदोंसे माता-पिताका स्तवन करके कुबेर पुनः अपने भवनको लौट गये। रावण बड़ा बुद्धिमान् था, उसने कुबेरको देखकर अपनी मातासे पूछा—'माँ! ये कौन हैं, जो मेरे पिताजीके चरणोंकी सेवा करके फिर लौट गये हैं? इनका विमान तो वायुके समान वेगवान् है। इन्हें किस तपस्यासे ऐसा विमान प्राप्त हुआ है?'

शेषजी कहते हैं—मुने! रावणका वचन सुनकर उसकी माता रोषसे विकल हो उठी और कुछ आँखें टेढ़ी करके अनमनी होकर बेटेसे बोली—'अरे! मेरी बात सुन, इसमें बहुत शिक्षा भरी हुई है। जिनके विषयमें तू पूछ रहा है, वे मेरी सौतकी कोखके रत्न—कुबेर यहाँ उपस्थित हुए थे; जिन्होंने अपनी माताके विमल वंशको अपने जन्मसे और भी उज्ज्वल बना दिया है। परन्तु तू तो मेरे गर्भका कीड़ा है, केवल अपना पेट भरनेमें ही लगा हुआ है। कुबेरने तपस्यासे भगवान् शंकरको सन्तुष्ट करके लंकाका निवास, मनके समान वेगशाली विमान

तथा राज्य और सम्पत्तियाँ प्राप्त की हैं। संसारमें वही माता धन्य, सौभाग्यवती तथा महान् अभ्युदयसे सुशोभित होनेवाली है, जिसके पुत्रने अपने गुणोंसे महापुरुषोंका पद प्राप्त कर लिया हो।' रावण दुरात्माओंमें सबसे श्रेष्ठ था, उसने अपनी माताके क्रोधपूर्ण वचन सुनकर तपस्या करनेका निश्चय किया और उससे कहा।

रावण बोला—माँ! कौड़ीकी सी हस्ती रखनेवाला वह कुबेर क्या चीज है? उसकी थोड़ी-सी तपस्या किस गिनतीमें है? लंकाकी क्या बिसात है? तथा बहुत थोड़े सेवकोंवाला उसका राज्य भी किस कामका है? यदि मैं अन्न, जल, निद्रा और क्रीड़ाका सर्वदा परित्याग करके ब्रह्माजीको सन्तुष्ट करनेवाली दुष्कर तपस्याके द्वारा सम्पूर्ण लोकोंको अपने वशमें न कर लूँ तो मुझे पितृलोकके विनाशका पाप लगे।

तत्पश्चात् कुम्भकर्ण और विभीषणने भी तपस्याका निश्चय किया। फिर रावण अपने भाइयोंको साथ लेकर पर्वतीय वनमें चला गया। वहाँ उसने सूर्यकी ओर ऊपर दृष्टि लगाये एक पैरसे खड़ा होकर दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या की। कुम्भकर्णने भी बड़ा कठोर तप किया।

विभीषण तो धर्मात्मा थे; अतः उन्होंने उत्तम तपस्याका अनुष्ठान किया। तदनन्तर देवाधिदेव भगवान् ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर रावणको बहुत बड़ा राज्य दिया और उसका स्वरूप तीनों लोकोंमें प्रकाशमान एवं सुन्दर बना दिया, जो देवता और दानव दोनोंसे सेवित था। कुबेरकी बुद्धि सदा धर्ममें ही लगी रहती थी। रावणने वर पानेके अनन्तर अपने भाई कुबेरको बहुत सताया। उनका विमान छीन लिया तथा उनकी लंकानगरीपर भी हठात् अधिकार जमा लिया। उसने समस्त लोकोंको सन्ताप पहुँचाया। देवता स्वर्गसे भाग गये। उस निशाचरने ब्राह्मण-वंशका भी विनाश किया और मुनियोंको तो वह जड़ ही काटता फिरता था। तब उसके अत्याचारसे अत्यन्त दुःखी होकर इन्द्र आदि समस्त देवता ब्रह्माजीके पास गये तथा दण्डवत् प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। जब सबने आदरपूर्वक प्रिय वचनोंद्वारा उनका स्तवन किया तो भगवान् ब्रह्माने प्रसन्न होकर कहा—'देवगण! मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ?' तब देवताओंने ब्रह्माजीसे अपना अभिप्राय निवेदन किया—रावणसे प्राप्त होनेवाले अपने कष्ट और पराजयका वर्णन किया। उनकी बातें सुनकर ब्रह्माजीने क्षणभर विचार किया, फिर देवताओंको साथ लेकर वे कैलास पर्वतपर गये। उस पर्वतके पास पहुँचकर इन्द्र आदि देवता वहाँकी विचित्रता देखकर मुग्ध हो गये और खड़े होकर उन्होंने शंकरजीकी इस प्रकार स्तुति की—'भगवन्! आप भव (उत्पादक), शर्व (संहारक) तथा नीलग्रीव (कण्ठमें नील चिह्न धारण करनेवाले) आदि नामसे प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है। स्थूल और सूक्ष्मरूप धारण करनेवाले आपको प्रणाम है तथा अनेकों रूपोंमें प्रतीत होनेवाले आपको नमस्कार है।'

सब देवताओंके मुखसे यह स्तुतियुक्त वाणी सुनकर भगवान् शंकरने नन्दीसे कहा—'देवताओंको मेरे पास बुला लाओ।' आज्ञा पाकर नन्दीने उसी समय देवताओंको बुलाया। अन्तःपुरमें पहुँचकर उन्होंने आश्चर्यचकित दृष्टिसे भगवान्‌का दर्शन किया। देवताओंके साथ प्रणाम करके ब्रह्माजी शिवजीके सामने

खड़े हो गये और उन देवदेवेश्वरसे बोले—'शरणागतवत्सल महादेव! आप देवताओंकी अवस्थापर दृष्टि डालिये और इनके ऊपर कृपा कीजिये। दुष्ट राक्षस रावणका वध करनेके लिये जो उद्योग हो सके, वह कीजिये।' ब्रह्माजीके दैन्य और शोकसे युक्त वचन सुनकर शंकरजी भी देवताओंके साथ भगवान् श्रीविष्णुके स्थानपर आये। वहाँ देवता, नाग किन्नर और मुनि सबने मिलकर भगवान्‌की स्तुति की—'देवताओंके स्वामी माधव! आपकी जय हो, भक्तजनोंका दुःख दूर करनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो, महादेव! हमपर कृपा कीजिये और अपने इन सेवकोंपर दृष्टि डालिये।'

रुद्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने जब इस प्रकार उच्च-स्वरसे स्तवन किया तो उनके वचन सुनकर देवाधिदेव श्रीविष्णुने देवसमुदायके दुःखपर अच्छी तरह विचार किया। तत्पश्चात् वे मेघके समान गम्भीर वाणीसे उनका शोक शान्त करते हुए बोले—ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्र आदि देवताओ! मैं आपलोगोंके हितकी बात बता रहा हूँ, सुनिये; रावणके द्वारा जो आपको भय प्राप्त हुआ है, उसे मैं जानता हूँ, अब अवतार धारण करके मैं उस भयका नाश करूँगा। भूमण्डलमें एक अयोध्या नामकी पुरी है, जो बड़े-बड़े दान और यज्ञ आदि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले सूर्यवंशी राजाओंद्वारा सुरक्षित है, वह अपनी रजतमयी भूमिसे सुशोभित हो रही है। उस पुरीमें दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा हैं जो इस समय दसों दिशाओंको जीतकर पृथ्वीके राज्यका पालन कर रहे हैं। यद्यपि वे राज्यलक्ष्मीसे सम्पन्न और शक्तिशाली हैं, तथापि अभीतक उन्हें कोई सन्तान नहीं है। महान् बलशाली राजा दशरथ पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे वन्दनीय ऋष्यशृंगमुनिको प्रार्थनापूर्वक बुलावेंगे और उनके आचार्यत्वमें विधिपूर्वक पुत्रेष्टि यज्ञका अनुष्ठान करेंगे। तदनन्तर मैं आपलोगोंके हितके लिये राजाकी तीन रानियोंके गर्भसे चार स्वरूपोंमें प्रकट होऊँगा। राजा भी पूर्व जन्ममें तपस्या करके मुझसे इस बातके लिये प्रार्थना कर चुके हैं। मेरे चारों स्वरूप क्रमशः, राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके नामसे प्रसिद्ध होंगे। उस समय मैं रावणका बल, वाहन और जड़-मूलसहित संहार कर डालूँगा। आपलोग भी अपने-अपने अंशसे भालू और वानरके रूपमें प्रकट होकर पृथ्वीपर सर्वत्र विचरते रहिये।'

इस प्रकार आकाशवाणी करके भगवान् मौन हो गये। उनका वचन सुनकर सब देवताओंका चित्त प्रसन्न हो गया। परम मेधावी देवाधिदेव भगवान्‌ने जैसा कहा था, उसीके अनुसार देवताओंने कार्य किया। उन्होंने अपने-अपने अंशसे ऋक्ष और वानरका रूप धारण करके समूची पृथ्वीको भर दिया। महाराज! देवताओंका दुःख दूर करनेवाले जो महान् देव श्रीविष्णु कहलाते हैं, वे आप ही हैं। आप ही मानवशरीरधारी भगवान् हैं। महामते! ये भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न आपहीके अंग हैं। आपने देवताओंको पीड़ा देनेवाले दशाननका वध किया है। उस दैत्यकी ब्रह्म-राक्षस जाति थी, उसीका आपके द्वारा नाश हुआ है। नरश्रेष्ठ! आप जगत्‌के उत्पत्ति-स्थान और सम्पूर्ण विश्वके आत्मा हैं। आपके राजा होनेसे देवता, असुर और मनुष्योंसहित समस्त संसारको सुख प्राप्त हुआ है। पापके स्पर्शसे रहित श्रीरघुनाथजी! आपने जो कुछ पूछा है, वह सब मैंने बतला दिया।''

अगस्त्यका अश्वमेधयज्ञकी सलाह देकर अश्वकी परीक्षा करना तथा यज्ञके लिये आये हुए ऋषियोंद्वारा धर्मकी चर्चा

श्रीराम बोले—विप्रवर! इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए किसी पुरुषके मुखसे कभी ब्राह्मणोंने कटुवचनतक नहीं सुना था [किन्तु मैंने उनकी हत्या कर डाली।] वर्ण और आश्रमके भेदसे भिन्न-भिन्न धर्मोंके मूल हैं वेद और वेदोंके मूल हैं ब्राह्मण। ब्राह्मणवंश ही वेदोंकी सम्पूर्ण शाखाओंको धारण करनेवाला एकमात्र वृक्ष है। ऐसे ब्राह्मण-कुलका मेरे द्वारा संहार हुआ है; ऐसी अवस्थामें मैं क्या करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो?

अगस्त्यजीने कहा—राजन्! आप अन्तर्यामी आत्मा एवं प्रकृतिसे परे साक्षात् परमेश्वर हैं। आप ही इस जगत्के कर्ता, पालक और संहारक हैं। साक्षात् गुणातीत परमात्मा होते हुए भी आपने स्वेच्छासे सगुणस्वरूप धारण किया है। शराबी, ब्रह्महत्यारा, सोना चुरानेवाला तथा महापापी (गुरुस्त्रीगामी)—ये सभी आपके नामका उच्चारण करनेमात्रसे तत्काल पवित्र हो जाते हैं।* महामते! ये जनककिशोरी भगवती सीता महाविद्या हैं; जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्य मुक्त होकर सद्गति प्राप्त कर लेंगे। लोगोंपर अनुग्रह करनेवाले महावीर श्रीराम! जो राजा अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करता है, वह सब पापोंके पार हो जाता है। राजा मनु, सगर, मरुत्त और नहुषनन्दन ययाति—ये आपके सभी पूर्वज यज्ञ करके परमपदको प्राप्त हुए हैं। महाराज! आप सर्वथा समर्थ हैं, अतः आप भी यज्ञ करिये। परम सौभाग्यशाली श्रीरघुनाथजीने महर्षि अगस्त्यजीकी बात सुनकर यज्ञ करनेका ही विचार किया और उसकी विधि पूछी।

श्रीराम बोले—महर्षे! अश्वमेधयज्ञमें कैसा अश्व होना चाहिये? उसके पूजनकी विधि क्या है? किस प्रकार उसका अनुष्ठान किया जा सकता है तथा उसके लिये किन-किन शत्रुओंको जीतनेकी आवश्यकता है?

अगस्त्यजीने कहा—रघुनन्दन! जिसका रंग गंगाजलके समान उज्ज्वल तथा शरीर सुन्दर हो, जिसका कान श्याम, मुँह लाल और पूँछ पीले रंगकी हो तथा जो देखनेमें भी अच्छा जान पड़े, वह उत्तम लक्षणोंसे लक्षित अश्व ही अश्वमेधमें ग्राह्य बतलाया गया है। वैशाखमासकी पूर्णिमाको अश्वकी विधिवत् पूजा करके एक ऐसा पत्र लिखे जिसमें अपने नाम और बलका उल्लेख हो, वह पत्र घोड़ेके ललाटमें बाँधकर उसे स्वच्छन्द विचरनेके लिये छोड़ देना चाहिये तथा बहुत-से रक्षकोंको तैनात करके उसकी सब ओरसे प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। यज्ञका घोड़ा जहाँ-जहाँ जाय, उन सब स्थानोंपर रक्षकोंको भी जाना चाहिये। जो कोई राजा अपने बल या पराक्रमके घमंडमें आकर उस घोड़ेको जबरदस्ती बाँध ले, उससे लड़-भिड़कर उस अश्वको बलपूर्वक छीन लाना रक्षकोंका कर्तव्य है। जबतक अश्व लौटकर न आ जाय, तबतक यज्ञ-कर्ताको उत्तम विधि एवं नियमोंका पालन करते हुए राजधानीमें ही रहना चाहिये। वह ब्रह्मचर्यका पालन करे और मृगका सींग हाथमें धारण किये रहे। यज्ञ-सम्बन्धी व्रतका पालन करनेके साथ ही एक वर्षतक दीनों, अंधों और दुःखियोंको धन आदि देकर सन्तुष्ट करते रहना चाहिये। महाराज! बहुत-सा अन्न और धन दान करना उचित है। याचक जिस-जिस वस्तुके लिये याचना करे, बुद्धिमान् दाताको उसे वही-वही वस्तु देनी चाहिये। इस प्रकारका कार्य करते हुए यजमानका यज्ञ जब भलीभाँति पूर्ण हो जाता है, तो वह सब पापोंका नाश कर डालता है। शत्रुओंका नाश करनेवाले रघुनाथजी! आप यह सब कुछ करने, सब नियमोंको पालने तथा अश्वका विधिवत् पूजन करनेमें समर्थ हैं; अतः इस यज्ञके द्वारा

* सुरापो ब्रह्महत्याकृत्स्वर्णस्तेयी महाघकृत्। सर्वे त्वन्नामवादेन पूताः शीघ्रं भवन्ति हि॥ (८। ३९)

अपनी विशद कीर्तिका विस्तार करके दूसरे मनुष्योंको भी पवित्र कीजिये।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—विप्रवर! आप इस समय मेरी अश्वशालाका निरीक्षण कीजिये और देखिये, उसमें ऐसे उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न घोड़े हैं या नहीं।

भगवानकी बात सुनकर दयालु महर्षि उठकर खड़े हो गये और यज्ञके योग्य उत्तम घोड़ोंको देखनेके लिये चल दिये। श्रीरामचन्द्रजीके साथ अश्वशालामें जाकर

उन्होंने देखा, वहाँ चित्र विचित्र शरीरवाले अनेकों प्रकारके अश्व थे, जो मनके समान वेगवान् और अत्यन्त बलवान् प्रतीत होते थे। उसमें ऊपर बताये हुए रंगके एक दो नहीं, सैकड़ों घोड़े थे, जिनकी पूँछ पीली और मुख लाल थे। साथ ही ये सभी तरहके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देते थे। उन्हें देखकर अगस्त्यजी बोले—'रघुनन्दन! आपके यहाँ अश्वमेधके योग्य बहुत से सुन्दर घोड़े हैं; अतः आप विस्तारके साथ उस यज्ञका अनुष्ठान कीजिये। महाराज श्रीराम! आप महान् सौभाग्यशाली हैं। देवता और असुर—सभी आपके चरणोंपर मस्तक झुकाते हैं; अतः आपको इस यज्ञका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। मुनिके इस वचनसे उन्होंने यज्ञके सभी मनोहर सम्भार एकत्रित किये।

तत्पश्चात् महाराज श्रीराम मुनियोंके साथ सरयू तटपर आये और सोनेके हलोंसे चार योजन लंबी चौड़ी बहुत बड़ी भूमिको जोता। इसके बाद उन

पुरुषोत्तमने यज्ञके लिये अनेकों मण्डप बनवाये और योनि एवं मेखलासे युक्त कुण्डका विधिवत् निर्माण करके उसे अनेकों रत्नोंसे सुसज्जित एवं सब प्रकारकी शोभासे सम्पन्न बनाया। महान तपस्वी एवं परम सौभाग्यशाली मुनिवर वसिष्ठने सब कार्य वेदशास्त्रकी विधिके अनुसार सम्पन्न कराया। उन्होंने अपने शिष्योंको महर्षियोंके आश्रमोंपर भेजकर कहलाया कि श्रीरघुनाथजी अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये उद्यत हुए हैं; अतः आप सब लोग उसमें पधारें। इस प्रकार आमन्त्रित होकर वे सभी तपस्वी महर्षि भगवान् श्रीरामके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित होकर वहाँ आये। नारद, असित, पर्वत, कपिलमुनि, जातुकर्ण्य, अंगिरा, आर्ष्टिषेण, अत्रि, गौतम, हारीत, याज्ञवल्क्य तथा संवर्त आदि महात्मा भी भगवान् श्रीरामके अश्वमेध यज्ञमें

आये। श्रीरघुनाथजीने बड़े आनन्दके साथ उठकर उनका स्वागत किया और उन्हें प्रणाम करके अर्घ्य तथा आसन आदि देकर उन सबकी विधिवत् पूजा की। फिर गौ और सुवर्ण निवेदन करके वे बोले— 'महर्षियो! मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आपके दर्शन हुए।'

शेषजी कहते हैं—ब्रह्मन्! इस प्रकार जब वहाँ बड़े-बड़े ऋषियोंका समुदाय एकत्रित हुआ तो उनमें वर्ण और आश्रमके अनुकूल धर्मविषयक चर्चा होने लगी।

वात्स्यायनजीने पूछा—भगवन्! वहाँ धर्मके सम्बन्धमें क्या-क्या बातें हुईं? कौन-सी अद्भुत बात बतायी गयी? उन महात्माओंने सब लोगोंपर दया करके किस विषयका वर्णन किया?

शेषजीने कहा—मुने! महापुरुषोंमें श्रेष्ठ दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने सब मुनियोंको एकत्रित देखकर उनसे समस्त वर्णों और आश्रमोंके धर्म पूछे। श्रीरघुनाथजीके पूछनेपर उन महर्षियोंने जिन-जिन महान् गुणकारी धर्मोंका वर्णन किया, उन सबको मैं विधिपूर्वक बतलाऊँगा, आप ध्यान देकर सुनें।

ऋषि बोले—ब्राह्मणको सदा यज्ञ करना और वेद पढ़ाना आदि कार्य करना चाहिये। वह ब्रह्मचर्य-आश्रममें वेदोंका अध्ययन पूर्ण करके इच्छा हो तो विरक्त हो जाय और यदि ऐसी इच्छा न हो तो गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करे। नीच पुरुषोंकी सेवासे जीविका चलाना ब्राह्मणके लिये सदा त्याज्य है। वह आपत्तिमें पड़नेपर भी कभी सेवा-वृत्तिसे जीवन-निर्वाह न करे।

सन्तान-प्राप्तिकी इच्छासे ऋतुकालमें अपनी पत्नीके साथ समागम करना उचित माना गया है। दिनमें स्त्रीके साथ सम्पर्क करना पुरुषोंकी आयुको नष्ट करनेवाला है। श्राद्धका दिन और सभी पर्व स्त्री-समागमके लिये निषिद्ध हैं, अतः बुद्धिमान् पुरुषोंको इनका त्याग करना चाहिये। जो मोहवश उक्त समयमें भी स्त्रीके साथ सम्पर्क करता है, वह उत्तम धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है। जो पुरुष केवल ऋतुकालमें स्त्रीके साथ समागम करता है तथा अपनी ही पत्नीमें अनुराग रखता है [परायी स्त्रीको ओर कुदृष्टि नहीं डालता], उस उत्तम गृहस्थको इस जगत्‌में सदा ब्रह्मचारी ही समझना चाहिये। स्त्रीके रजस्वला होनेसे लेकर सोलह रात्रियाँ ऋतु कहलाती हैं, उनमें पहली चार रातें निन्दित हैं; [अतः उनमें स्त्रीका स्पर्श नहीं करना चाहिये] शेष बारह रातोंमेंसे जो सम संख्यावाली अर्थात् छठीं और आठवीं आदि रातें हैं, उनमें स्त्री-समागम करनेसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है तथा विषम संख्यावाली अर्थात् पाँचवीं, सातवीं आदि रात्रियाँ कन्याकी उत्पत्ति करनेवाली हैं। जिस दिन चन्द्रमा अपने लिये दूषित हों, उस दिनको छोड़कर तथा मघा और मूलनक्षत्रका भी परित्याग करके विशेषतः पुँल्लिंग नामवाले श्रवण आदि नक्षत्रोंमें शुद्ध भावसे पत्नीके साथ समागम करे, इससे चारों पुरुषार्थोंके साधक शुद्ध एवं सदाचारी पुत्रका जन्म होता है।

थोड़ी-सी भी कीमत लेकर कन्याको बेचनेवाला पुरुष पापी माना गया है। ब्राह्मणके लिये व्यापार, राजाकी सेवा, वेदाध्ययनका त्याग, निन्दित विवाह और नित्य कर्मका लोप—ये दोष कुलको नीचे गिरानेवाले

है।[1] गृहस्थाश्रममें रहनेवाले पुरुषको अन्न, जल, दूध, मूल अथवा फल आदिके द्वारा अतिथिका सत्कार करना चाहिये। आया हुआ अतिथि सत्कार न पाकर जिसके घरसे निराश लौट जाता है, वह गृहस्थ जीवनभरके कमाये हुए पुण्यसे क्षणभरमें वंचित हो जाता है।[2] गृहस्थको उचित है कि वह बलिवैश्वदेव-कर्मके द्वारा देवताओं, पितरों तथा मनुष्योंको उनका भाग देकर शेष अन्नका भोजन करे, वही उसके लिये अमृत है। जो केवल अपना पेट भरनेवाला है—जो अपने ही लिये भोजन बनाता और खाता है, वह पापका ही भोजन करता है। तेलमें षष्ठी और अष्टमीको तथा मांसमें सदा ही पापका निवास है। चतुर्दशीको क्षौर-कर्म तथा अमावास्याको स्त्री-समागमका त्याग करना चाहिये।[3] रजस्वला-अवस्थामें स्त्रीके सम्पर्कसे दूर रहे। पत्नीके साथ भोजन न करे। एक वस्त्र पहनकर तथा चटाईके आसनपर बैठकर भोजन करना निषिद्ध है। अपनेमें तेजकी इच्छा रखनेवाले श्रेष्ठ पुरुषको भोजन करती हुई स्त्रीकी ओर नहीं देखना चाहिये। मुँहसे आगको न फूँके, नंगी स्त्रीकी ओर दृष्टि न डाले। बछड़ेको दूध पिलाती हुई गौको न छेड़े। दूसरेको इन्द्र-धनुष न दिखावे। रातमें दही खाना सर्वथा निषिद्ध है। आगमें अपने पैर न सेंके, उसमें कोई अपवित्र वस्तु न डाले। किसी भी जीवकी हिंसा तथा दोनों सन्ध्याओंके समय भोजन न करे। रात्रिको खूब पेट भरके भोजन करना उचित नहीं है। पुरुषको नाचने, गाने और बजानेमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। काँसेके बर्तनमें पैर धुलाना निषिद्ध है। दूसरेके पहने हुए कपड़े और जूते न धारण करे। फूटे अथवा दूसरेके जूठे किये हुए बर्तनमें भोजन न करे, भीगे पैर न सोये। हाथ और मुँहके जूठे रहते हुए कहीं न जाय। सोते-सोते न खाय। उच्छिष्ट-अवस्थामें मस्तकका स्पर्श न करे। दूसरोंके गुप्त भेद न खोले। इस प्रकार गृहस्थ-धर्मका समय पूरा करके वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश करे। उस समय इच्छा हो तो वैराग्यपूर्वक स्त्रीके साथ रहे अथवा स्त्रीको साथ न रखकर उसे पुत्रोंके अधीन सौंप दे। वानप्रस्थ-धर्मका पूर्ण पालन करनेके पश्चात् विरक्त हो जाय—संन्यास ले ले।

वात्स्यायनजी! उस समय महर्षियोंने उपर्युक्त प्रकारसे अनेकों धर्मोंका वर्णन किया तथा सम्पूर्ण जगत्के महान् हितैषी भगवान् श्रीरामने उन सबको ध्यानपूर्वक सुना।

यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका छोड़ा जाना और श्रीरामका उसकी रक्षाके लिये शत्रुघ्नको उपदेश करना

शेषजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार भगवान् श्रीराम ऋषियोंके मुखसे कुछ कालतक धर्मकी व्याख्या सुनते रहे; इतनेमें वसन्तका समय उपस्थित हुआ जब कि महापुरुषोंके यज्ञ आदि शुभ कर्मोंका प्रारम्भ होता है। वह समय आया देख बुद्धिमान् महर्षि वसिष्ठने सम्पूर्ण जगत्के सम्राट् श्रीरामचन्द्रजीसे यथोचित वाणीमें कहा—'महाबाहु रघुनाथजी! अब आपके लिये वह समय आ गया है, जब कि यज्ञके लिये निश्चित किये हुए अश्वकी भलीभाँति पूजा करके उसे पृथ्वीपर भ्रमण करनेके लिये छोड़ा जाय। इसके लिये सामग्री एकत्रित हो, अच्छे-अच्छे ब्राह्मण बुलाये जायँ तथा स्वयं आप ही उन ब्राह्मणोंकी यथोचित पूजा करें। दीनों, अंधों और दुःखियोंका विधिवत् सत्कार करके उन्हें रहनेको स्थान दें और उनके मनमें जिस वस्तुके पानेकी इच्छा हो, वही

१-वाणिज्यं नृपतेः सेवा वेदानध्ययनं तथा। कुविवाहः क्रियालोपः कुलपातनहेतवः॥ (९। ४९)

२-अनर्चितोऽतिथिर्गेहाद् भग्नाशो यस्य गच्छति। आजन्मसञ्चितात् पुण्यात् क्षणात् स हि बहिर्भवेत्॥ (९। ५१)

३-षष्ठ्यष्टम्योर्विशेत् पापं तैले मांसे सदैव हि। चतुर्दश्यां तथामायां त्यजेत् सुरमङ्गनाम्॥ (९। ५३)

उन्हें दान करें। आप सुवर्णमयी सीताके साथ यज्ञकी दीक्षा लेकर उसके नियमोंका पालन करें—पृथ्वीपर सोवें, ब्रह्मचारी रहें तथा धन-सम्बन्धी भोगोंका परित्याग करें। आपके कटिभागमें मेखला सुशोभित हो, आप हरिणका सींग, मृगचर्म तथा दण्ड धारण करें तथा सब प्रकारके सामान और द्रव्य एकत्रित करके यज्ञका आरम्भ करें।'

महर्षि वसिष्ठके ये उत्तम और यथार्थ वचन सुनकर परम बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे अभिप्राययुक्त बात कही।

श्रीराम बोले—लक्ष्मण! मेरी बात सुनो और सुनकर तुरंत उसका पालन करो। जाओ, प्रयत्न करके अश्वमेध यज्ञके लिये उपयोगी अश्व ले आओ।

शेषजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर शत्रुविजयी लक्ष्मणने सेनापतिसे कहा—'वीर! मैं तुम्हें एक अत्यन्त प्रिय वचन सुना रहा हूँ, सुनो; श्रीरघुनाथजीकी आज्ञाके अनुसार शीघ्र ही हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदलसे युक्त चतुरंगिणी सेना तैयार करो, जो कालकी सेनाका भी विनाश करनेमें समर्थ हो।' महात्मा लक्ष्मणका यह कथन सुनकर कालजित् नामवाले सेनापतिने सेनाको सुसज्जित किया। उस समय लक्ष्मणके आदेशानुसार सजकर आये हुए अश्वमेधयज्ञके अश्वकी बड़ी शोभा हुई। एक श्रेष्ठ पुरुषने उसकी बागडोर पकड़ रखी थी। दस ध्वजक (चिह्न-विशेष) उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। अपने छोटे-छोटे रोएँके कारण भी वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। उसके गलेमें घुँघुरू पहनाये गये थे, जो एक-दूसरेसे मिले नहीं थे। विस्तृत कण्ठ-कोशमें मणि सुशोभित थी। मुखकी कान्ति भी बड़ी विशद थी और उसके दोनों कान छोटे-छोटे तथा काले थे। घासके ग्राससे उसका मुँह बड़ा सुहावना जान पड़ता था और चमकीले रत्नोंसे उसको सजाया गया था। इस प्रकार सज-धजकर मोतियोंकी मालाओंसे सुशोभित हो वह अश्व बाहर निकला। उसके ऊपर श्वेत छत्र तना हुआ था। दोनों ओरसे दो सफेद चँवर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। सारांश यह कि उस अश्वका सारा शरीर ही नाना प्रकारके शोभासाधनोंसे सम्पन्न था। जिस प्रकार देवतालोग सेवाके योग्य श्रीहरिकी सब ओरसे सेवा करते हैं, उसी प्रकार बहुत-से सैनिक उस घोड़ेके आगे-पीछे और बीचमें रहकर उसकी रक्षा कर रहे थे।

तदनन्तर सेनापति कालजित्ने अपनी विशाल सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाकर जन-समुदायसे भरी हुई वह विशाल वाहिनी छत्रोंसे सूर्यको ओटमें करके अपनी छावनीसे निकली। उस सेनाके सभी श्रेष्ठ वीर श्रीरघुनाथजीके यज्ञके लिये सुसज्जित हो गर्जते तथा युद्धके लिये उत्साह प्रकट करते हुए बड़े हर्षमें भरकर चले। सभी सैनिक हाथोंमें धनुष, पाश और खड्ग धारण किये सैनिक शिक्षाके अनुसार स्फुट गतिसे चलते हुए बड़ी तेजीके साथ महाराज श्रीरामके पास उपस्थित हुए। वह घोड़ा भी आकाशमें उछलता तथा पृथ्वीको अपनी टापसे खोदता हुआ धीरे-धीरे यज्ञ-चिह्नसे युक्त मण्डपके पास पहुँचा। घोड़ेको आया देख श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि वसिष्ठको समयोचित कार्य करनेके लिये प्रेरित किया। महर्षि वसिष्ठने श्रीरामचन्द्रजीको स्वर्णमयी पत्नीके साथ बुलाकर अनुष्ठान आरम्भ कराया। उस यज्ञमें वेद-शास्त्रोंका विवेचन करनेवाले बुद्धिमान महर्षि वसिष्ठ, जो श्रीरघुनाथजीके वंशके आदि गुरु थे, आचार्य हुए। तपोनिधि अगस्त्यजीने ब्रह्माका [कृताकृतावेक्षणरूप] कार्य सँभाला। वाल्मीकि मुनि अध्वर्यु बनाये गये और कण्व द्वारपाल। उस यज्ञ-मण्डपके आठ द्वार थे जो तोरण आदिसे सुसज्जित होनेके कारण बहुत सुन्दर दिखायी देते थे। वात्स्यायनजी! उनमेंसे प्रत्येक द्वारपर दो-दो मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण बिठाये गये थे। पूर्व द्वारपर मुनिश्रेष्ठ देवल और असित थे। दक्षिण द्वारपर तपस्याके भंडार महात्मा कश्यप और अत्रि विराजमान थे। पश्चिम द्वारपर श्रेष्ठ महर्षि जातूकर्ण्य और जाजलिकी उपस्थिति थी तथा उत्तर द्वारपर द्वित और एकत नामके दो तपस्वी मुनि विराज रहे थे।

ब्रह्मन्! इस प्रकार द्वारकी विधि पूर्ण करके महर्षि

वसिष्ठने उस यज्ञसम्बन्धी श्रेष्ठ अश्वका विधिवत् पूजन

आरम्भ किया। फिर सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे सुशोभित सुवासिनी स्त्रियोंने वहाँ आकर हल्दी, अक्षत और चन्दन आदिके द्वारा उस पूजित अश्वका पुनः पूजन किया तथा अगुरुका धूप देकर उसकी आरती उतारी। इस तरह पूजा करनेके पश्चात् महर्षि वसिष्ठने अश्वके उज्ज्वल ललाटपर, जो चन्दनसे चर्चित, कुंकुम आदि गन्धोंसे युक्त तथा सब प्रकारकी शोभाओंसे सम्पन्न था, एक चमचमाता हुआ पत्र बाँध दिया जो तपाये हुए सुवर्णका बना था। उस पत्रपर महर्षिने दशरथनन्दन श्रीरघुनाथजीके बढ़े हुए बल और प्रतापका इस प्रकार उल्लेख किया—'सूर्यवंशकी पताका फहरानेवाले महाराज दशरथ बहुत बड़े धनुर्धर हो गये हैं। वे धनुषकी दीक्षा देनेवाले गुरुओंके भी गुरु थे, उन्हींके पुत्र महाभाग श्रीरामचन्द्रजी इस समय रघुवंशके स्वामी हैं। वे सब सूरमाओंके शिरोमणि तथा बड़े-बड़े वीरोंके बल-सम्बन्धी अभिमानको चूर्ण करनेवाले हैं। महाराज श्रीरामचन्द्र ब्राह्मणोंकी बतायी हुई विधिके अनुसार अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ कर रहे हैं। उन्होंने ही यह यज्ञ-सम्बन्धी अश्व, जो समस्त अश्वोंमें श्रेष्ठ तथा सभी वाहनोंमें प्रधान है, पृथ्वीपर भ्रमण करनेके लिये छोड़ा है। श्रीरामके ही भाई शत्रुघ्न, जिन्होंने लवणासुरका विनाश किया है, इस अश्वके रक्षक हैं। उनके साथ हाथी, घोड़े और पैदलोंकी विशाल सेना भी है। जिन राजाओंको अपने बलके घमंडमें आकर ऐसा अभिमान होता हो कि हमलोग ही सबसे बढ़कर शूर, धनुर्धर तथा प्रचण्ड बलवान् हैं, वे ही रत्नकी मालाओंसे विभूषित इस यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको पकड़नेका साहस करें। वीर शत्रुघ्न उनके हाथसे इस अश्वको हठात् छुड़ा लेंगे।'

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाओंके पराक्रमसे शोभा पानेवाले उनके प्रखर प्रतापका परिचय देते हुए महामुनि वसिष्ठजीने और भी अनेकों बातें लिखीं। इसके बाद अश्वको, जो शोभाका भंडार तथा वायुके समान बल और वेगसे युक्त था, छोड़ दिया। उसकी भू-लोक तथा पातालमें समानरूपसे तीव्र गति थी। तदनन्तर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने शत्रुघ्नको आज्ञा दी—'सुमित्रानन्दन! यह अश्व अपनी इच्छाके अनुसार विचरनेवाला है, तुम इसकी रक्षाके लिये पीछे-पीछे जाओ। जो योद्धा संग्राममें तुम्हारा सामना करनेके लिये आवें, उन्हींको तुम अपने पराक्रमसे रोकना। इस विशाल भू-मण्डलमें विचरते हुए अश्वकी तुम अपने वीरोचित गुणोंसे रक्षा करना। जो सोये हों, गिर गये हों, जिनके वस्त्र खुल गये हों और जो अत्यन्त भयभीत होकर चरणोंमें पड़े हों, उनको न मारना। साथ ही जो अपने पराक्रमकी झूठी प्रशंसा नहीं करते, उन पुण्यात्माओंपर भी हाथ न उठाना। शत्रुघ्न! यदि तुम रथपर रहो और तुम्हारे विपक्षी रथहीन हो जायँ तो उन्हें न मारना। यदि पुण्य चाहो तो जो शरणागत होकर कहे कि 'हम आपहीके हैं,' उनका भी तुम्हें वध नहीं करना चाहिये। जो योद्धा उन्मत्त, मतवाले, सोये हुए, भागे हुए, भयसे आतुर हुए तथा 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा कहनेवाले मनुष्यको मारता है, वह नीच-गतिको प्राप्त होता है। कभी पराये धन और परायी स्त्रीकी ओर चित्त न ले जाना। नीचोंका संग न करना, सभी अच्छे गुणोंको अपनाये रहना, बड़े-बूढ़ोंके ऊपर पहले प्रहार न करना,

पूजनीय पुरुषोंकी पूजाका उल्लंघन न हो, इसके लिये सचेष्ट रहना तथा कभी दयाभावका परित्याग न करना। गौ, ब्राह्मण तथा धर्मपरायण वैष्णवको नमस्कार करना। इन्हें मस्तक झुकाकर मनुष्य जहाँ कहीं जाता है, वहीं उसे सफलता प्राप्त होती है।

'महाबाहो! भगवान् श्रीविष्णु सबके ईश्वर, साक्षी तथा सर्वत्र व्यापक स्वरूप धारण करनेवाले हैं। जो उनके भक्त हैं, वे भी उन्हींके रूपमें सर्वत्र विचरते हैं। जो लोग सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें स्थित रहनेवाले महाविष्णुका स्मरण करते हैं, उन्हें साक्षात् महाविष्णुके समान ही समझना चाहिये। जिनके लिये कोई अपना या पराया नहीं है तथा जो अपने साथ शत्रुता रखनेवालेको भी मित्र ही मानते हैं, वे वैष्णव एक ही क्षणमें पापीको पवित्र कर देते हैं। जिन्हें भागवत प्रिय है तथा जो ब्राह्मणोंसे प्रेम करते हैं, वे वैकुण्ठलोकसे इस संसारको पवित्र करनेके लिये यहाँ आते हैं। जिनके मुखमें भगवान्‌का नाम, हृदयमें सनातन श्रीविष्णुका ध्यान तथा उदरमें उन्हींका प्रसाद है, वे यदि जातिके चाण्डाल हों तो भी वैष्णव ही हैं। जिन्हें वेद ही अत्यन्त प्रिय हैं संसारके सुख नहीं, तथा जो निरन्तर अपने धर्मका पालन करते रहते हैं, उनसे भेंट होनेपर तुम उनके सामने मस्तक झुकाना। जिनकी दृष्टिमें शिव और विष्णुमें तथा ब्रह्मा और शिवमें भी कोई भेद नहीं है, उनके चरणोंकी पवित्र धूलि मैं अपने शीश चढ़ाता हूँ, वह समस्त पापोंका विनाश करनेवाली है।* गौरी, गंगा तथा महालक्ष्मी—इन तीनोंमें जो भेद नहीं समझते, उन सभी मनुष्योंको स्वर्गलोकसे भूमिपर आये हुए देवता समझना चाहिये। जो अपनी शक्तिके अनुसार भगवान्‌को प्रसन्नताके लिये शरणागतोंकी रक्षा तथा बड़े-बड़े दान किया करता है, उसे वैष्णवोंमें सर्वश्रेष्ठ समझो। जिनका नाम महान् पापोंकी राशिको तत्काल भस्म कर देता है, उन भगवान्‌के युगल-चरणोंमें जिसकी भक्ति है, वही वैष्णव है। जिनकी इन्द्रियाँ वशमें हैं और मन भगवान्‌के चिन्तनमें लगा रहता है, उनको नमस्कार करके मनुष्य अपने जन्मसे लेकर मृत्युतकके सम्पूर्ण जीवनको पवित्र बना लेता है। परायी स्त्रियोंको तलवारकी धार समझकर यदि तुम उनका परित्याग करोगे तो संसारमें तुम्हें सुयशसे सुशोभित ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार मेरे आदेशका पालन करते हुए तुम उत्तम योगके द्वारा प्राप्त होनेवाले परम धामको पा सकते हो, जिसकी सभी महात्माओंने प्रशंसा की है।'

शत्रुघ्न और पुष्कल आदिका सबसे मिलकर सेनासहित घोड़ेके साथ जाना, राजा सुमदकी कथा तथा सुमदके द्वारा शत्रुघ्नका सत्कार

शेषजी कहते हैं—मुने! शत्रुघ्नको इस प्रकार आदेश देकर भगवान् श्रीरामने अन्य योद्धाओंकी ओर देखते हुए पुनः मधुर वाणीमें कहा—'वीरो! मेरे भाई शत्रुघ्न घोड़ेकी रक्षाके लिये जा रहे हैं, तुमलोगोंमेंसे कौन वीर इनके आदेशका पालन करते हुए पीछेकी ओरसे इनकी रक्षा करनेके लिये जायगा? जो अपने मर्मभेदी अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा सामने आये हुए सब वीरोंको जीतने तथा भूमण्डलमें अपने सुयशको फैलानेमें समर्थ हो, वह मेरे हाथपर रखा हुआ यह बीड़ा उठा ले।' श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर भरतकुमार पुष्कलने आगे बढ़कर उनके करकमलसे वह बीड़ा उठा लिया और कहा—'स्वामिन्! मैं जाता हूँ; मैं ही कवच आदिके द्वारा सब ओरसे सुरक्षित हो तलवार आदि शस्त्र तथा धनुष-बाण धारण करके अपने चाचा शत्रुघ्नके पृष्ठभागकी रक्षा करूँगा। इस समय आपका प्रताप ही समूची पृथ्वीपर विजय प्राप्त करेगा; ये सब लोग तो

* शिवे विष्णौ न वा भेदो न च ब्रह्ममहेशयोः। तेषां पादरजः पूतं वहाम्यघविनाशनम्॥ (१०।६८)

केवल निमित्तमात्र हैं। यदि देवता, असुर और मनुष्योंसहित सारी त्रिलोकी युद्धके लिये उपस्थित हो जाय तो उसे भी मैं आपकी कृपासे रोकनेमें समर्थ हो सकता हूँ; ये सब बातें कहनेकी आवश्यकता नहीं है, मेरा पराक्रम देखकर प्रभुको स्वयं ही सब कुछ ज्ञात हो जायगा।'

ऐसा कहते हुए भरतकुमारकी बातें सुनकर भगवान् श्रीरामने उनकी प्रशंसा की तथा 'साधु-साधु' कहकर उनके कथनका अनुमोदन किया। इसके बाद वानरवीरोंमें प्रधान हनुमान्‌जी आदि सब लोगोंसे कहा—'महावीर हनुमान्! मेरी बात ध्यान देकर सुनो, मैंने तुम्हारे ही प्रसादसे यह अकण्टक राज्य पाया है। हमलोगोंने मनुष्य होकर भी जो समुद्रको पार किया तथा सीताके साथ जो मेरा मिलाप हुआ; यह सब कुछ मैं तुम्हारे ही बलका प्रभाव समझता हूँ। मेरी आज्ञासे तुम भी सेनाके रक्षक होकर जाओ। मेरे भाई शत्रुघ्नकी मेरी ही भाँति तुम्हें रक्षा करनी चाहिये। महामते! जहाँ-जहाँ भाई शत्रुघ्नकी बुद्धि विचलित हो वहाँ-वहाँ तुम इन्हें समझा-बुझाकर कर्तव्यका ज्ञान कराना।'

परमबुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीका यह श्रेष्ठ वचन सुनकर हनुमान्‌जीने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और जानेके लिये तैयार होकर प्रणाम किया। तब महाराजने जाम्बवान्‌को भी साथ जानेका आदेश दिया और कहा—'अंगद, गवय, मयन्द, दधिमुख, वानरराज सुग्रीव, शतबलि, अक्षिक, नील, नल, मनोवेग तथा अधिगन्ता आदि सभी वानर सेनाके साथ जानेको तैयार हो जायँ। सब लोग रथों तथा सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित अच्छे-अच्छे घोड़ोंपर सवार हो बख्तर और टोपसे सज-धजकर शीघ्र यहाँसे यात्रा करें।'

शेषजी कहते हैं—तत्पश्चात् बल और पराक्रमसे शोभा पानेवाले श्रीरामचन्द्रजीने अपने उत्तम मन्त्री सुमन्त्रको बुलाकर कहा—'मन्त्रिवर! बताओ, इस कार्यमें और किन-किन लोगोंको नियुक्त करना चाहिये? कौन-कौन मनुष्य अश्वकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं?' उनका प्रश्न सुनकर सुमन्त्र बोले—'श्रीरघुनाथजी! सुनिये, आपके यहाँ सम्पूर्ण शस्त्र और अस्त्रके ज्ञानमें निपुण, महान् विद्वान्, धनुर्धर तथा अच्छी प्रकार बाणोंका सन्धान करनेवाले अनेकों वीर उपस्थित हैं। उनके नाम ये हैं—प्रतापाग्र्य, नीलरत्न, लक्ष्मीनिधि, रिपुताप, उग्राश्व और शस्त्रवित्—ये सभी बड़े-बड़े राजा चतुरंगिणी सेनाके साथ कवच आदिसे सुसज्जित होकर जायँ और आपके घोड़ेकी रक्षा करते हुए शत्रुघ्नजीकी आज्ञा शिरोधार्य करें।' मन्त्रीकी यह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने उनके बताये हुए सभी योद्धाओंको जानेके लिये आदेश दिया। श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई; क्योंकि वे बहुत दिनोंसे युद्धकी इच्छा रखते थे और रणमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले थे। श्रीसीतापतिकी प्रेरणासे वे सभी राजा कवच आदिसे सुसज्जित हो अस्त्र-शस्त्र लेकर शत्रुघ्नके निवासस्थानपर गये।

तदनन्तर ऋषिकी आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजीने आचार्य आदि सभी ऋत्विज महर्षियोंको शास्त्रोक्त उत्तम दक्षिणायें देकर उनका विधिवत् पूजन किया। उस समय श्रीरघुनाथजीके यज्ञमें सब ओर यही बात सुनायी देती थी—देते जाओ, देते जाओ, खूब धन लुटाओ, किसीसे 'नहीं' मत करो, साथ ही समस्त भोग-सामग्रियोंसे युक्त अन्नका दान करो, अन्नका दान करो।' इस प्रकार वह यज्ञ चल रहा था। उसमें दक्षिणा पाये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी भरमार थी। वहाँ सभी तरहके शुभ कर्मोंका अनुष्ठान हो रहा था। इधर श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई शत्रुघ्न अपनी माताके पास जा उन्हें प्रणाम करके बोले—'कल्याणमयी माँ! मैं घोड़ेकी रक्षाके लिये जा रहा हूँ, मुझे आज्ञा दो। तुम्हारी कृपासे शत्रुओंको जीतकर विजयकी शोभासे सम्पन्न हो अन्य महाराजाओं तथा घोड़ेको साथ लेकर लौट आऊँगा।'

माता बोली—बेटा! जाओ, महावीर! तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो, सुमते! तुम अपने समस्त शत्रुओंको जीतकर फिर यहाँ लौट आओ। तुम्हारा भतीजा पुष्कल धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ है, उसकी रक्षा करना। बेटा! तुम पुष्कलके साथ सकुशल लौटकर आओगे, तभी मुझे अधिक प्रसन्नता होगी।

अपनी माताकी ऐसी बात सुनकर शत्रुघ्नने उत्तर दिया—'माँ! मैं अपने शरीरकी भाँति पुष्कलकी रक्षा

करूँगा तथा जैसा मेरा नाम है उसके अनुसार शत्रुओंका नाश करके प्रसन्नतापूर्वक लौटूँगा। तुम्हारे इन युगल चरणोंका स्मरण करके मैं कल्याणका ही भागी होऊँगा।' ऐसा कहकर वीर शत्रुघ्न वहाँसे चल दिये तथा यज्ञ-मण्डपसे छोड़ा हुआ वह यज्ञका अश्व अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्यामें प्रवीण सम्पूर्ण योद्धाओंद्वारा चारों ओरसे घिरकर सबसे पहले पूर्व दिशाकी ओर गया। उसका वेग वायुके समान था। जब वे चलनेको उद्यत हुए तो उनकी दाहिनी बाँह फड़क उठी और उन्हें कल्याण तथा विजयकी सूचना देने लगी। उधर पुष्कल अपने सुन्दर एवं समृद्धिशाली महलमें गये और वहाँ अपनी पतिव्रता पत्नीसे मिले, जो स्वामीके दर्शनके लिये उत्कण्ठित थी और उन्हें देखकर हर्षमें भर गयी थी। उससे मिलकर पुष्कलने कहा—'भद्रे! मैं चाचा शत्रुघ्नका पृष्ठपोषक होकर रथपर सवार हो यज्ञके घोड़ेकी रक्षाके लिये जा रहा हूँ; इस कार्यके लिये मुझे श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा मिल चुकी है। तुम यहाँ रहकर मेरी समस्त माताओंका सत्कार करना तथा चरण दबाना आदि सभी प्रकारकी सेवाएँ करना। उनके प्रत्येक कार्यमें—उनकी आज्ञाका पालन करनेमें आदर एवं उत्साहके साथ प्रवृत्त होना। यहाँ लोपामुद्रा आदि जितनी पतिव्रता देवियाँ आयी हुई हैं, वे सभी अपने तपोबलसे सुशोभित एवं कल्याणमयी हैं; तुम्हारे द्वारा उनमेंसे किसीका अपमान न हो जाय, इसके लिये सदा सावधान रहना।'

शेषजी कहते हैं—पुष्कल जब इस प्रकार उपदेश दे चुके तो उनकी पतिव्रता पत्नी कान्तिमतीने पतिकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा तथा अत्यन्त विश्वस्त होकर मन्द-मन्द मुसकराती हुई वह गद्गद वाणीमें बोली—'नाथ! संग्राममें आपकी सर्वत्र विजय हो, आपको चाचा शत्रुघ्नजीकी आज्ञाका सर्वथा पालन करना चाहिये तथा जिस प्रकार भी घोड़ेकी रक्षा हो उसके लिये सचेष्ट रहना चाहिये। स्वामिन्! आप शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके अपने श्रेष्ठ कुलकी शोभा बढ़ाइये। महाबाहो! जाइये, इस यात्रामें आपका कल्याण हो। यह है आपका धनुष, जो उत्तम गुण (सुदृढ़ प्रत्यञ्चा)-से सुशोभित है; इसे शीघ्र ही हाथमें लीजिये, इसकी टंकार सुनकर आपके शत्रुओंका दल भयसे व्याकुल हो उठेगा। वीर! ये आपके दोनों तरकश हैं; इन्हें बाँध लीजिये, जिससे युद्धमें आपको सुख मिले। इसमें वैरियोंको टुकड़े-टुकड़े कर डालनेवाले अनेक बाण भरे हैं। प्राणनाथ! कामदेवके समान सुन्दर अपने शरीरपर यह सुदृढ़ कवच धारण कीजिये, जो विद्युत्की प्रभाके समान अपने महान् प्रकाशसे अन्धकारको दूर किये देता है। प्रियतम! अपने मस्तकपर यह शिरस्त्राण (मुकुट) भी पहन लीजिये, जो मनको लुभानेवाला है। साथ ही मणियों और रत्नोंसे विभूषित ये दो उज्ज्वल कुण्डल हैं, इन्हें कानोंमें धारण कीजिये।'

पुष्कलने कहा—प्रिये! तुम जैसा कहती हो, वह सब मैं करूँगा। वीरपत्नी कान्तिमती! तुम्हारी इच्छाके अनुसार मेरी उत्तम कीर्तिका विस्तार होगा।

ऐसा कहकर पराक्रमी वीर पुष्कलने कान्तिमतीके दिये हुए कवच, सुन्दर मुकुट, धनुष और विशाल

तरकश—इन सभी वस्तुओंको ले लिया। उन सबको धारण करके वे वीरोचित शोभासे सम्पन्न दिखायी देने लगे। उस समय सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञानमें प्रवीण, उत्तम योद्धा पुष्कलकी शोभा बहुत बढ़ गयी। पतिव्रता कान्तिमतीने अस्त्र-शस्त्रोंसे शोभायमान अपने पतिको वीरमालासे विभूषित किया तथा कुंकुम, अगुरु, कस्तूरी और चन्दन आदिसे उनकी पूजा करके अनेकों फूलोंके हार पहनाये, जो घुटनेतक लटककर पुष्कलकी कान्ति बढ़ा रहे थे। पूजनके पश्चात् उस सतीने बारम्बार पतिकी आरती उतारी। उसके बाद पुष्कल बोले—'भामिनि!

अब मैं तुम्हारे सामने ही यात्रा करता हूँ।' पत्नीसे ऐसा कहकर वे सुन्दर रथपर आरूढ़ हुए और अपने पिता भरत तथा स्नेहविह्वला माता माण्डवीका दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ जाकर उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ पिता और माताके चरणोंमें मस्तक झुकाया। फिर पिता और माताकी आज्ञा लेकर वे पुलकित शरीरसे शत्रुघ्नकी सेनामें गये, जो बड़े-बड़े वीरोंसे सुशोभित थी।

तदनन्तर शत्रुघ्न श्रीरघुनाथजीके महायज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको आगे करके अनेकों रथियों, पैदल चलनेवाले शूरवीरों, अच्छे-अच्छे घोड़ों और सवारोंसे घिरकर बड़ी प्रसन्नताके साथ आगे बढ़े। वे घोड़ेके साथ-साथ पांचाल, कुरु, उत्तरकुरु और दशार्ण आदि देशोंमें, जो सम्पत्तिमें बहुत बढ़े-चढ़े थे, भ्रमण करते रहे। शत्रुघ्नजी सब प्रकारकी शोभासे सम्पन्न थे। उन्हें उन सभी देशोंमें श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण सुयशकी कथा सुनायी पड़ती थी, लोग कहते थे—'श्रीरघुनाथजीने रावण नामक असुरको मारकर अपने भक्तजनोंकी रक्षा की है, अब पुनः अश्वमेध आदि पवित्र कार्योंका अनुष्ठान आरम्भ करके भगवान् श्रीराम त्रिभुवनमें अपने सुयशका विस्तार करते हुए सम्पूर्ण लोकोंकी भयसे रक्षा करेंगे।' इस तरह भगवानका यशोगान करनेवाले लोगोंपर सन्तुष्ट होकर पुरुषश्रेष्ठ शत्रुघ्नजी उन्हें पुरस्कारके रूपमें सुन्दर हार, नाना प्रकारके रत्न और बहुमूल्य वस्त्र देते थे। श्रीरघुनाथजीके एक सचिव थे, जिनका नाम था सुमति। वे सम्पूर्ण विद्याओंमें प्रवीण और तेजस्वी थे। वे भी शत्रुघ्नजीके अनुगामी होकर आये थे। महावीर शत्रुघ्न उनके साथ अनेकों गाँवों और जनपदोंमें गये, किन्तु श्रीरघुनाथजीके प्रतापसे कोई भी उस घोड़ेका अपहरण न कर सका। भिन्न-भिन्न देशोंके जो बहुत-से राजे-महाराजे थे, वे यद्यपि महान् बलसे विभूषित तथा चतुरंगिणी सेनासे सम्पन्न थे, तथापि मोती और मणियोंसहित बहुत-सी सम्पत्ति साथ ले घोड़ेकी रक्षामें आये हुए शत्रुघ्नजीके चरणोंमें गिर जाते और बारम्बार कहने लगते थे—'रघुनन्दन! यह राज्य तथा पुत्र, पशु और बान्धवोंसहित सारा धन भगवान् श्रीरामका ही है, हमारा इसमें कुछ भी नहीं है।' उनकी ऐसी बातें सुनकर विपक्षी वीरोंका हनन करनेवाले शत्रुघ्नजी वहाँ अपनी आज्ञा घोषित कर देते और उन्हें साथ ले आगेके मार्गपर बढ़ जाते थे।

ब्रह्मन्! इस प्रकार क्रमशः आगे-आगे बढ़ते हुए शत्रुघ्नजी घोड़ेके साथ अहिच्छत्रा नगरीके पास जा पहुँचे, जो नाना प्रकारके मनुष्योंसे भरी हुई थी। उसमें ब्राह्मणों तथा अन्यान्य द्विजोंका निवास था। अनेकों प्रकारके रत्नोंसे वह पुरी सजायी गयी थी। सोने और स्फटिक

मणिके बने हुए महल तथा गोपुर (फाटक) उस नगरीकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँके मनुष्य सब प्रकारके भोग भोगनेवाले तथा सदाचारसे सुशोभित थे। वहाँ बाण सन्धान करनेमें चतुर वीर हाथोंमें धनुष लिये उस पुरीके श्रेष्ठ राजा सुमदको प्रसन्न किया करते थे। शत्रुघ्नने दूरसे ही उस नगरीको देखा। उसके पास ही एक उद्यान था, जो उस नगरमें सबसे श्रेष्ठ और शोभायमान दिखायी देता था। तमाल और ताल आदिके वृक्ष उसकी सुषमाको और भी बढ़ा रहे थे। यज्ञका घोड़ा उस उपवनके बीचमें घुस गया तथा उसके पीछे-पीछे वीर शत्रुघ्न भी, जिनके चरण-कमलोंकी सेवामें अनेकों धनुर्धर क्षत्रिय मौजूद थे, उसमें जा पहुँचे। वहाँ जानेपर उन्हें एक देव-मन्दिर दिखायी दिया, जिसकी रचना अद्भुत थी। वह कैलास शिखरके समान ऊँचा तथा शोभासे सम्पन्न था। देवताओंके लिये भी वह सेव्य जान पड़ता था। उस सुन्दर देवालयको देखकर श्रीरघुनाथजीके भाई शत्रुघ्नने अपने सुमति नामक मन्त्रीसे, जो अच्छे वक्ता थे, पूछा।

शत्रुघ्न बोले—मन्त्रिवर! बताओ, यह क्या है? किस देवताका मन्दिर है? किस देवताका यहाँ पूजन होता है तथा वे देवता किस हेतुसे यहाँ विराजमान हैं?

मन्त्री सब बातोंके जानकार थे, उन्होंने शत्रुघ्नका प्रश्न सुनकर कहा—'वीरवर! एकाग्रचित्त होकर सुनो, मैं सब बातोंका यथावत् वर्णन करता हूँ, इसे तुम कामाक्षा देवीका उत्तम स्थान समझो। यह जगत्‌को एकमात्र कल्याण प्रदान करनेवाला है। पूर्वकालमें अहिच्छत्रा नगरीके स्वामी राजा सुमदकी प्रार्थनासे भगवती कामाक्षा यहाँ विराजमान हुईं, जो भक्तोंका दुःख दूर करती हुई उनकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करती हैं। वीरशिरोमणि शत्रुघ्न! तुम इन्हें प्रणाम करो।' मन्त्रीके वचन सुनकर शत्रुओंको ताप देनेवाले नरश्रेष्ठ शत्रुघ्नने भगवती कामाक्षाको प्रणाम किया और उनके प्रकट होनेके सम्बन्धकी सब बातें पूछीं—'मन्त्रिवर! अहिच्छत्राके स्वामी राजा सुमद कौन हैं? उन्होंने कौन-सी तपस्या की है, जिसके प्रभावसे ये सम्पूर्ण लोकोंकी जननी कामाक्षा देवी सन्तुष्ट होकर यहाँ विराज रही हैं?'

सुमतिने कहा—हेमकूट नामसे प्रसिद्ध एक पवित्र पर्वत है, जो सम्पूर्ण देवताओंसे सुशोभित रहा करता है। वहाँ ऋषि-मुनियोंसे सेवित विमल नामका एक तीर्थ है। वहाँ राजा सुमदने तपस्या की थी। उनके राज्यकी सीमापर रहनेवाले सम्पूर्ण सामन्त नरेशोंने, जो वास्तवमें शत्रु थे, एक साथ मिलकर उनके राज्यपर चढ़ाई की। उस युद्धमें उनके पिता, माता तथा प्रजावर्गके लोग भी शत्रुओंके हाथसे मारे गये। तब सर्वथा असहाय होकर राजा सुमद तपस्याके लिये उपयोगी विमलतीर्थमें गये और वहाँ तीन वर्षतक एक पैरसे खड़े हो मन-ही-मन जगदम्बाका ध्यान करते रहे। उस समय उनकी आँखें नासिकाके अग्रभागपर जमी रहती थीं। इसके बाद तीन वर्षोंतक उन्होंने सूखे पत्ते चबाकर अत्यन्त उग्र तपस्या की, जिसका अनुष्ठान दूसरेके लिये अत्यन्त कठिन था। तत्पश्चात् पुनः तीन वर्षोंतक उन्होंने और भी कठोर नियम धारण किये—जाड़ेके दिनोंमें वे पानीमें डूबे रहते, गर्मीमें पंचाग्निका सेवन करते तथा वर्षाकालमें बादलोंकी ओर मुँह किये मैदानमें खड़े रहते थे। तदनन्तर पुनः तीन वर्षोंतक वे धीर राजा अपने हृदयान्तर्वर्ती प्राणवायुको रोककर केवल भवानीके ध्यानमें संलग्न रहे। उस समय उन्हें जगदम्बाके सिवा दूसरा कुछ दिखलायी नहीं देता था। इस प्रकार जब बारहवाँ वर्ष व्यतीत हो गया, तो उनकी भारी तपस्या देखकर इन्द्रने मन-ही-मन उसपर विचार किया और भयके कारण वे उनसे डाह करने लगे। उन्होंने अप्सराओंके साथ कामदेवको, जो ब्रह्मा और इन्द्रको भी परास्त करनेके लिये उद्यत रहता था, परिवारसहित बुलाकर इस प्रकार आज्ञा दी—'सखे कामदेव! तुम सबका मन मोहनेवाले हो, जाओ, मेरा एक प्रिय कार्य करो, जैसे भी हो सके राजा सुमदकी तपस्यामें विघ्न डालो।'

कामदेवने कहा—देवराज! मुझ सेवकके रहते हुए आप चिन्ता न कीजिये, आर्य! मैं अभी सुमदके

पास जाता हूँ। आप देवताओंकी रक्षा कीजिये।'

ऐसा कहकर कामदेव अपने सखा वसन्त तथा अप्सराओंके समूहको साथ लेकर हेमकूट पर्वतपर गया। वसन्तने जाते ही वहाँके सारे वृक्षोंको फल और फूलोंसे सुशोभित कर दिया। उनकी डालियोंपर कोयल कूकने तथा भ्रमर गुंजार करने लगे। दक्षिण दिशाकी ओरसे ठंडी-ठंडी हवा चलने लगी। जिसमें कृतमाला नदीके तीरपर खिले हुए लवंग-कुसुमोंकी सुगन्ध आ रही थी। इस प्रकार जब सुमदके वनमें वसन्तकी शोभा छा गयी, तो अप्सराओंमें श्रेष्ठ रम्भा अपनी सखियोंसे घिरकर सुमदके पास गयी। रम्भाका स्वर किन्नरोंके समान मनोहर था। वह मृदंग और पणव आदि नाना प्रकारके बाजे बजानेमें भी निपुण थी। राजाके समीप पहुँचकर उसने गाना आरम्भ कर दिया। महाराज सुमदने जब वह मधुर गान सुना, वसन्तकी मनोहारिणी छटा देखी तथा मनको लुभानेवाली कोयलकी मीठी तान सुनी तो चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, फिर सारा रहस्य उनकी समझमें आ गया। राजाको ध्यानसे जगा देख फूलोंका धनुष धारण करनेवाले कामदेवने बड़ी फुर्ती दिखायी। उसने उनके पीछेकी ओर खड़ा होकर तत्काल अपना धनुष चढ़ा लिया। इतनेहीमें एक अप्सरा अपने नेत्रपल्लवोंको नचाती हुई राजाके दोनों चरण दबाने लगी। दूसरी सामने खड़ी होकर कटाक्षपात करने लगी तथा तीसरी शरीरकी शृंगारजनित चेष्टाएँ (तरह-तरहके हाव-भाव) प्रदर्शित करने लगी। इस प्रकार अप्सराओंसे घिरकर जितेन्द्रियोंके शिरोमणि बुद्धिमान् राजा सुमद यों चिन्ता करने लगे—'ये सुन्दरी अप्सराएँ मेरी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये यहाँ आयी हैं। इन्हें इन्द्रने भेजा है। ये सब-की-सब उनकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य करेंगी।'

इस प्रकार चिन्तासे आकुल होकर धीरचित्त, मेधावी तथा वीर राजा सुमदने अपने हृदयमें अच्छी तरह विचार किया। इसके बाद वे देवांगनाओंसे बोले—'देवियो! आपलोग मेरे हृदय-मन्दिरमें विराजमान जगदम्बाकी स्वरूप हैं। आपलोगोंने जिस स्वर्गीय सुखकी चर्चा की है, वह अत्यन्त तुच्छ और अनिश्चित है। मैं भक्ति-भावसे जिनकी आराधनामें लगा हूँ, वे मेरी स्वामिनी जगदम्बा मुझे उत्तम वरदान देंगी। जिनकी कृपासे सत्यलोकको पाकर ब्रह्माजी महान् बने हैं, वे ही मुझे सब कुछ देंगी; क्योंकि वे भक्तोंका दुःख दूर करनेवाली हैं। भगवतीकी कृपाके सामने नन्दन-वन अथवा सुवर्णमण्डित मेरुगिरि क्या है? और वह सुधा भी किस गिनतीमें है, जो थोड़े-से पुण्यके द्वारा प्राप्त होनेवाली और दानवोंको दुःखमें डालनेवाली है?'

राजाका यह वचन सुनकर कामदेवने उनपर अनेकों बाणोंका प्रहार किया; किन्तु वह उनकी कुछ भी हानि न कर सका। वे सुन्दरी अप्सराएँ अपने कुटिल-कटाक्ष, नूपुरोंकी झनकार, आलिंगन तथा चितवन आदिके द्वारा उनके मनको मोहमें न डाल सकीं। अन्तमें निराश होकर जैसे आयी थीं, वैसे ही लौट गयीं और इन्द्रसे बोलीं—'राजा सुमदकी बुद्धि स्थिर है, उनपर हमारा जादू नहीं चल सकता।' अपने प्रयत्नके व्यर्थ होनेकी बात सुनकर इन्द्र डर गये। इधर जगदम्बाने महाराज सुमदको जितेन्द्रिय तथा अपने चरण-कमलोंके ध्यानमें दृढ़तापूर्वक स्थित देख उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनकी

कान्ति करोड़ों सूर्योंके समान थी। वे अपनी चार भुजाओंमें धनुष, बाण, अंकुश और पाश धारण किये हुए थीं। माताका दर्शन पाकर बुद्धिमान् राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बारम्बार मस्तक झुकाकर भक्तिभावनासे प्रकट हुई माता दुर्गाको प्रणाम किया। वे बारम्बार राजाके शरीरपर अपने कोमल हाथ फेरती हुई हँस रही थीं। महामति राजा सुमदके शरीरमें रोमांच हो आया। उनके अन्तःकरणकी वृत्ति भक्ति-भावसे उत्कण्ठित हो गयी और वे गद्गद स्वरसे माताकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'देवि! आपकी जय हो। महादेवि! भक्त-जन सदा आपकी ही सेवा करते हैं। ब्रह्मा और इन्द्र आदि समस्त देवता आपके युगल चरणोंकी आराधनामें लगे रहते हैं। आप पापके स्पर्शसे रहित हैं। आपहीके प्रतापसे अग्निदेव प्राणियोंके भीतर और बाहर स्थित होकर सारे जगत्‌का कल्याण करते हैं। महादेवि! देवता और असुर—सभी आपके चरणोंमें नतमस्तक होते हैं। आप ही विद्या तथा आप ही भगवान् विष्णुकी महामाया हैं। एकमात्र आप ही इस जगत्‌को पवित्र करनेवाली हैं। आप ही अपनी शक्तिसे इस संसारकी सृष्टि और पालन करती हैं। जगत्‌के जीवोंको मोहमें डालनेवाली भी आप ही हैं। सब देवता आपहीसे सिद्धि पाकर सुखी होते हैं। मातः! आप दयाकी स्वामिनी, सबकी वन्दनीया तथा भक्तोंपर स्नेह रखनेवाली हैं। मेरा पालन कीजिये। मैं आपके चरण-कमलोंका सेवक हूँ। मेरी रक्षा कीजिये।'

सुमतिने कहा—इस प्रकार की हुई स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर जगन्माता कामाक्षा अपने भक्त सुमदसे, जिनका शरीर तपस्याके कारण दुर्बल हो रहा था, बोलीं—'बेटा! कोई उत्तम वर माँगो।' माताका यह वचन सुनकर राजा सुमदको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने अपना खोया हुआ अकण्टक राज्य, जगन्माता भवानीके चरणोंमें अविचल भक्ति तथा अन्तमें संसारसागरसे पार उतारनेवाली मुक्तिका वरदान माँगा।

कामाक्षाने कहा—सुमद! तुम सर्वत्र अकण्टक राज्य प्राप्त करो और शत्रुओंके द्वारा तुम्हारी कभी पराजय न हो। जिस समय महायशस्वी श्रीरघुनाथजी रावणको मारकर सब सामग्रियोंसे सुशोभित अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करेंगे, उस समय शत्रुओंका दमन करनेवाले उनके महावीर भ्राता शत्रुघ्न वीर आदिसे घिरकर घोड़ेकी रक्षा करते हुए यहाँ आवेंगे। तुम उन्हें अपना राज्य, समृद्धि और धन आदि सब कुछ सौंपकर उनके साथ पृथ्वीपर भ्रमण करोगे तथा अन्तमें ब्रह्मा, इन्द्र और शिव आदिसे सेवित भगवान् श्रीरामको प्रणाम करके ऐसी मुक्ति प्राप्त करोगे, जो यम-नियमोंका साधन करनेवाले योगियोंके लिये भी दुर्लभ है।

ऐसा कहकर देवता और असुरोंसे अभिवन्दित कामाक्षा देवी वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं तथा सुमद भी अपने शत्रुओंको मारकर अहिच्छत्रा नगरीके राजा हुए। वही ये इस नगरीके स्वामी राजा सुमद हैं। यद्यपि ये सब प्रकारसे समर्थ तथा बल और वाहनोंसे सम्पन्न हैं तथापि तुम्हारे यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको नहीं पकड़ेंगे; क्योंकि महामायाने इस बातके लिये इनको भलीभाँति शिक्षा दी है।

शेषजी कहते हैं—सुमतिके मुखसे राजा सुमदका यह वृत्तान्त सुनकर महान् यशस्वी, बुद्धिमान् और बलवान् शत्रुघ्नजी बड़े प्रसन्न हुए तथा 'साधु-साधु' कहकर उन्होंने अपना हर्ष प्रकट किया। उधर अहिच्छत्राके स्वामी अपने सेवकगणोंसे घिरकर सुखपूर्वक राजसभामें विराजमान थे। वेदवेत्ता ब्राह्मण तथा धन-धान्यसे सम्पन्न वैश्य भी उनके पास बैठे थे; इससे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। इसी समय किसीने आकर राजासे कहा—'स्वामिन्! न जाने किसका घोड़ा नगरके पास आया है, जिसके ललाटमें पत्र बँधा हुआ है।' यह सुनकर राजाने तुरंत ही एक अच्छे सेवकको भेजा और कहा—'जाकर पता लगाओ, किस राजाका घोड़ा मेरे नगरके निकट आया है।' सेवकने जाकर सब बातका पता लगाया और महान् क्षत्रियोंसे सेवित राजा सुमदके पास आ आरम्भसे ही सारा वृत्तान्त कह सुनाया। 'श्रीरघुनाथजीका घोड़ा है' यह सुनकर बुद्धिमान् राजाको चिरकालकी पुरानी बातका स्मरण हो आया

और उन्होंने सब लोगोंको आज्ञा दी—'धन-धान्यसे सम्पन्न जो मेरे आत्मीय जन हैं, वे सब लोग अपने-अपने घरोंपर तोरण आदि मांगलिक वस्तुओंकी रचना करें।' इन सब बातोंके लिये आज्ञा देकर स्वयं राजा सुमद अपने पुत्र-पौत्र और रानी आदि समस्त परिवारको साथ लेकर शत्रुघ्नके पास गये। शत्रुघ्नने पुष्कल आदि योद्धाओं तथा मन्त्रियोंके साथ देखा, वीर राजा सुमद आ रहे हैं। राजाने आकर बड़ी प्रसन्नताके साथ शत्रुघ्नको प्रणाम किया और कहा—'प्रभो! आज मैं धन्य और कृतार्थ हो गया। आपने यहाँ दर्शन देकर मेरा बड़ा सत्कार किया। मैं चिरकालसे इस अश्वके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा था। माता कामाक्षा देवीने पूर्वकालमें जिस बातके लिये मुझसे कहा था, वह आज और इस समय पूरी हुई है। श्रीरामके छोटे भाई महाराज शत्रुघ्नजी! अब चलकर मेरी नगरीको देखिये, यहाँके मनुष्योंको कृतार्थ कीजिये तथा मेरे समस्त कुलको पवित्र बनाइये।' ऐसा कहकर राजाने चन्द्रमाके समान कान्तिवाले श्वेत गजराजपर शत्रुघ्न और महावीर पुष्कलको चढ़ाया तथा पीछे स्वयं भी सवार हुए। फिर महाराज सुमदकी आज्ञासे भेरी और पणव आदि बाजे बजने लगे, वीणा आदिकी मधुर ध्वनि होने लगी तथा इन समस्त वाद्योंकी तुमुल ध्वनि चारों ओर व्याप्त हो गयी। धीरे-धीरे नगरमें आकर सब लोगोंने शत्रुघ्नजीका अभिनन्दन किया—उनकी वृद्धिके लिये शुभकामना प्रकट की तथा वे वीरोंसे सुशोभित हो अपने अश्वरत्नको

साथ लिये राज-मन्दिरमें उतरे। उस समय सारा राजभवन तोरण आदिसे सजाया गया था तथा स्वयं राजा सुमद शत्रुघ्नजीको आगे करके चल रहे थे। महलमें पहुँचकर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अर्घ्य आदिके द्वारा शत्रुघ्नजीका पूजन किया और अपना सब कुछ भगवान् श्रीरामकी सेवामें अर्पण कर दिया।

शत्रुघ्नका राजा सुमदको साथ लेकर आगे जाना और च्यवन मुनिके आश्रमपर पहुँचकर सुमतिके मुखसे उनकी कथा सुनना—च्यवनका सुकन्यासे ब्याह

शेषजी कहते हैं—तदनन्तर नरश्रेष्ठ राजा सुमदने श्रीरघुनाथजीकी उत्तम कथा सुननेके लिये उत्सुक होकर स्वागत-सत्कारसे संतुष्ट हुए शत्रुघ्नजीसे वार्तालाप आरम्भ किया।

सुमद बोले—महामते! सम्पूर्ण लोकोंके शिरोमणि, भक्तोंकी रक्षाके लिये अवतार ग्रहण करनेवाले तथा मुझपर निरन्तर अनुग्रह रखनेवाले भगवान् श्रीराम अयोध्यामें सुखपूर्वक तो विराज रहे हैं न? ये सब लोग धन्य हैं, जो सदा आनन्दमग्न होकर अपने नेत्र-पुटोंके द्वारा श्रीरघुनाथजीके मुखारविन्दका मकरन्द पान करते रहते हैं। नरश्रेष्ठ! अब मेरी कुल-परम्परा तथा राज्य-भूमि आदि सब वस्तुएँ पूर्ण सफल हो गयीं। दयासे द्रवित होनेवाली माता कामाक्षा देवीने पूर्वकालमें मुझपर बड़ी कृपा की थी।

राजाओंमें श्रेष्ठ वीर सुमदके ऐसा कहनेपर शत्रुघ्नने श्रीरघुनाथजीके गुणोंको प्रकट करनेवाली सब कथाएँ

कह सुनायीं। वे तीन रात्रितक वहाँ ठहरे रहे। इसके बाद उन्होंने राजाके साथ वहाँसे जानेका विचार किया। उनका अभिप्राय जानकर सुमदने शीघ्र ही अपने पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया तथा उन महाबुद्धिमान नरेशने शत्रुघ्नके सेवकोंको बहुत-से वस्त्र, रत्न और नाना प्रकारके धन दिये। तत्पश्चात् शत्रुघ्नने धनुष धारण किये हुए राजा सुमदको साथ लेकर अपने बहुत मन्त्रियों, पैदल योद्धाओं, हाथियों और अच्छे घोड़े जुते हुए अनेकों रथोंके साथ वहाँसे यात्रा आरम्भ की। श्रीरघुनाथजीके प्रतापका आश्रय लेकर वे हँसते-हँसते मार्ग तय करने लगे। पयोष्णी नदीके तीरपर पहुँचकर उन्होंने अपनी चाल तेज कर दी तथा शत्रुओंपर प्रहार करनेवाले समस्त योद्धा भी पीछे-पीछे उनका साथ देने लगे। वे तपस्वी ऋषियोंके भाँति-भाँतिके आश्रम देखते तथा वहाँ श्रीरघुनाथजीके गुणगान सुनते हुए यात्रा कर रहे थे। उस समय उन्हें चारों ओर मुनियोंकी यह कल्याणमयी वाणी सुनायी पड़ती थी—'यह यज्ञका अश्व जा रहा है, जो श्रीहरिके अंशावतार श्रीशत्रुघ्नजीके द्वारा सब ओरसे सुरक्षित है। भगवानका अनुसरण करनेवाले वानर तथा भगवद्भक्त भी उसकी रक्षा कर रहे हैं।' जिनकी चित्तवृत्तियाँ भक्तिसे निरन्तर प्रभावित रहती हैं, उन महर्षियोंकी पूर्वोक्त बातें सुनकर शत्रुघ्नजीको बड़ा सन्तोष हुआ। आगे जाकर उन्होंने एक विशुद्ध आश्रम देखा, जो निरन्तर होनेवाली वेदोंकी ध्वनिसे उसको श्रवण करनेवाले मनुष्योंका सारा अमंगल नष्ट किये देता था। वहाँका सम्पूर्ण आकाश अग्निहोत्रके समय दी जानेवाली आहुतिके धूमसे पवित्र हो गया था। श्रेष्ठ मुनियोंके द्वारा स्थापित किये हुए अनेकों यज्ञसम्बन्धी यूप उस आश्रमको सुशोभित कर रहे थे। वहाँ सिंह भी पालन करनेयोग्य गौओंकी रक्षा करते थे। चूहे अपने रहनेके लिये बिल नहीं खोदते थे, क्योंकि वहाँ उन्हें बिल्लियोंसे भय नहीं था। साँप सदा मोरों और नेवलोंके साथ खेलते रहते थे। हाथी और सिंह एक-दूसरेके मित्र होकर उस आश्रमपर निवास करते थे। मृग वहाँ प्रेमपूर्वक चरते रहते थे, उन्हें किसीसे भय नहीं था। गौओंके थन घड़ोंके समान

दिखायी देते थे। उनका विग्रह नन्दिनीकी भाँति सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला था और वे अपने खुरोंसे उठी हुई धूलके द्वारा वहाँकी भूमिको पवित्र करती थीं। हाथोंमें समिधा धारण करनेवाले श्रेष्ठ मुनिवरोंने वहाँकी भूमिको धार्मिक क्रियाओंका अनुष्ठान करनेके योग्य बना रखा था। उस आश्रमको देखकर शत्रुघ्नजीने सब बातोंको जाननेवाले श्रीराममन्त्री सुमतिसे पूछा।

शत्रुघ्नजी बोले—सुमते! यह सामने किस मुनिका आश्रम शोभा पा रहा है? यहाँ सब जन्तु आपसका वैर-भाव छोड़कर एक ही साथ निवास करते हैं तथा यह मुनियोंकी मण्डलीसे भी भरा-पूरा दिखायी देता है। मैं मुनिकी बातें सुनूँगा तथा उनका वृत्तान्त श्रवण करके अपनेको पवित्र करूँगा।

महात्मा शत्रुघ्नके ये उत्तम वचन सुनकर परम मेधावी श्रीरघुनाथजीके मन्त्री सुमतिने कहा—'सुमित्रानन्दन! इसे महर्षि च्यवनका आश्रम समझो। यह बड़े-बड़े तपस्वियोंसे सुशोभित तथा वैरशून्य जन्तुओंसे भरा हुआ है। मुनियोंकी पत्नियाँ भी यहाँ

निवास करती हैं। महामुनि च्यवन वे ही हैं, जिन्होंने मनुपुत्र शर्यातिके महान् यज्ञमें इन्द्रका मान भंग किया और अश्विनीकुमारोंको यज्ञका भाग दिया था।

शत्रुघ्नने पूछा—मन्त्रिवर! महर्षि च्यवनने कब अश्विनीकुमारोंको देवताओंकी पंक्तिमें बिठाकर उन्हें यज्ञका भाग अर्पण किया था? तथा देवराज इन्द्रने उस महान् यज्ञमें क्या किया था?

सुमतिने कहा—सुमित्रानन्दन! ब्रह्माजीके वंशमें महर्षि भृगु बड़े विख्यात महात्मा हुए हैं। एक दिन सन्ध्याके समय समिधा लानेके लिये वे आश्रमसे दूर चले गये थे। उसी समय दमन नामका एक महाबली राक्षस उनके यज्ञका नाश करनेके लिये आया और उच्च स्वरसे अत्यन्त भयंकर वचन बोला—'कहाँ है वह अधम मुनि और कहाँ है उसकी पापरहित पत्नी?' वह रोषमें भरकर जब बारम्बार इस प्रकार कहने लगा तो अग्निदेवताने अपने ऊपर राक्षससे भय उपस्थित जानकर मुनिकी पत्नीको उसे दिखा दिया। वह सती-साध्वी नारी गर्भवती थी। राक्षसने उसे पकड़ लिया। बेचारी अबला कुररीकी भाँति विलाप करने लगी—'महर्षि भृगु! रक्षा करो, पतिदेव! बचाओ, प्राणनाथ! तपोनिधे!! मेरी रक्षा करो।' इस प्रकार वह आर्तभावसे पुकार रही थी, तथापि राक्षस उसे लेकर आश्रमसे बाहर चला गया और दुष्टताभरी बातोंसे महात्मा भृगुकी उस पतिव्रता पत्नीको अपमानित करने लगा। उस समय महान् भयसे त्रस्त होकर वह गर्भ मुनिपत्नीके पेटसे गिर गया। उस नवजात शिशुके नेत्र प्रज्वलित हो रहे थे, मानो सतीके शरीरसे अग्निदेव ही प्रकट हुए हों। उसने राक्षसकी ओर देखकर कहा—'ओ दुष्ट! अब तू यहाँसे न जा, अभी जलकर भस्म हो जा। सतीका स्पर्श करनेके कारण तेरा कल्याण न होगा।' बालकके इतना कहते ही वह राक्षस गिर पड़ा और तुरंत जलकर राखका ढेर हो गया। तब माता अपने बच्चेको गोदमें लेकर उदास मनसे आश्रमपर आयी। महर्षि भृगुको जब मालूम हुआ कि यह सब अग्निदेवकी ही करतूत है तो वे क्रोधमें व्याकुल हो उठे और शाप देते हुए बोले—'शत्रुको घरका भेद बतानेवाले दुष्टात्मा! तू सर्वभक्षी हो जा (पवित्र, अपवित्र—सभी वस्तुओंका आहार कर)।' यह शाप सुनकर अग्निदेवको बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने मुनिके चरण पकड़ लिये और कहा—प्रभो! तुम दयाके सागर हो। महामते! मुझपर अनुग्रह करो। धार्मिकशिरोमणे! मैंने झूठ बोलनेके भयसे उस राक्षसको आपकी पत्नीका पता बता दिया था, इसलिये मुझपर कृपा करो।'

अग्निकी प्रार्थना सुनकर तपस्वी मुनि दयासे द्रवित हो गये और उनपर अनुग्रह करते हुए इस प्रकार बोले—'अग्ने! तुम सर्वभक्षी होकर भी पवित्र ही रहोगे।' तत्पश्चात् परम मंगलमय विप्रवर भृगुने स्नान आदिसे पवित्र हो हाथमें कुश लेकर गर्भसे गिरे हुए अपने पुत्रका जातकर्म आदि संस्कार किया। उस समय सम्पूर्ण तपस्वियोंने गर्भसे च्युत होनेके कारण उस बालकका नाम च्यवन रख दिया। भृगुकुमार च्यवन शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके चन्द्रमाकी भाँति धीरे-धीरे बढ़ने लगे। कुछ बड़े हो जानेपर वे तपस्या करनेके लिये जगत्‌को पवित्र करनेवाली नर्मदा नदीके तटपर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की।

उनके दोनों कंधोंपर दीमकोंने मिट्टीकी ढेरी जमा कर दी और उसपर दो पलाशके वृक्ष उग आये। हरिण उत्सुकतापूर्वक वहाँ आते और मुनिके शरीरमें अपनी देह रगड़कर खुजली मिटाते थे; किन्तु उनको इन सब बातोंका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था। वे अविचलभावसे स्थिर रहते थे।

एक समयकी बात है। मनुके पुत्र राजा शर्याति तीर्थयात्राके लिये तैयार होकर परिवारसहित नर्मदाके तटपर गये, उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। महानदी नर्मदामें स्नान करके उन्होंने देवता और पितरोंका तर्पण किया तथा भगवान् श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके दान दिये। राजाके एक कन्या थी, जो तपाये हुए सोनेके आभूषण पहनकर बड़ी सुन्दरी दिखायी देती थी। वह अपनी सखियोंके साथ वनमें इधर-उधर विचरने लगी। वहाँ उसने महान् वृक्षोंसे सुशोभित वल्मीक (मिट्टीका ढेर) देखा, जिसके भीतर एक ऐसा तेज दीख पड़ा, जो निमेष और उन्मेषसे रहित था (उसमें खुलने-मिचनेकी क्रिया नहीं होती थी)। राजकन्या कौतूहलवश उसके पास गयी और शलाकाओंसे दबाकर उसे फोड़ डाला। फूटनेपर उससे खून निकलने लगा। यह देखकर राजकुमारीको बड़ा खेद हुआ और वह दुःखसे कातर हो गयी। अपराधसे दबी होनेके कारण उसने माता और पिताको इस दुर्घटनाका हाल नहीं बताया। वह भयसे आतुर होकर स्वयं ही अपने लिये शोक करने लगी। उस समय पृथ्वी काँपने लगी, आकाशसे उल्कापात होने लगा, सारी दिशाएँ धूमिल हो गयीं तथा सूर्यके चारों ओर घेरा पड़ गया। राजाके कितने ही घोड़े नष्ट हो गये, बहुतेरे हाथी मर गये; धन और रत्नका नाश हो गया तथा उनके साथ आये हुए लोगोंमें परस्पर कलह होने लगा।

यह उत्पात देखकर राजा डर गये, उनका मन कुछ उद्विग्न हो गया। वे सब लोगोंसे पूछने लगे—'किसीने मुनिका अपराध तो नहीं किया है?' परम्परासे उन्हें अपनी पुत्रीकी करतूत मालूम हो गयी और वे अत्यन्त दुःखी होकर सेना और सवारियोंसहित मुनिके पास गये। भारी तपस्यामें लगे हुए तपोनिधि च्यवन मुनिको देखकर राजाने स्तुतिके द्वारा उन्हें प्रसन्न किया और कहा—'मुनिवर! दया कीजिये।' तब महातपस्वी मुनिश्रेष्ठ च्यवनने सन्तुष्ट होकर कहा—'महाराज! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि यह सारा उत्पात तुम्हारी पुत्रीका ही किया हुआ है। तुम्हारी कन्याने मेरी आँखें फोड़ डाली हैं, इनसे बहुत खून गिरा है. इस बातको जानते हुए भी उसने तुमसे नहीं बताया है; इसलिये अब तुम शास्त्रीय विधिके अनुसार मुझे उस कन्याका दान कर दो, तब सारे उत्पातोंकी शान्ति हो जायगी।' यह सुनकर राजाको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने उत्तम कुल, नयी अवस्था, सुन्दर रूप, अच्छे स्वभाव तथा शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अपनी प्यारी पुत्री उन अंधे महर्षिको ब्याह दी। राजाने कमलके समान नेत्रोंवाली उस कन्याका जब दान कर दिया तो मुनिके क्रोधसे प्रकट हुए सारे उत्पात तत्काल शान्त हो गये। इस प्रकार तपोनिधि मुनिवर च्यवनको अपनी कन्या देकर राजा शर्याति फिर अपनी राजधानीको लौट आये। पुत्रीपर दया आनेके कारण वे बहुत दुःखी थे।

सुकन्याके द्वारा पतिकी सेवा, च्यवनको यौवन-प्राप्ति, उनके द्वारा अश्विनीकुमारोंको यज्ञभाग-अर्पण तथा च्यवनका अयोध्या-गमन

सुमतिने कहा—सुमित्रानन्दन! राजा शर्यातिके चले जानेके पश्चात् महर्षि च्यवन पत्नीरूपमें प्राप्त हुई उनकी कन्याके साथ अपने आश्रमपर रहने लगे। उसको पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। योगाभ्यासमें प्रवृत्त होनेके कारण उनके सारे पाप धुल गये थे। वह कन्या अपने श्रेष्ठ पतिकी भगवद्बुद्धिसे सेवा करने लगी। यद्यपि वे नेत्रोंसे हीन थे और बुढ़ापाके कारण उनकी शारीरिक शक्ति जवाब दे चुकी थी, तथापि वह उन्हें

अपने अभीष्ट पूर्ण करनेवाले कुलदेवताके समान समझकर उनकी शुश्रूषा करती थी। जैसे शची इन्द्रकी सेवामें तत्पर होकर प्रसन्नता प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार उस सुन्दरी सतीको अपने प्रियतम पतिकी सेवामें बड़ा आनन्द आता था। पति भी साधारण नहीं, तपस्याके भण्डार थे और उनका आशय (मनोभाव) बहुत ही गम्भीर था, तो भी वह उनकी प्रत्येक चेष्टाको जानती—हर एक अभिप्रायको समझती हुई शुश्रूषामें संलग्न रहती थी। वह सुन्दर शरीरवाली राजकुमारी सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और कृशांगी थी, तो भी फल, मूल और जलका आहार करती हुई अपने स्वामीके चरणोंकी सेवा करती थी। सदा पतिकी आज्ञा पालन करनेके लिये तैयार रहती और उन्हींके पूजन (आदर-सत्कार)-में समय बिताती थी। सम्पूर्ण प्राणियोंका हित-साधन करनेमें उसका अनुराग था। वह काम, दम्भ, द्वेष, लोभ, भय और मदका परित्याग करके सावधानीके साथ उद्यत रहकर सर्वदा च्यवन मुनिको सन्तुष्ट रखनेका यत्न करती थी। महाराज! इस प्रकार वाणी, शरीर और क्रियाके द्वारा मुनिकी सेवा करती हुई उस राजकुमारीने एक हजार वर्ष व्यतीत कर दिये तथा अपनी कामनाको मनमें ही रखा [मुनिपर कभी प्रकट नहीं किया]।

एक समयकी बात है, मुनिके आश्रमपर देववैद्य अश्विनीकुमार पधारे। सुकन्याने स्वागतके द्वारा उनका सम्मान करके उन दोनोंका पूजन (आतिथ्य-सत्कार) किया। शर्यातिकुमारी सुकन्याके किये हुए पूजन तथा अर्घ्य-पाद्य आदिसे उन सुन्दर शरीरवाले अश्विनीकुमारोंके मनमें प्रसन्नता हुई। उन्होंने स्नेहवश उस सुन्दरीसे कहा—'देवि! तुम कोई वर माँगो।' उन दोनों देववैद्योंको सन्तुष्ट देख बुद्धिमती नारियोंमें श्रेष्ठ राजकुमारी सुकन्याने उनसे वर माँगनेका विचार किया। अपने पतिके अभिप्रायको लक्ष्य करके उसने कहा—'देवताओ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरे पतिको नेत्र प्रदान कीजिये।' सुकन्याका यह मनोहर वचन सुनकर तथा उसके सतीत्वको देखकर उन श्रेष्ठ वैद्योंने कहा—'यदि तुम्हारे पति यज्ञमें हमलोगोंको देवोचित भाग अर्पण कर सकें तो हम इनके नेत्रोंमें स्पष्टरूपसे

देखनेकी शक्ति पैदा कर सकते हैं।' च्यवनने भी उन तेजस्वी देवताओंको यज्ञमें भाग देनेके लिये हामी भर दी। तब वे दोनों अश्विनीकुमार अत्यन्त प्रसन्न होकर महान् तपस्वी च्यवनसे बोले—'मुने! सिद्धोंद्वारा तैयार किये हुए इस कुण्डमें आप गोता लगावें।' ऐसा कहकर उन्होंने च्यवन मुनिको, जिनका शरीर वृद्धावस्थाका ग्रास बन चुका था तथा जिनकी नस-नाड़ियाँ साफ दिखायी दे रही थीं, उस कुण्डमें प्रवेश कराया और स्वयं भी उसमें गोता लगाया। तत्पश्चात् उस कुण्डमेंसे तीन पुरुष प्रकट हुए जो अत्यन्त सुन्दर और नारियोंका मन मोहनेवाले थे। उनका रूप एक ही समान था। सोनेके हार, कुण्डल तथा सुन्दर वस्त्र—तीनोंके शरीरपर शोभा पा रहे थे। सुन्दर शरीरवाली सुकन्या उन तीनोंको अत्यन्त रूपवान् और सूर्यके समान तेजस्वी देखकर अपने पतिको पहचान न सकी। तब वह साध्वी दोनों अश्विनीकुमारोंकी शरणमें गयी। सुकन्याके पातिव्रत्यसे सन्तुष्ट होकर उन्होंने उसके पतिको दिखा दिया और ऋषिसे विदा ले वे दोनों विमानपर बैठकर स्वर्गको

चले गये। अब उन्हें इस बातकी आशा हो गयी थी कि अब मुनि यज्ञ करेंगे तो उसमें हमलोगोंको भी अवश्य भाग देंगे।

तदनन्तर किसी समय राजा शर्यातिके मनमें यह इच्छा हुई कि मैं यज्ञद्वारा देवताओंका पूजन करूँ। उस समय उन्होंने महर्षि च्यवनको बुलानेके लिये अपने कई सेवक भेजे। उनके बुलानेपर महातपस्वी विप्रवर च्यवन वहाँ गये। साथमें उनकी धर्मपत्नी सुकन्या भी थी, जो मुनियोंके समान आचार-विचारका पालन करनेमें पक्की हो गयी थी। जब पत्नीके साथ वे महर्षि राजभवनमें पधारे, तब महायशस्वी राजा शर्यातिने देखा कि मेरी कन्याके पास एक सूर्यके समान तेजस्वी पुरुष खड़ा है। सुकन्याने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया, किन्तु शर्यातिने उसे आशीर्वाद नहीं दिया। वे कुछ अप्रसन्न-से होकर

पुत्रीसे बोले—'अरी! तूने यह क्या किया? अपने पति महर्षि च्यवनको, जो सब लोगोंके वन्दनीय हैं, धोखा तो नहीं दे दिया? क्या तूने उन्हें बूढ़ा और अप्रिय जानकर छोड़ दिया और अब तू इस राह चलते जार पुरुषकी सेवा कर रही है? तेरा जन्म तो श्रेष्ठ पुरुषोंके कुलमें हुआ है, फिर ऐसी उलटी बुद्धि तुझे कैसे प्राप्त हुई? ऐसा करके तू तो अपने पिता तथा पति—दोनोंके कुलको नरकमें ले जा रही है?' पिताके ऐसा कहनेपर पवित्र मुसकानवाली सुकन्या किंचित् मुसकराकर बोली—'पिताजी! ये जार पुरुष नहीं—आपके जामाता भृगुनन्दन महर्षि च्यवन ही हैं।' इसके बाद उसने पतिको नयी अवस्था और सौन्दर्य-प्राप्तिका सारा समाचार पितासे कह सुनाया। सुनकर राजा शर्यातिको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर पुत्रीको छातीसे लगा लिया। इसके बाद च्यवनने राजासे सोमयागका अनुष्ठान कराया और सोमपानके अधिकारी न होनेपर भी दोनों अश्विनीकुमारोंके लिये उन्होंने सोमका भाग निश्चित किया। महर्षि तपोबलसे सम्पन्न थे, अतः उन्होंने अपने तेजसे अश्विनीकुमारोंको सोमरसका पान कराया। अश्विनीकुमार वैद्य होनेके कारण पंक्तिपावन देवताओंमें नहीं गिने जाते थे—उन्हें देवता अपनी पंक्तिमें नहीं बिठाते थे; परन्तु उस दिन ब्राह्मणश्रेष्ठ च्यवनने उन्हें देवपंक्तिमें बैठनेका अधिकारी बनाया। यह देखकर इन्द्रको क्रोध आ गया और वे हाथमें वज्र लेकर उन्हें मारनेको तैयार हो गये। वज्रधारी इन्द्रको अपना वध करनेके लिये उद्यत देख बुद्धिमान् महर्षि च्यवनने एक बार हुंकार किया और उनकी भुजाओंको स्तम्भित कर दिया। उस समय सब लोगोंने देखा, इन्द्रकी भुजाएँ जड़वत् हो गयी हैं।

बाहें स्तम्भित हो जानेपर इन्द्रकी आँखें खुलीं और उन्होंने मुनिकी स्तुति करते हुए कहा—'स्वामिन्! आप अश्विनीकुमारोंको यज्ञका भाग अर्पण कीजिये, मैं नहीं रोकता। तात! एक बार मैंने जो अपराध किया है, उसको क्षमा कीजिये।' उनके ऐसा कहनेपर दयासागर महर्षिने तुरंत क्रोध त्याग दिया और इन्द्रकी भुजाएँ भी तत्काल बन्धनमुक्त हो गयीं—उनकी जड़ता दूर हो गयी। यह देखकर सब लोगोंका हृदय विस्मयपूर्ण कौतूहलसे भर गया। वे ब्राह्मणोंके बलकी, जो देवता आदिके लिये भी दुर्लभ है, सराहना करने लगे। तदनन्तर शत्रुओंको ताप देनेवाले महाराज शर्यातिने

ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दिया और यज्ञके अन्तमें अवभृथस्नान किया।

सुमित्रानन्दन! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने कह सुनाया। महर्षि च्यवन तपस्या और योगबलसे सम्पन्न हैं। इन तपोमूर्ति महात्माको प्रणाम करके तुम विजयका आशीर्वाद ग्रहण करो और श्रीरामचन्द्रजीके मनोहर यज्ञमें इन्हें पत्नीसहित पधारनेके लिये प्रार्थना करो।

शेषजी कहते हैं—शत्रुघ्न और सुमतिमें इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था, इतनेहीमें यज्ञका घोड़ा आश्रमके पास जा पहुँचा और उस महान् आश्रममें घूम-घूमकर मुखके अग्रभागसे दूबके अंकुर चरने लगा। इसी बीचमें शत्रुघ्न भी च्यवन मुनिके शोभायमान आश्रमपर पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने सुकन्याके पास बैठे हुए महर्षि च्यवनका दर्शन किया, जो तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप-से जान पड़ते थे। सुमित्राकुमारने अपना

नाम बतलाते हुए मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'मुने! मैं श्रीरघुनाथजीका भाई और इस अश्वका रक्षक शत्रुघ्न हूँ। अपने महान् पापोंकी शान्तिके लिये आपको नमस्कार करता हूँ।' यह वचन सुनकर मुनिवर च्यवनने कहा—'नरश्रेष्ठ शत्रुघ्न! तुम्हारा कल्याण हो। इस यज्ञरूपी अश्वका पालन करनेसे संसारमें तुम्हारे महान् यशका विस्तार होगा।' शत्रुघ्नसे ऐसा कहकर महर्षिने आश्रमवासी ब्राह्मणोंसे कहा—'ब्रह्मर्षियो! यह आश्चर्यकी बात देखो, जिनके नामोंके स्मरण और कीर्तन आदि मनुष्यके समस्त पापोंका नाश कर देते हैं, वे भगवान् श्रीराम भी यज्ञ करनेवाले हैं। महान् पातकी और परस्त्री-लम्पट पुरुष भी जिनका नाम स्मरण करके आनन्दपूर्वक परमगतिको प्राप्त होते हैं।[1] जिनके चरणकमलोंकी धूलि पड़नेसे पत्थरकी मूर्ति बनी हुई अहल्या तत्क्षण मनोहर रूप धारण करके महर्षि गौतमकी धर्मपत्नी हो गयी। रणक्षेत्रमें जिनके मनोहारी रूपका दर्शन करके दैत्योंने उन्हींके निर्विकार स्वरूपको प्राप्त कर लिया तथा योगीजन समाधिमें जिनका ध्यान करके योगारूढ़ अवस्थाको पहुँच गये और संसारके भयसे छुटकारा पाकर परमपदको प्राप्त हो गये, वे ही श्रीरघुनाथजी यज्ञ कर रहे हैं—यह कैसी अद्भुत बात है! मेरा धन्य भाग, जो अब श्रीरामचन्द्रजीके उस सुन्दर मुखकी झाँकी करूँगा, जिसके नेत्रोंका प्रान्तभाग मेघके जलकी समानता करता है। जिसकी नासिका मनोहर और भौंहें सुन्दर हैं तथा जो विनयसे कुछ झुका हुआ है। जिह्वा वही उत्तम है जो श्रीरघुनाथजीके नामोंका आदरके साथ कीर्तन करती है। जो इसके विपरीत आचरण करती है, वह तो साँपकी जीभके समान है।[2] आज मुझे अपनी तपस्याका पवित्र फल प्राप्त हो गया। अब मेरे सारे मनोरथ पूरे हो गये; क्योंकि ब्रह्मादि देवताओंको भी जिनका दर्शन दुर्लभ है, भगवान् श्रीरामके उसी मुखको मैं इन नेत्रोंसे निहारूँगा। उनके चरणोंकी रजसे अपने

१. महापातकसंयुक्ताः परदाररता नराः। यन्नामस्मरणं मुक्ता मुदा यान्ति परां गतिम्॥ (१६।३३)

२. सा जिह्वा रघुनाथस्य नामकीर्तनमादरात्। करोति विपरीता या फणिनो रसनासमा॥ (१६।३९)

शरीरको पवित्र करूँगा तथा उनकी अत्यन्त विचित्र वार्ताओंका वर्णन करके अपनी रसनाको पावन बनाऊँगा।'

इस प्रकारकी बातें करते-करते श्रीरामके चरणोंका स्मरण होनेसे महर्षिका प्रेम भाव जाग्रत हो उठा। उनकी वाणी गद्गद हो गयी और नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। वे मुनियोंके सामने ही अश्रुपूर्ण कण्ठसे पुकारने लगे—'हे श्रीरामचन्द्र! हे रघुनाथ! हे धर्ममूर्ते! हे भक्तोंपर दया करनेवाले परमेश्वर! इस संसारसे मेरा उद्धार कीजिये।' इतना कहते-कहते महर्षि ध्यानमग्न हो गये, उन्हें अपने-परायेका ज्ञान न रहा। उस समय शत्रुघ्नने मुनिसे कहा—'स्वामिन्! आप हमारे श्रेष्ठ यज्ञको अपने चरणोंकी धूलिसे पवित्र कीजिये। सब लोगोंके द्वारा एकमात्र पूजित होनेवाले महाबाहु श्रीरघुनाथजीका भी बड़ा सौभाग्य है कि वे आप-जैसे महात्माके अन्तःकरणमें निवास करते हैं।' शत्रुघ्नके ऐसा कहनेपर मुनिवर च्यवन आनन्दमग्न हो गये और अपने सम्पूर्ण अग्नियोंको साथ ले परिवारसहित वहाँसे चल दिये। उन्हें पैदल जाते देख और श्रीरामचन्द्रजीका भक्त जान हनुमान्‌जीने शत्रुघ्नसे विनयपूर्वक कहा—'स्वामिन्! यदि आप कहें तो महापुरुषोंमें श्रेष्ठ इन राम-भक्त महर्षिको मैं ही अपनी पुरीमें पहुँचा दूँ।' वानर वीरके ये उत्तम वचन सुनकर शत्रुघ्नने उन्हें आज्ञा दी—'हनुमान्‌जी! जाइये, मुनिको पहुँचा आइये।' तब हनुमान्‌जीने मुनिको कुटुम्बसहित अपनी पीठपर बिठा लिया और सर्वत्र विचरनेवाले वायुकी भाँति उन्हें शीघ्र ही अयोध्या पहुँचा दिया। मुनिको आया देख, श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए और प्रेमसे विह्वल होकर उन्होंने उनके

लिये अर्घ्य-पाद्य आदि अर्पण किया। तत्पश्चात् वे बोले—'मुनिश्रेष्ठ! इस समय आपका दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया। आपने सब सामग्रियोंसहित मेरे यज्ञको पवित्र कर दिया।'

भगवान्‌का यह वचन सुनकर मुनिवर च्यवन बहुत सन्तुष्ट हुए। प्रेमोद्रेकके कारण उनके शरीरमें रोमांच हो आया। वे बोले—'प्रभो! आप ब्राह्मणोंपर प्रेम रखनेवाले और धर्ममार्गके रक्षक हैं, अतः आपके द्वारा ब्राह्मणका सम्मान होना उचित ही है।'

सुमतिका शत्रुघ्नसे नीलाचलनिवासी भगवान् पुरुषोत्तमकी महिमाका वर्णन करते हुए एक इतिहास सुनाना

शेषजी कहते हैं—मुने! महर्षि च्यवनके अचिन्तनीय तपोबलको देखकर शत्रुघ्नने विश्व-वन्दित ब्राह्मबलकी बड़ी प्रशंसा की। वे मन-ही-मन कहने लगे—'कहाँ तो विशुद्ध अन्तःकरणवाले मुनियोंको स्वतः प्राप्त होनेवाली महान् भोगोंकी सिद्धि और कहाँ तपोबलसे हीन मनुष्योंकी भोगेच्छा!' इस प्रकार सोचते हुए शत्रुघ्नने च्यवन मुनिके आश्रमपर थोड़ी देरतक ठहरकर जल पीया और सुख एवं आरामका अनुभव किया। उनका घोड़ा पुण्यसलिला पयोष्णी नदीका जल पीकर आगेके मार्गपर चल पड़ा। सैनिकोंने जब उसे

आश्रमसे निकलते देखा, तो वे भी उसके पीछे-पीछे चल दिये। कुछ लोग हाथीपर थे और कुछ लोग रथोंपर। कुछ घोड़ोंपर सवार थे और कुछ लोग पैदल ही जा रहे थे। शत्रुघ्नने भी मन्त्रिवर सुमतिके साथ घोड़ोंसे सुशोभित होनेवाले रथपर बैठकर बड़ी शीघ्रताके साथ यज्ञसम्बन्धी अश्वका अनुसरण किया। वह घोड़ा आगे बढ़ता हुआ राजा विमलके रत्नातट नामक नगरमें जा पहुँचा। राजाने जब अपने सेवकके मुँहसे सुना कि श्रीरघुनाथजीका श्रेष्ठ अश्व सम्पूर्ण योद्धाओंके साथ अपने नगरके निकट आया है, तो वे शत्रुघ्नके पास गये और उन्हें प्रणाम करके अपना रत्न, कोष, धन और सारा राज्य सौंपते हुए सामने खड़े होकर बोले—'मैं कौन-सा

कार्य करूँ—मेरे लिये क्या आज्ञा होती है?' शत्रुघ्नने भी उन्हें अपने चरणोंमें नतमस्तक देख दोनों भुजाओंसे उठाकर छातीसे लगा लिया। इसके बाद राजा विमल भी पुत्रको राज्य देकर अनेकों धनुर्धर योद्धाओंसहित शत्रुघ्नजीके साथ गये। सबके मन और कानोंको प्रिय लगनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका मधुर नाम सुनकर प्रायः सभी राजा उस यज्ञसम्बन्धी घोड़ेको प्रणाम करते और बहुमूल्य रत्न एवं धन भेंट देते थे। इस प्रकार अश्वके मार्गपर जाते हुए शत्रुघ्नने एक बहुत ऊँचा पर्वत देखा। उसे देखकर उनका मन आश्चर्यचकित हो गया; अतः वे मन्त्री सुमतिसे बोले—'मन्त्रिवर! यह कौन-सा पर्वत है, जो मेरे मनको विस्मयमें डाल रहा है। इसके बड़े-बड़े शिखर चाँदीके समान चमक रहे हैं। मार्गमें इस पर्वतकी बड़ी शोभा हो रही है। मुझे तो यह बड़ा अद्भुत जान पड़ता है। क्या यहाँ देवताओंका निवासस्थान है या यह उनकी क्रीडास्थली है? यह पर्वत अपनी सब प्रकारकी शोभासे मेरे मनको मोहे लेता है।'

शत्रुघ्नजीका यह प्रश्न सुनकर मन्त्री सुमति, जिनका चित्त सदा श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लगा रहता था, बोले—राजन्! हमलोगोंके सामने यह नीलपर्वत शोभा पा रहा है। इसके चारों ओर फैले हुए बड़े-बड़े शिखर स्फटिक आदि मणियोंके समूह हैं; अतएव वे बड़े मनोहर प्रतीत होते हैं। पापी और परस्त्री-लम्पट मनुष्य इस पर्वतको नहीं देख पाते। जो नीच मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुके गुणोंपर विश्वास या आदर नहीं करते, सत्पुरुषोंद्वारा आचरणमें लाये हुए श्रौत और स्मार्त धर्मोंको नहीं मानते तथा सदा अपने बौद्धिक तर्कके आधारपर ही विचार करते हैं, उन्हें भी इस पर्वतका दर्शन नहीं होता। नील और लाहकी बिक्री करनेवाले मनुष्य, घी आदि बेचनेवाला ब्राह्मण तथा शराबी मनुष्य भी इसके दर्शनसे वंचित रहते हैं। जो पिता अपनी रूपवती कन्याका किसी कुलीन वरके साथ ब्याह नहीं करता, बल्कि पापसे मोहित होकर धनके लोभसे उसको बेच देता है, उसे भी इसका दर्शन नहीं होता। जो मनुष्य उत्तम कुल और शीलसे युक्त सती साध्वी स्त्रीको कलंकित करता है तथा भाई-बन्धुओंको न देकर स्वयं ही मीठे पकवान उड़ाता है, जो ब्राह्मणोंका धन हड़प लेनेके लिये जालसाजी करता है, रसोईमें भेद करता है तथा जो दूषित विचार रखनेके कारण केवल अपने लिये खिचड़ी या खीर बनाता है, वह भी इस पर्वतको नहीं देख पाता। महाराज! जो मध्याह्नकालमें भूखसे पीड़ित होकर आये हुए अतिथियोंका अपमान करते हैं, दूसरोंके माल

विश्वासघात करते रहते हैं तथा जो श्रीरघुनाथजीके भजनसे विमुख होते हैं, उन्हें भी इस पर्वतका दर्शन नहीं होता। यह श्रेष्ठ पर्वत बड़ा ही पवित्र है, पुरुषोत्तमका निवासस्थान होनेसे इसकी शोभा और भी बढ़ गयी है। अपने दर्शनसे यह मनोहर शैल हम सब लोगोंको पवित्र कर रहा है। देवताओंके मुकुटोंसे जिनके चरणोंकी पूजा होती है—जहाँ देवता अपने मुकुट-मण्डित मस्तक झुकाया करते हैं, पुण्यात्मा पुरुष ही जिनका दर्शन पानेके अधिकारी हैं, वे पुण्य-प्रदाता भगवान् पुरुषोत्तम इस पर्वतपर विराजमान हैं। वेदकी श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर निषेधकी अवधिरूपसे जिनको जानती हैं, इन्द्रादि देवता भी जिनके चरणोंकी रज ढूँढ़ा करते हैं फिर भी उन्हें सुगमतासे प्राप्त नहीं होती तथा विद्वान् पुरुष वेदान्त आदिके महावाक्योंद्वारा जिनका बोध प्राप्त करते हैं, वे ही श्रीमान् पुरुषोत्तम इस महान् पर्वतपर विराज रहे हैं। जो इस नीलगिरिपर चढ़कर भगवान्‌को नमस्कार करता और पुण्यकर्म आदिके द्वारा उनकी पूजा करके उनका प्रसाद ग्रहण करता है, वह साक्षात् भगवान् चतुर्भुजका स्वरूप हो जाता है।

महाराज! इस विषयमें जानकार लोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, उसको सुनो। राजा रत्नग्रीवको अपने परिवारके साथ ही जो 'चार भुजा' आदि भगवान्‌का सारूप्य प्राप्त हुआ था, उसीका इस उपाख्यानमें वर्णन है। ऐसा सौभाग्य देवता और दानवोंके लिये भी दुर्लभ है। यह आश्चर्यपूर्ण वृत्तान्त इस प्रकार है—तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध जो कांची नामकी नगरी है, वह पूर्वकालमें बड़ी सम्पन्न अवस्थामें थी, वहाँ बहुत अधिक मनुष्योंकी आबादी थी। सेना और सवारी सभी दृष्टियोंसे कांची बड़ी समृद्धिशालिनी पुरी थी। वहाँ ब्राह्मणोचित छः कर्मोंमें निरन्तर लगे रहनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण निवास करते थे, जो सब प्राणियोंके हितमें संलग्न और श्रीरामचन्द्रजीके भजनके लिये सदा उत्कण्ठित रहनेवाले थे। वहाँके क्षत्रिय युद्धमें लोहा लेनेवाले थे। वे संग्राममें कभी पीछे पैर नहीं हटाते थे। परायी स्त्री, पराये धन और परद्रोहसे वे सदा दूर रहनेवाले थे। वैश्य भी ब्याज, खेती और व्यापार आदि शुभ वृत्तियोंसे जीविका चलाते हुए निरन्तर श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंमें अनुराग रखते थे। शूद्र-जातिके मनुष्य रात-दिन अपने शरीरसे ब्राह्मणोंकी सेवा करते और जिह्वासे 'राम-राम' की रट लगाये रहते थे। वहाँ नीच श्रेणीके मनुष्योंमें भी कोई ऐसा नहीं था, जो मनसे भी पाप करता हो। उस नगरीमें दान, दया, दम और सत्य—ये सदा विराजमान रहते थे। कोई भी मनुष्य ऐसी बात नहीं बोलता था, जो दूसरोंको कष्ट पहुँचानेवाली हो। वहाँके लोग न तो पराये धनका लोभ रखते और न कभी पाप ही करते थे। इस प्रकार राजा रत्नग्रीव प्रजाका पालन करते थे। वे लोभसे रहित होकर केवल प्रजाकी आयके छठे अंशको 'कर' के रूपमें ग्रहण करते थे, इससे अधिक कुछ नहीं लेते थे। इस तरह धर्मपूर्वक प्रजाका पालन और सब प्रकारके भोगोंका उपभोग करते हुए राजाके अनेकों वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन उन्होंने अपनी धर्मपत्नी विशालाक्षीसे, जो पातिव्रत्य-धर्मका पालन करनेवाली पतिव्रता थी, कहा—'प्रिये! अब अपने पुत्र प्रजाकी रक्षाका भार सँभालनेवाले हो गये। भगवान् महाविष्णुके प्रसादसे मेरे पास किसी बातकी कमी नहीं है। अब मेरे मनमें केवल एक ही अभिलाषा रह गयी है, वह यह कि मैंने आजतक किसी परम कल्याणमय उत्तम तीर्थका सेवन नहीं किया। जो मनुष्य जन्मभर अपना पेट ही भरता रहता है, भगवान्‌की पूजा नहीं करता वह बैल माना गया है, इसलिये कल्याणी! मैं राज्यका भार पुत्रको सौंपकर अब कुटुम्बसहित तीर्थयात्राके लिये चलना चाहता हूँ।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने सन्ध्याकालमें भगवान्‌का ध्यान किया और आधी रातको सोते समय स्वप्नमें एक श्रेष्ठ तपस्वी ब्राह्मणको देखा। फिर सबेरे उठकर उन्होंने सन्ध्या आदि नित्यकर्म पूरे किये और सभामें जाकर मन्त्रीजनोंके साथ वे सुखपूर्वक विराजमान हुए। इतनेमें ही उन्हें एक दुर्बल शरीरवाले तपस्वी ब्राह्मण दिखायी दिये, जो जटा, वल्कल और कौपीन धारण किये हुए थे। उनके हाथमें एक छड़ी थी तथा अनेकों

तीर्थोंके सेवनसे उनका शरीर पवित्र हो गया था। महाबाहु राजा रत्नग्रीवने उन्हें देख मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त होकर अर्घ्य, पाद्य आदि निवेदन किया। जब ब्राह्मण सुखपूर्वक आसनपर बैठकर विश्राम कर चुके तो राजाने उनका परिचय जानकर इस प्रकार प्रश्न किया—'स्वामिन्! आज आपके दर्शनसे मेरे शरीरका समस्त पाप निवृत्त हो गया। वास्तवमें महात्मा पुरुष दीन-दुःखियोंकी रक्षाके लिये ही उनके घर जाते हैं। ब्रह्मन्! अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ; इसलिये मुझे एक बात बताइये। कौन-सा देवता अथवा कौन ऐसा तीर्थ है जो गर्भवासके कष्टसे बचानेमें समर्थ हो सकता है? आपलोग समाधि और ध्यानमें तत्पर रहनेवाले हैं; अतः सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं।'

ब्राह्मणने कहा—महाराज! आपने तीर्थ-सेवनके विषयमें जिज्ञासा करते हुए जो यह प्रश्न किया है कि किस देवताकी कृपासे गर्भवासके कष्टका निवारण हो सकता है? सो उसके विषयमें बता रहा हूँ, सुनिये—'भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी ही सेवा करनी चाहिये; क्योंकि वे ही संसाररूपी रोगका नाश करनेवाले हैं। वे ही भगवान् पुरुषोत्तमके नामसे प्रसिद्ध हैं, उन्हींकी पूजा करनी चाहिये।' मैंने सब पापोंका क्षय करनेवाली अनेकों पुरियों और नदियोंका दर्शन किया है—अयोध्या, सरयू, तापी, हरिद्वार, अवन्ती, विमला, काञ्ची, समुद्रगामिनी नर्मदा, गोकर्ण और करोड़ों हत्याओंका विनाश करनेवाला हाटकतीर्थ—इन सबका दर्शन पापको दूर करनेवाला है। मल्लिका नामसे प्रसिद्ध महान् पर्वत मनुष्योंको दर्शनमात्रसे मोक्ष देनेवाला है तथा वह पातकोंका भी नाश करनेवाला तीर्थ है, उसका भी मैंने दर्शन किया है। देवता और असुर—दोनों जिसका सेवन करते हैं, उस द्वारवती (द्वारकापुरी) तीर्थका भी मैंने दर्शन किया है। वहाँ कल्याणमयी गोमती नामकी नदी बहती है, जिसका जल साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है। उसमें शयन करना (डूबना) लय कहलाता है और मृत्युको प्राप्त होना मोक्ष; ऐसा श्रुतिका वचन है। उस पुरीमें निवास करनेवाले मनुष्योंपर कलियुग कभी अपना प्रभाव नहीं डाल पाता। जहाँके पत्थर भी चक्रसे चिह्नित होते हैं, मनुष्य तो चक्रका चिह्न धारण करते ही हैं; वहाँके पशु-पक्षी और कीट-पतंग आदि सबके शरीर चक्रसे अंकित होते हैं। उस पुरीमें सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र रक्षक भगवान् त्रिविक्रम निवास करते हैं। मुझे बड़े पुण्यके प्रभावसे उस द्वारकापुरीका दर्शन हुआ है। साथ ही जो सब प्रकारकी हत्याओंका दोष दूर करनेवाला है तथा जहाँ महान् पातकोंका नाश करनेवाला स्यमन्तपंचक नामक तीर्थ है, उस कुरुक्षेत्रका भी मैंने दर्शन किया है। इसके सिवा, मैंने वाराणसीपुरीको भी देखा है, जिसे भगवान् विश्वनाथने अपना निवासस्थान बनाया है। जहाँ भगवान् शंकर मुमूर्षु प्राणियोंको तारक ब्रह्मके नामसे प्रसिद्ध 'राम' मन्त्रका उपदेश देते हैं। जिसमें मरे हुए कीट, पतंग, भृंग, पशु-पक्षी आदि तथा असुर-योनिके प्राणी भी अपने-अपने कर्मोंके भोग और सीमित सुखका परित्याग करके दुःख-सुखसे परे हो कैलासको प्राप्त हो जाते हैं तथा जहाँ मणिकर्णिकातीर्थ और उत्तरवाहिनी गंगा हैं, जो पापियोंका भी संसारबन्धन काट देती हैं। राजन्! इस प्रकार मैंने अनेकों तीर्थोंका दर्शन किया है; परन्तु नीलगिरिपर भगवान् पुरुषोत्तमके समीप जो महान् आश्चर्यकी घटना देखी है वह अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हुई है।

पर्वतश्रेष्ठ नीलगिरिपर जो वृत्तान्त घटित हुआ था, उसे सुनिये; इसपर श्रद्धा और विश्वास करनेवाले पुरुष सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। मैं सब तीर्थोंमें भ्रमण करता हुआ नीलगिरिपर गया, जिसका आँगन सदा गंगासागरके जलसे धुलता रहता है। वहाँ पर्वतके शिखरपर मुझे कुछ ऐसे भील दिखायी दिये, जिनके चार भुजाएँ थीं और वे धनुष धारण किये हुए थे। वे फल-मूलका आहार करके वहाँ जीवन-निर्वाह करते थे, उस समय उन्हें देखकर मेरे मनमें यह महान् सन्देह खड़ा हुआ कि ये धनुष-बाण धारण करनेवाले जंगली मनुष्य चतुर्भुज कैसे हो गये? वैकुण्ठलोकमें निवास करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषोंका जैसा स्वरूप शास्त्रोंमें देखा जाता है

तथा जो ब्रह्मा आदिके लिये भी दुर्लभ है, ऐसा स्वरूप इन्हें कैसे प्राप्त हो गया? भगवान् विष्णुके निकट रहनेवाले उनके पार्षदोंके हाथ, जिस प्रकार शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष तथा कमलसे सुशोभित होते हैं तथा उनके शरीरपर जैसे वनमाला शोभा पाती है, उसी प्रकार ये भील भी क्यों दिखायी दे रहे हैं? इस प्रकार सन्देहमें पड़ जानेपर मैंने उनसे पूछा—'सज्जनो! आपलोग कौन हैं? और यह चतुर्भुज स्वरूप आपको कैसे प्राप्त हुआ है?' मेरा प्रश्न सुनकर वे लोग बहुत हँसे और कहने लगे—'ये महाशय ब्राह्मण होकर भी यहाँके पिण्ड-दानकी अद्भुत महिमा नहीं जानते।' यह सुनकर मैंने कहा—'कैसा पिण्ड और किसको दिया जाता है? चतुर्भुज शरीर धारण करनेवाले महात्माओ! मुझे इसका रहस्य बताओ।' मेरी बात सुनकर उन महात्माओंने, जिस तरह उन्हें चतुर्भुज स्वरूपकी प्राप्ति हुई थी, वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

किरात बोले—ब्राह्मण! हमलोगोंका वृत्तान्त सुनो; हमारा एक बालक प्रतिदिन जामुन आदि वृक्षोंके फल खाता और अन्य बालकोंके साथ विचरा करता था। एक दिन घूमता-घामता वह यहाँ आया और शिशुओंके साथ ही इस पर्वतके मनोहर शिखरपर चढ़ गया। ऊपर जाकर उसने देखा, एक अद्भुत देवमन्दिर है, उसकी दीवार सोनेकी बनी हुई है। जिसमें गारुत्मत आदि नाना प्रकारकी मणियाँ जड़ी हुई हैं। वह अपनी मनोहर कान्तिसे सूर्यकी भाँति अन्धकारका नाश कर रहा है। उसे देखकर बालकको बड़ा विस्मय हुआ और उसने मन-ही-मन सोचा—'यह क्या है, किसका घर है? जरा चलकर देखूँ तो सही, यह महात्माओंका कैसा स्थान है?' ऐसा विचारकर वह बड़भागी बालक मन्दिरके भीतर घुस गया। वहाँ जाकर उसने देवाधिदेव पुरुषोत्तमका दर्शन किया, जिनके चरणोंमें देवता और असुर सभी मस्तक झुकाते हैं। जिनका श्रीविग्रह किरीट, हार, केयूर और ग्रैवेयक (कण्ठा) आदिसे सुशोभित रहता है। जो कानोंमें अत्यन्त उज्ज्वल और मनोहर कुण्डल धारण करते हैं। जिनके युगल चरणकमलोंपर तुलसीकी सुगन्धसे मतवाले हुए भौंरे मँड़राया करते हैं। शंख, चक्र, गदा और कमल आदि परिकर दिव्य शरीर

धारण करके जिनके चरणोंकी आराधना करते हैं तथा नारद आदि देवर्षि जिनके श्रीविग्रहकी सेवामें लगे रहते हैं, ऐसे भगवान्की उस बालकने झाँकी की। वहाँ भगवान्की उपासनामें लगे हुए देवताओंमेंसे कुछ लोग गाते थे, कुछ नाच रहे थे और कुछ लोग अद्भुत रूपसे अट्टहास कर रहे थे। वे सभी विश्व-वन्दित भगवान्को रिझानेमें ही लगे हुए थे। भगवान्को देखकर हमारा बालक उनके निकट चला गया। देवताओंने अच्छी तरह पूजा करके श्रीरमावल्लभ भगवान्को धूप और नैवेद्य अर्पण किया तथा आदरपूर्वक उनकी आरती करके भगवत्-कृपाका अनुभव करते हुए वे सब लोग अपने-अपने स्थानको चले गये। उस बालकके सौभाग्यवश वहाँ भगवान्को भोग लगाया हुआ भात (महाप्रसाद) गिरा हुआ था, जो मनुष्योंके लिये अलभ्य और देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; वही उसे मिल गया। उसको खाकर बालकने भगवान्के श्रीविग्रहका दर्शन किया। इससे उसे चतुर्भुज रूपकी प्राप्ति हो गयी

और वह अत्यन्त सुन्दर दिखायी देने लगा। चार भुजा आदि भगवत्सारूप्यको प्राप्त हो शंख, चक्र आदि धारण किये जब वह बालक घर आया तो हमलोगोंने बारम्बार उसकी ओर देखकर पूछा—'तुम्हारा यह अद्भुत स्वरूप कैसे हो गया?' तब बालक अपने आश्चर्यमय वृत्तान्तका वर्णन करने लगा—'मैं नीलगिरिके शिखरपर गया था, वहाँ मैंने देवाधिदेव भगवान्‌का दर्शन किया है, वहाँ भगवान्‌को भोग लगाया हुआ मनोहर प्रसाद भी मुझे मिल गया था, जिसके भक्षण करनेमात्रसे इस समय मेरा ऐसा चतुर्भुज स्वरूप हो गया है। मैं स्वयं ही अपने इस परिवर्तनपर विस्मय-विमुग्ध हो रहा हूँ।' बालककी बात सुनकर हम सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और हमने भी इन परम दुर्लभ भगवान्‌का दर्शन किया; साथ ही सब प्रकारके स्वादसे परिपूर्ण जो अन्न आदिका प्रसाद मिला, उसको भी खाया। उसके खाते ही भगवान्‌की कृपासे हम सब लोग चार भुजाधारी हो गये। साधुश्रेष्ठ! तुम भी जाकर भगवान्‌का दर्शन करो, वहाँ अन्नका प्रसाद ग्रहण करके तुम भी चतुर्भुज हो जाओगे। विप्रवर! तुमने हमलोगोंसे जो बात पूछी और जिसको कहनेके लिये हमें आज्ञा दी थी, वह सब वृत्तान्त हमलोगोंने कह सुनाया।

तीर्थयात्राकी विधि, राजा रत्नग्रीवकी यात्रा तथा गण्डकी नदी एवं शालग्रामशिलाकी महिमाके प्रसंगमें एक पुल्कसकी कथा

ब्राह्मण कहते हैं—राजन्! भीलोंके ये अद्भुत वचन सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, साथ ही मैं बहुत प्रसन्न भी हुआ। पहले गंगा-सागर-संगममें स्नान करके मैंने अपने शरीरको पवित्र किया। फिर मणियों और माणिक्योंसे चित्रित नीलाचलके शिखरपर चढ़ गया। महाराज! वहाँ जाकर मैंने देवता आदिसे वन्दित भगवान्‌का दर्शन किया और उन्हें प्रणाम करके कृतार्थ हो गया। भगवान्‌का प्रसाद ग्रहण करनेसे मुझे शंख, चक्र आदि चिह्नोंसे सुशोभित चतुर्भुज स्वरूपकी प्राप्ति हुई। पुरुषोत्तमके दर्शनसे पुनः मुझको गर्भमें नहीं प्रवेश करना पड़ेगा। राजन्! तुम भी शीघ्र ही नीलाचलको जाओ और गर्भवासके दुःखसे छूटकर अपने आत्माको कृतार्थ करो।

उन परम बुद्धिमान् श्रेष्ठ ब्राह्मणके वचन सुनकर राजा रत्नग्रीवका सारा शरीर पुलकित हो गया और उन्होंने मुनिसे तीर्थयात्राकी विधि पूछी।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! तीर्थयात्राकी उत्तम विधिका वर्णन आरम्भ करता हूँ, सुनो; इससे देव-दानववन्दित भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। मनुष्यके शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी हों, सिरके बाल पक गये हों अथवा वह अभी नौजवान हो, आयी हुई मौतको कोई नहीं टाल सकता; ऐसा समझकर भगवान्‌की शरणमें जाना चाहिये।[1] भगवान्‌के कीर्तन, श्रवण-वन्दन तथा पूजनमें ही अपना मन लगाना चाहिये। स्त्री, पुत्रादि, अन्य संसारी वस्तुओंमें नहीं, यह सारा प्रपंच नाशवान्, क्षणभर रहनेवाला तथा अत्यन्त दुःख देनेवाला है, परन्तु भगवान् जन्म, मृत्यु और जरा—तीनों ही अवस्थाओंसे परे हैं, वे भक्त-देवोंके प्राणवल्लभ और अच्युत (अविनाशी) हैं—ऐसा विचारकर भगवान्‌का भजन करना उचित है। मनुष्य काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ और दम्भसे अथवा जिस किसी प्रकारसे भी यदि भगवान्‌का भजन करे तो उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता। भगवान्‌का ज्ञान होता है पापरहित साधुसंग करनेसे; साधु वे ही हैं जिनकी कृपासे मनुष्य संसारके दुःखसे छुटकारा पा जाते हैं। महाराज! काम और लोभसे रहित तथा वीतराग साधु पुरुष जिस विषयका उपदेश देते हैं, वह संसार-बन्धनकी निवृत्ति करनेवाला होता है[2]। तीर्थोंमें श्रीरामचन्द्रजीके भजनमें

१-वलीपलितदेहो वा यौवनेनान्वितोऽपि वा। ज्ञात्वा मृत्युमनिर्वार्यं हरिं शरणमाव्रजेत्॥ (१९।१०)

२-स हरिर्ज्ञायते साधुसंगमात् पापवर्जितात्। येषां कृपातः पुरुषा भवन्त्यसुखवर्जिताः॥
ते साधवः शान्तरागाः कामलोभविवर्जिताः। ब्रुवन्ति यन्महाराज तत्संसारनिवर्तकम्॥ (१९।१४-१५)

लगे हुए साधु पुरुष मिलते हैं, जिनका दर्शन मनुष्योंको पापराशिको भस्म करनेके लिये अग्निका काम देता है; इसलिये संसार-बन्धनसे डरे हुए मनुष्योंको पवित्र जलवाले तीर्थोंमें, जो सदा साधु-महात्माओंके सहवाससे सुशोभित रहते हैं, अवश्य जाना चाहिये।

नृपश्रेष्ठ! यदि तीर्थोंका विधिपूर्वक दर्शन किया जाय तो वे पापका नाश कर देते हैं, अब तीर्थसेवनकी विधिका श्रवण करो। पहले स्त्री, पुत्रादि कुटुम्बको मिथ्या समझकर उसकी ओरसे अपने मनमें वैराग्य उत्पन्न करे और मन-ही-मन भगवान्‌का स्मरण करता रहे। तदनन्तर 'राम-राम' की रट लगाते हुए तीर्थयात्रा आरम्भ करे, एक कोस जानेके पश्चात् वहाँ तीर्थ (पवित्र जलाशय) आदिमें स्नान करके क्षौर करा डाले। यात्राकी विधि जाननेवाले पुरुषके लिये ऐसा करना नितान्त आवश्यक है। तीर्थोंकी ओर जाते हुए मनुष्योंके पाप उसके बालोंपर ही स्थित रहते हैं, अतः उनका मुण्डन अवश्य कराले। उसके बाद बिना गाँठका डंडा, कमण्डलु और मृगचर्म धारण करे तथा लोभका त्याग करके तीर्थोपयोगी वेष बना ले। विधिपूर्वक यात्रा करनेवाले मनुष्योंको विशेषरूपसे फलकी प्राप्ति होती है, इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके तीर्थयात्राकी विधिका पालन करे। जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर तथा मन अपने वशमें होते हैं तथा जिसके भीतर विद्या, तपस्या और कीर्ति रहती है, वही तीर्थके वास्तविक फलका भागी होता है।[1] 'हरे कृष्ण हरे **कृष्ण भक्तवत्सल गोपते। शरण्य भगवन् विष्णो मां पाहि बहुसंसृतेः॥'** (११। २५)[2] जिह्वासे इस मन्त्रका पाठ तथा मनसे भगवान्‌का स्मरण करते हुए पैदल ही तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, तभी वह महान् अभ्युदयका साधक होता है। जो मनुष्य सवारीसे यात्रा करता है उसका फल सवारी ढोनेवाले प्राणीके साथ बराबर-बराबर बँट जाता है। जूता पहनकर जानेवालेको चौथाई फल मिलता है और बैलगाड़ीपर जानेवाले पुरुषको गोहत्या आदिका पाप लगता है। जो अनिच्छासे भी तीर्थयात्रा करता है, उसे उसका आधा फल मिल जाता है तथा पापक्षय भी होता ही है; किन्तु विधिके साथ तीर्थदर्शन करनेसे विशेष फलकी प्राप्ति होती है [यह ऊपर बताया जा चुका है]। इस प्रकार मैंने थोड़ेहीमें यह तीर्थकी विधि बतायी है, इसका विस्तार नहीं किया है। इस विधिका आश्रय लेकर तुम पुरुषोत्तमका दर्शन करनेके लिये जाओ। महाराज! भगवान् प्रसन्न होकर तुम्हें अपनी भक्ति प्रदान करेंगे, जिससे एक ही क्षणमें तुम्हारे संसार-बन्धनका नाश हो जायगा। नरश्रेष्ठ! तीर्थयात्राकी यह विधि सम्पूर्ण पातकोंका नाश करनेवाली है, जो इसे सुनता है वह अपने सारे भयंकर पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

सुमति कहते हैं—सुमित्रानन्दन! ब्राह्मणकी यह बात सुनकर राजा रत्नग्रीवने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय पुरुषोत्तमतीर्थके दर्शनकी उत्कण्ठासे उनका चित्त विह्वल हो रहा था। राजाके मन्त्री मन्त्रज्ञोंमें श्रेष्ठ और अच्छे स्वभावके थे। राजाने समस्त पुरवासियोंको तीर्थयात्राकी इच्छासे साथ ले जानेका विचार करते हुए अपने मन्त्रीको आज्ञा दी—'अमात्य! तुम नगरके सब लोगोंको मेरा यह आदेश सुना दो कि सबको भगवान् पुरुषोत्तमके चरणारविन्दोंका दर्शन करनेके लिये चलना है। मेरे नगरमें जो श्रेष्ठ मनुष्य निवास करते हैं तथा जो लोग मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं वे सब मेरे साथ ही यहाँसे निकलें। उन पुत्रोंसे तथा सदा अनीतिमें लगे रहनेवाले बन्धु-बान्धवोंसे क्या लेना है, जिन्होंने आजतक अपने नेत्रोंसे पुण्यदायक पुरुषोत्तमका दर्शन नहीं किया? जिनके पुत्र और पौत्र भगवान्‌की शरणमें नहीं गये, उनकी वे सन्तानें सूकरोंके झुंडके समान हैं। मेरी प्रजाओ! जो भगवान् अपना नाम लेनेमात्रसे सबको पवित्र कर देनेकी शक्ति रखते हैं, उनके चरणोंमें शीघ्र मस्तक झुकाओ।'

1. यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ (११। २४)
2. हे कृष्ण! भक्तवत्सल गोपाल! सबको शरण देनेवाले भगवन्! विष्णो! मुझे अनेकों जन्मोंके चक्करमें पड़नेसे बचाइये।

राजाका यह मनोहर वचन भगवान्‌के गुणोंसे गुँथा हुआ था। इसे सुनकर सत्यनामवाले प्रधान मन्त्रीको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने हाथीपर बैठकर ढिंढोरा पीटते हुए सारे नगरमें घोषणा करा दी। तीर्थयात्राकी इच्छासे महाराजने जो आज्ञा दी थी उसके अनुसार सब प्रजाको यह आदेश दिया—'पुरवासियो! आप सब लोग महाराजके साथ तुरंत नीलगिरिको चलें और सब पापोंके हरनेवाले पुरुषोत्तम भगवान्‌का दर्शन करें। ऐसा करके आपलोग समस्त संसार-समुद्रको अपने लिये गायकी खुरके समान बना लें। साथ ही सब लोग अपने-अपने शरीरको शंख, चक्र आदि चिह्नोंसे विभूषित करें।' इस प्रकार प्रधान सचिवने, जो श्रीरघुनाथजीके चरणोंका ध्यान करनेके कारण अपने शोक-सन्तापको दूर कर चुके थे, राजा रत्नग्रीवके अद्भुत आदेशकी सर्वत्र घोषणा करा दी। उसे सुनकर सारी प्रजा आनन्द-रसमें निमग्न हो गयी। सबने पुरुषोत्तमका दर्शन करके अपना उद्धार करनेका निश्चय किया। पुरवासी ब्राह्मण सुन्दर वेष धारण करके राजाको आशीर्वाद और वरदान देते हुए शिष्योंके साथ नगरसे बाहर निकले, क्षत्रियवीर धनुष धारण करके चले और वैश्य नाना प्रकारकी उपयोगी वस्तुएँ लिये आगे बढ़े। शूद्र भी संसार-सागरसे उद्धार पानेकी बात सोचकर पुलकित हो रहे थे। धोबी, चमार, शहद बेचनेवाले, किरात, मकान बनानेवाले कारीगर, दर्जी, पान बेचनेवाले, तबला बजानेवाले, नाटकसे जीविका निभानेवाले नट आदि, तेली, बजाज, पुराणकी कथा सुनानेवाले सूत, मागध तथा वन्दी—ये सभी हर्षमें भरकर राजधानीसे बाहर निकले। वैद्य-वृत्तिसे जीविका चलानेवाले चिकित्सक तथा भोजन बनाने और स्वादिष्ट रसोंका ज्ञान रखनेवाले रसोइये भी महाराजकी प्रशंसा करते हुए पुरीसे बाहर निकले। राजा रत्नग्रीवने भी प्रातःकाल सन्ध्योपासन आदि करके शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्राह्मण देवताको, जो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ थे, अपने पास बुलाया और उनकी आज्ञा लेकर वे नगरसे बाहर निकले। आगे-आगे राजा थे और पीछे-पीछे पुरवासी मनुष्य। उस समय वे ताराओंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। एक कोस जानेके बाद उन्होंने विधिके अनुसार मुण्डन कराया और दण्ड, कमण्डलु तथा सुन्दर मृग-चर्म धारण किये। इस प्रकार वे महायशस्वी राजा उत्तम वेषसे युक्त होकर भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर हो गये और उन्होंने अपने मनको काम-क्रोधादि दोषोंसे रहित बना लिया। उस समय भिन्न-भिन्न बाजोंको बजानेवाले लोग बारंबार दुन्दुभि, भेरी, आनक, पणव, शंख और वीणा आदिकी ध्वनि फैला रहे थे। सभी यात्री यही कहते हुए आगे बढ़ रहे थे कि 'समस्त दुःखोंको दूर करनेवाले देवेश्वर! आपकी जय हो, पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध परमेश्वर! मुझे अपने स्वरूपका दर्शन कराइये।'

तदनन्तर जब महाराज रत्नग्रीव सब लोगोंके साथ यात्राके लिये चल दिये तो मार्गमें उन्हें अनेकों स्थानोंपर महान् सौभाग्यशाली वैष्णवोंके द्वारा किया जानेवाला श्रीकृष्णका कीर्तन सुनायी पड़ा। जगह-जगह गोविन्दका गुणगान हो रहा था—'भक्तोंको शरण देनेवाले पुरुषोत्तम! लक्ष्मीपते! आपकी जय हो।' कांचीनरेश यात्राके पथमें अनेकों अभ्युदयकारी तीर्थोंका सेवन और दर्शन करते तथा तपस्वी ब्राह्मणके मुखसे उनकी महिमा भी सुनते जाते थे। भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेकों प्रकारकी विचित्र बातें सुननेमें राजाका भलीभाँति मनोरंजन होता था और वे मार्गके बीच-बीचमें अपने गायकोंद्वारा महाविष्णुकी महिमाका गान कराया करते थे। महाराज रत्नग्रीव बड़े बुद्धिमान् और जितेन्द्रिय थे, वे स्थान-स्थानपर दीनों, अंधों, दुःखियों तथा पंगुओंको उनकी इच्छाके अनुकूल दान देते रहते थे। साथ आये हुए सब लोगोंके सहित अनेकों तीर्थोंमें स्नान करके वे अपनेको निर्मल एवं भव्य बना रहे थे और भगवान्‌का ध्यान करते हुए आगे बढ़ रहे थे। जाते-जाते महाराजने अपने सामने एक ऐसी नदी देखी जो सब पापोंको दूर करनेवाली थी। उसके भीतरके पत्थर (शालग्राम) चक्रके चिह्नसे अंकित थे। वह मुनियोंके हृदयकी भाँति स्वच्छ दिखायी देती थी। उस नदीके किनारे अनेकों महर्षियोंके समुदाय कई पंक्तियोंमें बैठकर उसे

सुशोभित कर रहे थे। उस सरिताका दर्शन करके महाराजने धर्मके ज्ञाता तपस्वी ब्राह्मणसे उसका परिचय पूछा; क्योंकि वे अनेकों तीर्थोंकी विशेष महिमाके ज्ञानमें बढ़े-चढ़े थे। राजाने प्रश्न किया—'स्वामिन्! महर्षि-समुदायके द्वारा सेवित यह पवित्र नदी कौन है? जो अपने दर्शनसे मेरे चित्तमें अत्यन्त आह्लाद उत्पन्न कर रही है।' बुद्धिमान् महाराजका यह वचन सुनकर विद्वान् ब्राह्मणने उस तीर्थका अद्भुत माहात्म्य बतलाना आरम्भ किया।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! यह गण्डकी नदी है [इसे शालग्रामी और नारायणी भी कहते हैं], देवता और असुर सभी इसका सेवन करते हैं। इसके पावन जलकी उत्ताल तरंगें राशि-राशि पातकोंको भी भस्म कर डालती हैं। यह अपने दर्शनसे मानसिक, स्पर्शसे कर्मजनित तथा जलका पान करनेसे वाणीद्वारा होनेवाले पापोंके समुदायको दग्ध करती है। पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्माजीने सब प्रजाको विशेष पापमें लिप्त देखकर अपने गण्डस्थल (गाल)-के जलकी बूँदोंसे इस पापनाशिनी नदीको उत्पन्न किया। जो उत्तम लहरोंसे सुशोभित इस पुण्यसलिला नदीके जलका स्पर्श करते हैं, वे मनुष्य पापी हों तो भी पुनः माताके गर्भमें प्रवेश नहीं करते। इसके भीतरसे जो चक्रके चिह्नोंद्वारा अलंकृत पत्थर प्रकट होते हैं, वे साक्षात् भगवान्‌के ही विग्रह हैं—भगवान् ही उनके रूपमें प्रादुर्भूत होते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन चक्रके चिह्नसे युक्त शालग्रामशिलाका पूजन करता है वह फिर कभी माताके उदरमें प्रवेश नहीं करता। जो बुद्धिमान् श्रेष्ठ शालग्रामशिलाका पूजन करता है, उसको दम्भ और लोभसे रहित एवं सदाचारी होना चाहिये। परायी स्त्री और पराये धनसे मुँह मोड़कर यत्नपूर्वक चक्रांकित शालग्रामका पूजन करना चाहिये। द्वारकामें लिया हुआ चक्रका चिह्न और गण्डकी नदीसे उत्पन्न हुई शालग्रामकी शिला—ये दोनों मनुष्योंके सौ जन्मोंके पाप भी एक ही क्षणमें हर लेते हैं। हजारों पापोंका आचरण करनेवाला मनुष्य क्यों न हो, शालग्रामशिलाका चरणामृत पीकर तत्काल पवित्र हो सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा वेदोक्त मार्गपर स्थित रहनेवाला शूद्र गृहस्थ भी शालग्रामकी पूजा करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है। परन्तु स्त्रीको कभी शालग्रामशिलाका पूजन नहीं करना चाहिये। विधवा हो या सुहागिन, यदि वह स्वर्गलोक एवं आत्मकल्याणकी इच्छा रखती है तो शालग्रामशिलाका स्पर्श न करे। यदि मोहवश उसका स्पर्श करती है तो अपने किये हुए पुण्य-समूहका त्याग करके तुरंत नरकमें पड़ती है। कोई कितना ही पापाचारी और ब्रह्महत्यारा क्यों न हो, शालग्रामशिलाको स्नान कराया हुआ जल (भगवान्‌का चरणामृत) पी लेनेपर परमगतिको प्राप्त होता है। भगवान्‌को निवेदित तुलसी, चन्दन, जल, शंख, घण्टा, चक्र, शालग्रामशिला, ताम्रपत्र, श्रीविष्णुका नाम तथा उनका चरणामृत—ये सभी वस्तुएँ पावन हैं। उपर्युक्त नौ वस्तुओंके साथ भगवान्‌का चरणामृत पापराशिको दग्ध करनेवाला है। ऐसा सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाले शान्तचित्त महर्षियोंका कथन है। राजन्! समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेसे तथा सब प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का पूजन करनेसे जो अद्भुत पुण्य होता है, वह भगवान्‌के चरणामृतकी एक-एक बूँदमें प्राप्त होता है।

[चार, छः, आठ आदि] समसंख्यामें शालग्राम-मूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। परन्तु समसंख्यामें दो शालग्रामोंकी पूजा उचित नहीं है। इसी प्रकार विषमसंख्यामें भी शालग्राममूर्तियोंकी पूजा होती है, किन्तु विषममें तीन शालग्रामोंकी नहीं। द्वारकाका चक्र तथा गण्डकी नदीके शालग्राम—इन दोनोंका जहाँ समागम हो, वहाँ समुद्रगामिनी गंगाकी उपस्थिति मानी जाती है। यदि शालग्रामशिलाएँ रूखी हों तो वे पुरुषोंकी आयु, लक्ष्मी और उत्तम कीर्तिसे वंचित कर देती हैं; अतः जो चिकनी हों, जिनका रूप मनोहर हो, उन्हींका पूजन करना चाहिये। वे लक्ष्मी प्रदान करती हैं। पुरुषको आयुकी इच्छा हो या धनकी, यदि वह शालग्राम-शिलाका पूजन करता है तो उसकी ऐहलौकिक और पारलौकिक—सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। राजन्! जो मनुष्य बड़ा भाग्यवान् होता है, उसीके प्राणान्तके

समय जिह्वापर भगवान्‌का पवित्र नाम आता है और उसीकी छातीपर तथा आसपास शालग्रामशिला मौजूद रहती है। प्राणोंके निकलते समय अपने विश्वास या भावनामें ही यदि शालग्रामशिलाकी स्फुरणा हो जाय तो उस जीवको निस्सन्देह मुक्ति हो जाती है। पूर्वकालमें भगवान्‌ने बुद्धिमान् राजा अम्बरीषसे कहा था कि 'ब्राह्मण, संन्यासी तथा चिकनी शालग्रामशिला—ये तीन इस भूमण्डलपर मेरे स्वरूप हैं। पापियोंका पाप नाश करनेके लिये मैंने ही ये स्वरूप धारण किये हैं।' जो अपने किसी प्रिय व्यक्तिको शालग्रामकी पूजा करनेका आदेश देता है वह स्वयं तो कृतार्थ होता ही है, अपने पूर्वजोंको भी शीघ्र ही वैकुण्ठमें पहुँचा देता है।

इस विषयमें काम-क्रोधसे रहित वीतराग महर्षिगण एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। पूर्वकालकी बात है, धर्मशून्य मगधदेशमें एक पुल्कस-जातिका मनुष्य रहता था, जो लोगोंमें शबरके नामसे प्रसिद्ध था। सदा अनेकों जीव-जन्तुओंकी हत्या करना और दूसरोंका धन लूटना, यही उसका काम था। राग-द्वेष और काम-क्रोधादि दोष सर्वदा उसमें भरे रहते थे। एक दिन वह व्याध समस्त प्राणियोंको भय पहुँचाता हुआ घूम रहा था, उसके मनपर मोह छाया हुआ था; इसलिये वह इस बातको नहीं जानता था कि उसका काल समीप आ पहुँचा है। यमराजके भयंकर दूत हाथोंमें मुद्गर और पाश लिये वहाँ पहुँचे। उनके ताँबे-जैसे लाल-लाल केश, बड़े-बड़े नख तथा लंबी-लंबी दाढ़ें थीं। वे सभी काले-कलूटे दिखायी देते थे तथा हाथोंमें लोहेकी साँकलें लिये हुए थे। उन्हें देखते ही प्राणियोंको मूर्च्छा आ जाती थी। वहाँ पहुँचकर वे कहने लगे—'सम्पूर्ण जीवोंको भय पहुँचानेवाले इस पापीको बाँध लो।' तदनन्तर सब यमदूत उसे लोहेके पाशसे बाँधकर बोले—'दुष्ट! दुरात्मा! तूने कभी मनसे शुभकर्म नहीं किये; इसलिये हम तुझे रौरव-नरकमें डालेंगे। जन्मसे लेकर अबतक तूने कभी भगवान्‌की सेवा नहीं की। समस्त पापोंको दूर करनेवाले श्रीनारायणदेवका कभी स्मरण नहीं किया; अतः धर्मराजकी आज्ञासे हम तुझे बारंबार पीटते हुए लोहशंकु, कुम्भीपाक अथवा अतिरौरव नरकमें ले जायँगे।' ऐसा कहकर यमदूत ज्यों ही उसे ले जानेको उद्यत हुए त्यों ही महाविष्णुके चरणकमलोंकी सेवा करनेवाले एक भक्त महात्मा वहाँ आ पहुँचे। उन वैष्णव महात्माने देखा कि यमदूत पाश, मुद्गर और दण्ड आदि कठोर आयुध धारण किये हुए हैं तथा पुल्कसको लोहेकी साँकलोंसे बाँधकर ले जानेको उद्यत हैं। भगवद्भक्त महात्मा बड़े दयालु थे। उस समय पुल्कसकी अवस्था देखकर उनके हृदयमें अत्यन्त करुणा भर आयी और उन्होंने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—यह पुल्कस मेरे समीप रहकर अत्यन्त कठोर यातनाको प्राप्त न हो, इसलिये मैं अभी यमदूतोंसे इसको छुटकारा दिलाता हूँ।' ऐसा सोचकर वे कृपालु मुनीश्वर हाथमें शालग्रामशिला लेकर पुल्कसके निकट गये और भगवान् शालग्रामका पवित्र चरणामृत, जिसमें तुलसीदल भी मिला हुआ था, उसके मुखमें डाल दिया। फिर

उसके कानमें उन्होंने रामनामका जप किया, मस्तकपर तुलसी रखी और छातीपर महाविष्णुकी शालग्रामशिला रखकर कहा—'यातना देनेवाले यमदूत यहाँसे चले

जायँ। शालग्रामशिलाका स्पर्श इस पुल्कसके महान् पातकको भस्म कर डाले।' वैष्णव महात्माके इतना कहते ही भगवान् विष्णुके पार्षद, जिनका स्वरूप बड़ा अद्भुत था, उस पुल्कसके निकट आ पहुँचे; शालग्रामकी शिलाके स्पर्शसे उसके सारे पाप नष्ट हो गये थे। वे पार्षद पीताम्बर धारण किये शंख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हो रहे थे। उन्होंने आते ही उस दुःसह लोहपाशसे पुल्कसको मुक्त कर दिया। उस महापापीको छुटकारा दिलानेके बाद वे यमदूतोंसे बोले—'तुमलोग किसकी आज्ञाका पालन करनेवाले हो, जो इस प्रकार अधर्म कर रहे हो? यह पुल्कस तो वैष्णव है, इसने पूजनीय देह धारण कर रखा है, फिर किसलिये तुमने इसे बन्धनमें डाला था?' उनकी बात सुनकर यमदूत बोले—'यह पापी है, हमलोग धर्मराजकी आज्ञासे इसे ले जानेको उद्यत हुए हैं, इसने कभी मनसे भी किसी प्राणीका उपकार नहीं किया है। इसने जीवहिंसा जैसे बड़े-बड़े पाप किये हैं। तीर्थ-यात्रियोंको तो इसने अनेकों बार लूटा है। यह सदा परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करनेमें ही लगा रहता था। सभी तरहके पाप इसने किये हैं; अतः हमलोग इस पापीको ले जानेके उद्देश्यसे ही यहाँ उपस्थित हुए हैं। आपलोगोंने सहसा आकर क्यों इसे बन्धनसे मुक्त कर दिया?'

विष्णुदूत बोले—यमदूतो! ब्रह्महत्या आदिका पाप हो या करोड़ों प्राणियोंके वध करनेका, शालग्राम-शिलाका स्पर्श सबको क्षणभरमें जला डालता है। जिसके कानोंमें अकस्मात् भी रामनाम पड़ जाता है, उसके सारे पापोंको वह उसी प्रकार भस्म कर डालता है, जैसे आगकी चिनगारी रूईको।* जिसके मस्तकपर तुलसी, छातीपर शालग्रामकी मनोहर शिला तथा मुख या कानमें रामनाम हो वह तत्काल मुक्त हो जाता है। इस पुल्कसके मस्तकपर भी पहलेसे ही तुलसी रखी हुई है, इसकी छातीपर शालग्रामकी शिला है तथा अभी तुरंत ही इसको श्रीरामका नाम भी सुनाया गया है; अतः इसके पापोंका समूह दग्ध हो गया और अब इसका शरीर पवित्र हो चुका है। तुमलोगोंको शालग्रामशिलाकी महिमाका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है; यह दर्शन, स्पर्श अथवा पूजन करनेपर तत्काल ही सारे पापोंको हर लेती है।

इतना कहकर भगवान् विष्णुके पार्षद चुप हो गये। यमदूतोंने लौटकर यह अद्भुत घटना धर्मराजसे कह सुनायी तथा श्रीरघुनाथजीके भजनमें लगे रहनेवाले वे वैष्णव महात्मा भी यह सोचकर कि 'यह यमराजके पाशसे मुक्त हो गया और अब परमपदको प्राप्त होगा' बहुत प्रसन्न हुए। इसी समय देवलोकसे बड़ा ही मनोहर, अत्यन्त अद्भुत और उज्ज्वल विमान आया तथा वह पुल्कस उसपर आरूढ़ हो बड़े-बड़े पुण्यवानोंद्वारा सेवित स्वर्गलोकको चला गया। वहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग करके वह फिर इस पृथ्वीपर आया और काशीपुरीके भीतर एक शुद्ध ब्राह्मणवंशमें जन्म लेकर उसने विश्वनाथजीकी आराधना की एवं अन्तमें परमपदको प्राप्त कर लिया। यह पुल्कस पापी था तो भी साधु-संगके प्रभावसे शालग्रामशिलाका स्पर्श पाकर यमदूतोंकी भयंकर पीड़ासे मुक्त हो परमपदको पा गया। राजन्! यह मैंने तुम्हें शालग्रामशिलाके पूजनकी महिमा बतलायी है, इसका श्रवण करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता और भोग तथा मोक्षको प्राप्त होता है।

---

* रामेति नाम यच्छ्रोत्रे विश्रम्भादागतं यदि। करोति पापसंदाहं तूलं वह्निकणो यथा॥ (२०।८०)

राजा रत्नग्रीवका नीलपर्वतपर भगवान्‌का दर्शन करके रानी आदिके साथ वैकुण्ठको जाना तथा शत्रुघ्नका नीलपर्वतपर पहुँचना

सुमति कहते हैं—सुमित्रानन्दन! गण्डकी नदीका यह अनुपम माहात्म्य सुनकर राजा रत्नग्रीवने अपनेको कृतार्थ माना। उन्होंने उस तीर्थमें स्नान करके अपने समस्त पितरोंका तर्पण किया। इससे उनको बड़ा हर्ष हुआ। फिर शालग्रामशिलाकी पूजाके उद्देश्यसे उन्होंने गण्डकी नदीसे चौबीस शिलाएँ ग्रहण कीं और चन्दन आदि उपचार चढ़ाकर बड़े प्रेमसे उनकी पूजा की। तत्पश्चात् वहाँ दीनों और अंधोंको विशेष दान देकर राजाने पुरुषोत्तममन्दिरको जानेके लिये प्रस्थान किया। इस प्रकार क्रमशः यात्रा करते हुए वे उस तीर्थमें पहुँचे, जहाँ गंगा और समुद्रका संगम हुआ है। वहाँ जाकर उन्होंने ब्राह्मणोंसे प्रसन्नतापूर्वक पूछा—'स्वामिन्! बताइये, नीलाचल यहाँसे कितनी दूर है? जहाँ साक्षात् भगवान् पुरुषोत्तम निवास करते हैं तथा देवता और असुर भी जिनके सामने मस्तक नवाते हैं।'

उस समय तपस्वी ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने राजासे बड़े आदरके साथ कहा—'राजन्! नीलपर्वतका विश्ववन्दित स्थान है तो यहीं; किन्तु न जाने वह हमें दिखायी क्यों नहीं देता।' वे बारंबार इस बातको दुहराने लगे कि 'नीलाचलका वह स्थान, जो महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाला है तथा जहाँ भगवान् पुरुषोत्तमका निवास है, यही है। उसका दर्शन क्यों नहीं होता? यह बात समझमें नहीं आती। इसी स्थानपर मैंने स्नान किया था, यहीं मुझे वे भील दिखायी दिये थे और इसी मार्गसे मैं पर्वतके ऊपर चढ़ा था।' यह बात सुनकर राजाके मनमें बड़ी व्यथा हुई, वे कहने लगे—'विप्रवर! मुझे पुरुषोत्तमका दर्शन कैसे होगा? तथा वह नीलपर्वत कैसे दिखायी देगा? मुझे इसका कोई उपाय बताइये।' तब तपस्वी ब्राह्मणने विस्मित होकर कहा—'राजन्! हमलोग गंगासागर-संगममें स्नान करके यहाँ तबतक ठहरे रहें जबतक कि नीलाचलका दर्शन न हो जाय। भगवान् पुरुषोत्तम पापहारी कहलाते हैं। वे भक्तवत्सल नाम धारण करते हैं; अतः हमलोगोंपर शीघ्र ही कृपा करेंगे। वे देवाधिदेवोंके भी शिरोमणि हैं, अपने भक्तोंका कभी परित्याग नहीं करते। अबतक उन्होंने अनेकों भक्तोंकी रक्षा की है, इसलिये महामते! तुम उन्हींका गुणगान करो।' ब्राह्मणकी बात सुनकर राजाने व्यथित चित्तसे गंगासागर-संगममें स्नान किया। इसके बाद उन्होंने उपवासका व्रत लिया। 'जब भगवान् पुरुषोत्तम दर्शन देनेकी कृपा करेंगे तभी उनकी पूजा करके भोजन करूँगा, अन्यथा निराहार ही रहूँगा।' ऐसा नियम करके वे गंगासागरके तटपर बैठ गये और भगवान्‌का गुणगान करते हुए उपवासव्रतका पालन करने लगे।

राजा बोले—प्रभो! आप दीनोंपर दया करनेवाले हैं; आपकी जय हो। भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले पुरुषोत्तम! आपका नाम मंगलमय है, आपकी जय हो। भक्तजनोंकी पीड़ाका नाश करनेके लिये ही आपने सगुण विग्रह धारण किया है, आप दुष्टोंका विनाश करनेवाले हैं; आपकी जय हो! जय हो!! आपके भक्त प्रह्लादको उसके पिता दैत्यराजने बड़ी व्यथा पहुँचायी—शूलीपर चढ़ाया, फाँसी दी, पानीमें डुबोया, आगमें जलाया और पर्वतसे नीचे गिराया; किन्तु आपने नृसिंहरूप धारण करके प्रह्लादको तत्काल संकटसे बचा लिया; उसका पिता देखता ही रह गया। मतवाले गजराजका पैर ग्राहके मुखमें पड़ा था और वह अत्यन्त दुःखी हो रहा था; उसकी दशा देख आपके हृदयमें करुणा भर आयी और आप उसे बचानेके लिये शीघ्र ही गरुड़पर सवार हुए; किन्तु आगे चलकर आपने पक्षिराज गरुड़को भी छोड़ दिया और हाथमें चक्र लिये बड़े वेगसे दौड़े। उस समय अधिक वेगके कारण आपकी वनमाला जोर-जोरसे हिल रही थी और पीताम्बरका छोर आकाशमें फहरा रहा था। आपने तत्काल पहुँचकर गजराजको ग्राहके चंगुलसे छुड़ाया

और ग्राहको मौतके घाट उतार दिया। जहाँ-जहाँ आपके सेवकोंपर संकट आता है वहाँ-वहाँ आप देह धारण करके अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं। आपकी लीलाएँ मनको मोहने तथा पापको हर लेनेवाली हैं। उन्हींके द्वारा आप भक्तोंका पालन करते हैं। भक्तवत्सल! आप दीनोंके नाथ हैं, देवताओंके मुकुटमें जड़े हुए हीरे आपके चरणोंका स्पर्श करते हैं। प्रभो! आप करोड़ों पापोंको भस्म करनेवाले हैं। मुझे अपने चरण-कमलोंका दर्शन दीजिये। यदि मैं पापी हूँ तो भी आपके मानसमें—आपको प्रिय लगनेवाले इस पुरुषोत्तमक्षेत्रमें आया हूँ; अतः अब मुझे दर्शन दीजिये। देव-दानववन्दित परमेश्वर! हम आपके ही हैं। आप पाप-राशिका नाश करनेवाले हैं। आपकी वह महिमा मुझे भूली नहीं है। सबके दुःखोंको दूर करनेवाले दयामय! जो लोग आपके पवित्र नामोंका कीर्तन करते हैं, वे पाप-समुद्रसे तर जाते हैं। यदि संतोंके मुखसे सुनी हुई मेरी यह बात सच्ची है तो आप मुझे प्राप्त होइये—मुझे दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये।

सुमति कहते हैं—इस प्रकार राजा रत्नग्रीव रात-दिन भगवानका गुणगान करते रहे। उन्होंने क्षणभरके लिये भी न तो कभी विश्राम किया, न नींद ली और न कोई सुख ही उठाया। वे चलते-फिरते, ठहरते, गीत गाते तथा वार्तालाप करते समय भी निरन्तर यही कहते कि—'पुरुषोत्तम! कृपानाथ! आप मुझे अपने स्वरूपकी झाँकी कराइये।' इस तरह गंगासागरके तटपर रहते हुए राजाके पाँच दिन व्यतीत हो गये। तब दयासागर श्रीगोपालने कृपापूर्वक विचार किया कि 'यह राजा मेरी महिमाका गान करनेके कारण सर्वथा पापरहित हो गया है; अतः अब इसे मेरे देव-दानववन्दित प्रियतम विग्रहका दर्शन होना चाहिये।' ऐसा सोचकर भगवान्‌का हृदय करुणासे भर गया और वे संन्यासीका वेष धारण करके राजाके समीप गये। तपस्वी ब्राह्मणने देखा, भगवान् अपने भक्तपर कृपा करनेके लिये हाथमें त्रिदण्ड ले यतिका वेश बनाये यहाँ उपस्थित हुए हैं। नृपश्रेष्ठ रत्नग्रीवने '**ॐ नमो नारायणाय**' कहकर संन्यासी बाबाको नमस्कार किया और अर्घ्य, पाद्य तथा आसन आदि निवेदन करके उनका विधिवत् पूजन किया। इसके बाद वे बोले—'महात्मन्! आज मेरे सौभाग्यकी कोई तुलना नहीं है; क्योंकि आज आप-जैसे साधु पुरुषने कृपापूर्वक मुझे दर्शन दिया है। मैं समझता हूँ, इसके बाद अब भगवान् गोविन्द भी मुझे अपना दर्शन देंगे।' यह सुनकर संन्यासी बाबाने कहा—'राजन्! मेरी बात सुनो, मैं अपनी ज्ञानशक्तिसे भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालकी बात जानता हूँ, इसलिये जो कुछ भी कहूँ, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनना, कल दोपहरके समय भगवान् तुम्हें दर्शन देंगे, वही दर्शन, जो ब्रह्माजीके लिये भी दुर्लभ है, तुम्हें सुलभ होगा। तुम अपने पाँच आत्मीय-जनोंके साथ परमपदको प्राप्त होओगे। तुम, तुम्हारे मन्त्री, तुम्हारी रानी, ये तपस्वी ब्राह्मण तथा तुम्हारे नगरमें रहनेवाला करम्ब नामका साधु, जो जातिका तन्तुवाय—कपड़ा बुननेवाला जुलाहा है—इन सबके साथ तुम पर्वतश्रेष्ठ नीलगिरिपर जा सकोगे। वह पर्वत देवताओंद्वारा पूजित तथा ब्रह्मा और इन्द्रद्वारा अभिवन्दित है।' यह कहकर संन्यासी बाबा अन्तर्धान हो गये, अब वे कहीं दिखायी नहीं देते थे। उनकी बात सुनकर राजाको बड़ा हर्ष हुआ। साथ ही विस्मय भी। उन्होंने तपस्वी ब्राह्मणसे पूछा—स्वामिन्! वे संन्यासी कौन थे, जो यहाँ आकर मुझसे बात कर गये हैं, इस समय वे फिर दिखायी नहीं देते, कहाँ चले गये? उन्होंने मेरे चित्तको बड़ा हर्ष प्रदान किया है।'

तपस्वी ब्राह्मणने कहा—राजन्! वे समस्त पापोंका नाश करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तम ही थे, जो तुम्हारे महान् प्रेमसे आकृष्ट होकर यहाँ आये थे। कल दोपहरके समय महान् पर्वत नीलगिरि तुम्हारे सामने प्रकट होगा, तुम उसपर चढ़कर भगवान्‌का दर्शन करके कृतार्थ हो जाओगे।

ब्राह्मणका यह वचन अमृत-राशिके समान सुखदायी प्रतीत हुआ; उसने राजाके हृदयकी सारी चिन्ताओंका नाश कर दिया। उस समय कांची नरेशको

जो आनन्द मिला, उसका ब्रह्माजी भी अनुभव नहीं कर सकते। दुन्दुभी बजने लगी तथा वीणा, पणव और गोमुख आदि बाजे भी बज उठे। महाराज रत्नग्रीवके मनमें उस समय बड़ा उल्लास छा गया था। वे प्रतिक्षण भगवान्‌का गुणगान करते हुए, नाचते, खड़े होते, हँसते, बोलते और बात करते थे। उन्हें सब सन्तापोंका नाश करनेवाले घनीभूत आनन्दकी प्राप्ति हुई थी। तदनन्तर सारा दिन भगवान्‌के कीर्तन और स्मरणमें बिताकर राजा रत्नग्रीव रातमें गंगाजीके तटपर, जो महान् फल प्रदान करनेवाला है, सो रहे। सपनेमें उन्होंने देखा, 'मेरा स्वरूप चतुर्भुज हो गया है। मैं शंख, चक्र, गदा, पद्म और शार्ङ्गधनुष धारण किये हुए हूँ तथा भगवान् पुरुषोत्तमके सामने रुद्र आदि देवताओंके साथ नृत्य कर रहा हूँ।'

उन्हें यह भी दिखायी दिया कि शंख, चक्र, गदा और पद्म आदि आयुध तथा विष्वक्सेन आदि पार्षदगण परम सुन्दर दिव्य स्वरूपसे प्रकट हो सदा श्रीलक्ष्मीपतिकी उपासनामें संलग्न रहते हैं। यह सब देखकर उन्हें अद्भुत हर्ष और आश्चर्य हुआ। अपनी मनोवांछित कामना पूर्ण करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन पाकर महाबुद्धिमान् राजाने अपनेको उनका कृपापात्र माना। स्वप्नमें ये सारी बातें देखकर जब वे प्रातःकाल नींदसे उठे तो तपस्वी ब्राह्मणको बुलाकर उन्होंने अपने देखे हुए सपनेका सारा समाचार उनसे कह सुनाया। उसे सुनकर बुद्धिमान् ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ, उन्होंने कहा—'राजन्! तुमने जिन भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन किया है, वे तुम्हें अपना शंख, चक्र आदि चिह्नोंसे विभूषित स्वरूप प्रदान करना चाहते हैं।' यह सुनकर महामना रत्नग्रीवने दीन-दुःखियोंको उनकी इच्छाके अनुसार दान दिलाया। फिर गंगासागर संगममें स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण किया तथा भगवान्‌के गुणोंका गान करते हुए वे उनके दर्शनकी प्रतीक्षा करने लगे। तदनन्तर जब दोपहरका समय हुआ तो आकाशमें बारंबार दुन्दुभियाँ बजने लगीं। देवताओंके हाथसे बजाये जानेके कारण उनसे बड़े जोरकी आवाज होती थी। सहसा राजाके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा हुई। देवता कहने लगे—'नृपश्रेष्ठ! तुम धन्य हो! नीलाचलका प्रत्यक्ष दर्शन करो।' देवताओंकी कही हुई यह बात ज्यों ही राजाके कानोंमें पड़ी, त्यों ही नीलगिरिके नामसे प्रसिद्ध वह महान् पर्वत उनकी आँखोंके समक्ष प्रकट हो गया। करोड़ों सूर्योंके समान उसका प्रकाश छा रहा था। चारों ओरसे सोने और चाँदीके शिखर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। राजा सोचने लगे—क्या यह अग्नि प्रज्वलित हो रहा है या दूसरे सूर्यका उदय हुआ है? अथवा स्थिर कान्ति धारण करनेवाला विद्युत्पुंज ही सहसा सामने प्रकट हो गया है?'

तपस्वी ब्राह्मणने अत्यन्त शोभासम्पन्न नीलगिरिको देखकर राजासे कहा—'महाराज! यही वह परम पवित्र महान् पर्वत है।' यह सुनकर नृपश्रेष्ठ रत्नग्रीवने मस्तक झुकाकर उसे प्रणाम किया और कहा—'मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया; क्योंकि इस समय मुझे नीलाचलका प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। राजमन्त्री, रानी और करम्ब नामका जुलाहा—ये भी नीलाचलका दर्शन पाकर बड़े प्रसन्न हुए। नरश्रेष्ठ! उपर्युक्त पाँचों व्यक्तियोंने

विजय नामक मुहूर्तमें नीलगिरिपर चढ़ना आरम्भ किया। उस समय उन्हें देवताओंद्वारा बजायी हुई महान् दुन्दुभियोंकी ध्वनि सुनायी दे रही थी। पर्वतके ऊपरी शिखरपर, जो विचित्र वृक्षोंसे सुशोभित हो रहा था, उन्होंने एक सुवर्णजटित परम सुन्दर देवालय देखा। जहाँ प्रतिदिन ब्रह्माजी आकर भगवान्‌की पूजा करते हैं तथा श्रीहरिको सन्तोष देनेवाला नैवेद्य भोग लगाते हैं। वह अद्भुत एवं उज्ज्वल देवालय देखकर राजा सबके साथ उसके भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ एक सोनेका सिंहासन था, जो बहुमूल्य मणियोंसे जटित होनेके कारण अत्यन्त विचित्र दिखायी दे रहा था। उसके ऊपर भगवान् चतुर्भुज रूपसे विराजमान थे। उनकी झाँकी बड़ी मनोहर दिखायी देती थी। चण्ड, प्रचण्ड और विजय आदि पार्षद उनकी सेवामें खड़े थे। नृपश्रेष्ठ रत्नग्रीवने अपनी रानी और सेवकोंसहित भगवान्‌को प्रणाम किया।

प्रणामके पश्चात् वेदोक्त मन्त्रोंद्वारा उन्हें विधिवत् स्नान कराया और प्रसन्नचित्तसे अर्घ्य, पाद्य आदि उपचार अर्पण किये। इसके बाद भगवान्‌के श्रीविग्रहमें चन्दन लगाकर उन्हें वस्त्र निवेदन किया तथा धूप-आरती करके सब प्रकारके स्वादसे युक्त मनोहर नैवेद्य भोग लगाया। अन्तमें पुनः प्रणाम करके तापस ब्राह्मणके साथ वे भगवान्‌की स्तुति करने लगे। उसमें उन्होंने अपनी बुद्धिके अनुसार श्रीहरिके गुण-समुदायसे ग्रथित स्तोत्रोंका संग्रह सुनाया था।

राजा बोले—भगवन्! एकमात्र आप ही पुरुष (अन्तर्यामी) हैं। आप ही प्रकृतिसे परे साक्षात् भगवान् हैं। आप कार्य और कारणसे भिन्न तथा महत्तत्त्व आदिसे पूजित हैं। सृष्टि-रचनामें कुशल ब्रह्माजी आपहीके नाभि-कमलसे उत्पन्न हुए हैं तथा संहारकारी रुद्रका आविर्भाव भी आपहीके नेत्रोंसे हुआ है। आपकी ही आज्ञासे ब्रह्माजी इस संसारकी सृष्टि करते हैं। पुराणपुरुष! आदिकालका जो स्थावर-जंगमरूप जगत् दिखायी देता है, वह सब आपसे ही उत्पन्न हुआ है। आप ही इसमें चेतनाशक्ति डालकर इस संसारको चेतन बनाते हैं। जगदीश्वर! वास्तवमें आपका जन्म तो कभी होता ही नहीं है; अतएव आपका अन्त भी नहीं है। प्रभो! आपमें वृद्धि, क्षय और परिणाम—इन तीनों विकारोंका सर्वथा अभाव है, तथापि आप भक्तोंकी रक्षा और धर्मकी स्थापनाके लिये अपने अनुरूप गुणोंसे युक्त दिव्य जन्म-कर्म स्वीकार करते हैं। आपने मत्स्यावतार धारण करके शंखासुरको मारा और वेदोंकी रक्षा की। ब्रह्मन्! आप महापुरुष (पुरुषोत्तम) और सबके पूर्वज हैं। महाविष्णो! शेष भी आपकी महिमाको नहीं जानते। भगवती वाणी भी आपको समझ नहीं पाती, फिर मेरे-जैसे अन्यान्य अज्ञानी जीव कैसे आपकी स्तुति करनेमें समर्थ हो सकते हैं?*

* एकस्त्वं पुरुषः साक्षाद् भगवान् प्रकृतेः परः। कार्यकारणतो भिन्नो महत्तत्त्वादिपूजितः॥
त्वन्नाभिकमलाज्जातो ब्रह्मा सृष्टिविचक्षणः। तथा संहारकर्ता च रुद्रस्त्वन्नेत्रसंभवः॥
त्वयाऽऽज्ञप्तः करोत्यस्य विश्वस्य परिनिष्ठितम्॥

इस प्रकार स्तुति करके राजाने भगवान्के चरणोंमें मस्तक नवाकर पुनः प्रणाम किया। उस समय उनका स्वर गद्गद हो रहा था। समस्त अंगोंमें रोमांच हो आया था। उनकी इस स्तुतिसे भगवान् पुरुषोत्तम बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने राजासे सत्य और सार्थक वचन कहा।

श्रीभगवान् बोले—राजन्! तुम्हारे द्वारा की हुई इस स्तुतिसे मुझे बड़ा हर्ष हुआ है। महाराज! तुम यह जान लो कि मैं प्रकृतिसे परे रहनेवाला परमात्मा हूँ। अब तुम शीघ्र ही मेरा नैवेद्य (प्रसाद) ग्रहण करो। इससे परम मनोहर चतुर्भुज रूपको प्राप्त होकर परमपदको जाओगे। जो मनुष्य तुम्हारे किये हुए इस स्तोत्ररत्नसे मेरी स्तुति करेगा, उसे भी मैं अपना उत्तम दर्शन दूँगा, जो भोग और मोक्ष—दोनों प्रदान करनेवाला है।

भगवान्के कहे हुए इस वचनको सुनकर राजाने अपनी सेवामें रहनेवाले चारों स्वजनोंके साथ नैवेद्य भक्षण किया। तदनन्तर क्षुद्रघण्टिकाओंसे सुशोभित सुन्दर विमान उपस्थित हुआ। उस समय धर्मात्मा राजा रत्नग्रीवने, जो भगवान्के कृपापात्र हो चुके थे, श्रीपुरुषोत्तमदेवका दर्शन करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया तथा उनकी आज्ञा ले अपनी रानीके साथ विमानपर आ बैठे। फिर भगवान्के देखते-देखते अद्भुत वैकुण्ठलोकमें चले गये। राजाके मन्त्री भी धर्मपरायण तथा धर्मवेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ थे; अतः वे भी विमानपर बैठकर उनके साथ ही गये। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेवाले तपस्वी ब्राह्मण भी चतुर्भुज-स्वरूपको प्राप्त होकर वैकुण्ठको चले गये। इसी प्रकार करम्बने भी भगवान्के गुणोंका गायन करनेके पुण्यसे उनका दर्शन पाया और सम्पूर्ण देवताओंके लिये दुर्लभ भगवद्-धामको प्रस्थान किया। सभी एक ही साथ परम अद्भुत विष्णुलोककी ओर प्रस्थित हुए। सबके चार-चार भुजाएँ थीं। सबके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पा रहे थे। सभी मेघके समान श्यामसुन्दर और विशुद्ध स्वभाववाले थे। सबके हाथ कमलोंकी भाँति सुशोभित थे। हार, केयूर और कड़ोंसे सभीके अंग विभूषित थे। इस प्रकार उन सब लोगोंने वैकुण्ठधामकी यात्रा की। साथमें आये हुए प्रजावर्गके लोगोंने विमानोंकी पंक्तियाँ देखीं तथा दुन्दुभीकी ध्वनिको भी श्रवण किया। उस समय एक ब्राह्मण भी वहाँ गये थे, जो भगवान्के चरणारविन्दोंमें बड़ा प्रेम रखनेवाले थे। उनके चित्तपर भगवद्विरहका इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वे चतुर्भुज-स्वरूप हो गये। यह अद्भुत बात देखकर सब लोग ब्राह्मणके महान् सौभाग्यकी सराहना करने लगे और गंगासागर-संगममें स्नान करके कांचीनगरीमें लौट आये। सब लोग कहते थे कि 'उत्तम बुद्धिवाले महाराज रत्नग्रीवका अहोभाग्य है, जो वे इसी शरीरसे श्रीविष्णुके परमधामको चले गये।'

[सुमति कहते हैं—] राजन्! यही वह नीलगिरि है, जिसका भगवान् पुरुषोत्तमने आदर बढ़ाया है। इसका दर्शन करनेमात्रसे मनुष्य परमपद—वैकुण्ठधामको प्राप्त हो जाता है। जो सौभाग्यशाली पुरुष नीलगिरिके इस माहात्म्यको सुनता है तथा जो दूसरे लोगोंको सुनाता है, वे दोनों ही परमधामको प्राप्त होते हैं। इसका श्रवण और स्मरण करनेमात्रसे बुरे सपने नष्ट हो जाते हैं तथा अन्तमें भगवान् पुरुषोत्तम इस संसारसे उद्धार कर देते हैं। ये नीलाचलनिवासी पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रके ही स्वरूप हैं तथा देवी सीता साक्षात् महालक्ष्मी हैं। ये दोनों दम्पति ही समस्त कारणोंके भी कारण हैं। भगवान् श्रीराम अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करके सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र कर देंगे। उनका नाम ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तमें भी जपनेके लिये बताया गया

* त्वत्तो भवति पुराणाद्यं जगत् स्थास्नु चरिष्णु च । लीलाशक्तिसमाविष्ट त्वमेव चेतनात्मको॥
तव जन्म तु नास्त्येव नाशस्तव जगत्पते । वृद्धिक्षयपरिणामास्त्वयि सन्त्येव नो विभो॥
तथापि भक्तरक्षार्थं धर्मसंस्थापनाय ते । करोषि जन्मकर्माणि ह्यनुरूपगुणानि च॥
त्वया मात्स्यं वपुर्धृत्वा शङ्खस्तु निहतोऽसुरः । वेदाः सुरक्षिता ब्रह्मन् मायापुरुषपूर्वक॥
शेषो न वेत्ति यद् ते भारत्यपि महेश्वरी । किमुतान्ये महाविष्णो मादृशाः कुबुद्धयः॥ (२२।२४—२८)

है। [रामनाम लेनेसे ब्रह्महत्या-जैसे पातक भी दूर हो जाते हैं।] सुमित्रानन्दन! उस समय तुम्हारा यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ा पर्वतश्रेष्ठ नीलगिरिके निकट जा पहुँचा है। महामते! तुम भी वहाँ चलकर भगवान् पुरुषोत्तमको नमस्कार करो। वहाँ जानेसे हम सब लोग निष्पाप होकर अन्तमें परमपदको प्राप्त होंगे; क्योंकि भगवान्के प्रसादसे अबतक अनेक मनुष्य भवसागरके पार हो चुके हैं।

[शेषजी कहते हैं—] वात्स्यायनजी! इस प्रकार सुमति भगवान्की महिमाका वर्णन कर रहे थे; इतनेहीमें वह अश्व पृथ्वीको अपनी टापोंसे खोदता हुआ वायुके समान वेगसे चलकर नीलाचलपर पहुँच गया। तब राजा शत्रुघ्न भी उसके पीछे-पीछे आकर नीलगिरिपर पहुँचे और गंगासागर संगममें स्नान करके पुरुषोत्तमका दर्शन करनेके लिये गये। निकट जाकर उन्होंने देव-दानववन्दित भगवान्को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करके अपनेको कृतार्थ माना।

चक्रांका नगरीके राजकुमार दमनद्वारा घोड़ेका पकड़ा जाना तथा राजकुमारका प्रतापाग्र्यको युद्धमें परास्त करके स्वयं पुष्कलके द्वारा पराजित होना

शेषजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर वह घोड़ा नीलाचलपर थोड़ी देर ठहरकर घास चरता हुआ आगे बढ़ गया। उसका वेग मनके समान तीव्र था। श्रेष्ठ वीर शत्रुघ्न, राजा लक्ष्मीनिधि, भयंकर वाहनवाले राजकुमार पुष्कल तथा राजा प्रतापाग्र्य—ये सभी उसकी रक्षा कर रहे थे। कई करोड़ वीरोंसे सुरक्षित वह यज्ञसम्बन्धी अश्व क्रमशः आगे बढ़ता हुआ राजा सुबाहुद्वारा परिपालित चक्रांका नगरीके पास जा पहुँचा। उस समय राजाका पुत्र दमन शिकार खेल रहा था। उसकी दृष्टि उस घोड़ेपर पड़ी, जो चन्दन आदिसे चर्चित तथा मस्तकमें सुवर्णमय पत्रसे शोभायमान था। राजकुमार दमनने उस पत्रको बाँचा, सुन्दर अक्षरोंमें लिखा होनेके कारण उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। पत्रका अभिप्राय समझकर वह बोला—'अहो! भूमण्डलपर मेरे पिताजीके जीते-जी यह इतना बड़ा अहंकार कैसा? जिसने यह घमण्ड दिखाया है उसे मेरे धनुषसे छूटे हुए बाण इस उद्दण्डताका फल चखायेंगे। आज मेरे तीखे बाण शत्रुघ्नके समस्त शरीरको घायल करके उन्हें लहूलुहान कर देंगे, जिससे वे फूले हुए पलाशकी भाँति दिखायी देंगे। आज सभी श्रेष्ठ योद्धा मेरी भुजाओंका महान् बल देखें! मैं अपने धनुर्दण्डसे करोड़ों बाणोंकी वर्षा करूँगा।'

राजकुमार दमनने ऐसा कहकर घोड़ेको तो अपने नगरमें भेज दिया और स्वयं हर्ष तथा उत्साहमें भरकर सेनापतिसे कहा—'महामते! शत्रुओंका सामना करनेके लिये मेरी सेना तैयार कर दो।' इस प्रकार सेनाको सुसज्जित करके वह शीघ्र ही युद्ध-क्षेत्रमें सामने आकर डट गया। उस समय उसका स्वरूप बड़ा उग्र दिखायी देता था। इसी बीचमें घोड़ेके पीछे चलनेवाले योद्धा भी वहाँ आ पहुँचे और अत्यन्त व्याकुल होकर बारम्बार एक-दूसरेसे पूछने लगे—'महाराजका वह यज्ञसम्बन्धी अश्व, जो भालपत्रसे चिह्नित था, कहाँ चला गया?' इतनेहीमें शत्रुओंको ताप देनेवाले राजा प्रतापाग्र्यने देखा, सामने ही कोई सेना तैयार होकर खड़ी है, जो वीरोचित शब्दोंका उच्चारण करती हुई गर्जना कर रही है। प्रतापाग्र्यके सिपाहियोंने उनसे कहा—'महाराज जान पड़ता है, यही राजा घोड़ा ले गया है; अन्यथा यह वीर अपने सैनिकोंके साथ हमारे सामने क्यों खड़ा होता?' यह सुनकर प्रतापाग्र्यने अपना एक सेवक भेजा। उसने जाकर पूछा—'महाराज श्रीरामचन्द्रजीका अश्व कहाँ है? कौन ले गया है? क्यों ले गया है? क्या वह भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको नहीं जानता?'

राजकुमार दमन बड़ा बलवान् था, वह सेवकका ऐसा वचन सुनकर बोला—'अरे! भालपत्र आदि चिह्नोंसे अलंकृत उस यज्ञसम्बन्धी अश्वको मैं ले गया हूँ। उसकी रक्षामें जो शूरवीर हों, वे आवें और मुझे

जीतकर बलपूर्वक यहाँसे घोड़ेको छुड़ा ले आयें।' राजकुमारका वचन सुनकर सेवकको बड़ा रोष हुआ, तथापि वह हँसता हुआ वहाँसे लौट गया और राजाके पास जाकर उसने दमनकी कही हुई सारी बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं। उसे सुनते ही महाबली प्रतापाग्र्यकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और वे चार घोड़ोंसे सुशोभित सुवर्णमय रथपर सवार हो बड़े-बड़े वीरोंको साथ ले राजकुमारसे युद्ध करनेके लिये चले। उनकी सहायतामें बहुत बड़ी सेना थी। आगे बढ़कर वे धनुषपर टंकार देने लगे। उस समय रोषपूर्ण नेत्रोंवाले राजा प्रतापाग्र्यके पीछे-पीछे बहुत-से घुड़सवार और हाथीसवार भी गये। निकट जाकर प्रतापाग्र्यने युद्धके लिये उद्यत राजकुमारको सम्बोधित करके कहा—'कुमार! तू तो अभी बालक है। क्या तूने ही हमारे श्रेष्ठ घोड़ेको बाँध रखा है? अरे! समस्त वीरशिरोमणि जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं, उन महाराज श्रीरामचन्द्रजीको तू नहीं जानता? दैत्यराज रावण भी जिनके अद्भुत प्रतापको नहीं सह सका, उन्हींके घोड़ेको ले जाकर तूने अपने नगरमें पहुँचा दिया है! जान ले, मैं तेरे सामने आया हुआ काल हूँ, तेरा घोर शत्रु हूँ। छोकरे! तू अब तुरंत चला जा और घोड़ेको छोड़ दे, फिर जाकर बालकोंकी भाँति खेल-कूदमें जी बहला।'

दमनका हृदय बड़ा विशाल था, वह प्रतापाग्र्यकी ऐसी बातें सुनकर मुसकराया और उनकी सेनाको तिनकेके समान समझता हुआ बोला—'महाराज! मैंने बलपूर्वक आपके घोड़ेको बाँधा और अपने नगरमें पहुँचा दिया है, अब जीते-जी उसे लौटा नहीं सकता। आप बड़े बलवान् हैं तो युद्ध कीजिये। आपने जो यह कहा—'तू अभी बालक है, इसलिये जाकर खेल-कूदमें जी बहला' उसके लिये इतना ही कहना है कि अब आप युद्धके मुहानेपर ही मेरा खेल देखिये।'

इतना कहकर सुबाहुकुमारने अपने धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ायी और राजा प्रतापाग्र्यकी छातीको लक्ष्य करके सौ बाणोंका संधान किया। परन्तु राजा प्रतापाग्र्यने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए उन सभी बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। यह देखकर राजकुमार दमनको बड़ा क्रोध हुआ और वह बाणोंकी वर्षा करने लगा। तदनन्तर दमनने अपने धनुषपर तीन सौ बाणोंका संधान किया और उन्हें शत्रुपर चलाया। उन्होंने प्रतापाग्र्यकी छाती छेद डाली और रक्तमें नहाकर वे उसी भाँति नीचे गिरे, जैसे श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिसे विमुख हुए पुरुषोंका पतन हो जाता है। इसके बाद राजकुमारने शङ्खध्वनिके साथ गर्जना की। उसका पराक्रम देखकर प्रतापाग्र्य क्रोधसे जल उठे और बोले—'वीर! अब तू मेरा अद्भुत पराक्रम देख।' यों कहकर उन्होंने तुरंत तीखे बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी। वे बाण घोड़े और पैदल—सबके ऊपर पड़ते दिखायी देने लगे। उस समय राजकुमार दमनने प्रतापाग्र्यकी बाण-वर्षाको रोककर कहा—'आर्य! यदि आप शूरवीर हैं तो मेरी एक ही मार सह लीजिये। मैं अभिमानपूर्वक प्रतिज्ञा करके एक बात कहता हूँ, इसे सुनिये—वीरवर! यदि मैं इस बाणके द्वारा आपको रथसे नीचे न गिरा दूँ तो जो लोग युक्तिवादमें कुशल होनेके कारण मतवाले होकर वेदोंकी निन्दा करते हैं, उनका वह नरकमें डुबोनेवाला पाप मुझे ही लगे।' यह कहकर उसने कालके समान भयंकर, आगकी ज्वालाओंसे व्याप्त एवं अत्यन्त तीक्ष्ण बाण तरकशसे निकालकर अपने धनुषपर चढ़ाया। वह कालाग्निके समान देदीप्यमान हो रहा था। राजकुमारने अपने शत्रुके हृदयको निशाना बनाया और बाण छोड़ दिया। वह बड़े वेगसे शत्रुकी ओर चला। प्रतापाग्र्यने जब देखा कि शत्रुका बाण मुझे गिरानेके लिये आ रहा है, तो उन्होंने उसे काट डालनेके लिये कई तीखे बाण अपने धनुषपर चढ़ाये। किन्तु राजकुमारका बाण प्रतापाग्र्यके सब बाणोंको बीचसे काटता हुआ उनके धैर्ययुक्त हृदयतक पहुँच ही गया। हृदयपर चोट करके वह उसके भीतर घुस गया। राजा प्रतापाग्र्य उसकी चोट खाकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्हें मूर्च्छित—चेतनाहीन एवं रथकी बैठकसे धरतीपर गिरा देख सारथिने उठाकर रथपर बिठाया और युद्धभूमिसे बाहर ले गया। उस समय राजाकी सेनामें

बड़ा हाहाकार मचा। समस्त योद्धा भागकर वहाँ पहुँचे जहाँ करोड़ों वीरोंसे घिरे हुए शत्रुघ्नजी मौजूद थे। प्रतापाग्र्यको परास्त करके राजकुमार दमनने विजय पायी और अब वह शत्रुघ्नकी प्रतीक्षा करने लगा।

उधर शत्रुघ्नको जब यह हाल मालूम हुआ तो वे क्रोधमें भरकर दाँतोंसे दाँत पीसते हुए बारंबार सैनिकोंसे पूछने लगे—'कौन मेरा घोड़ा ले गया है? किसने शूर शिरोमणि राजा प्रतापाग्र्यको परास्त किया है?' तब सेवकोंने कहा—'राजा सुबाहुके पुत्र दमनने प्रतापाग्र्यको पराजित किया है और वे ही यज्ञका घोड़ा ले गये हैं।' यह सुनकर शत्रुघ्न बड़े वेगसे चलकर युद्धभूमिमें आये। वहाँ उन्होंने देखा, कितने ही हाथियोंके गण्डस्थल विदीर्ण हो गये हैं, घोड़े अपने सवारोंसहित घायल होकर मरे पड़े हैं। यह सब देखकर शत्रुघ्नके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये; वे अपने योद्धाओंसे बोले—'यहाँ मेरी सेनामें सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान रखनेवाला कौन ऐसा वीर है, जो राजकुमार दमनको परास्त कर सकेगा?' शत्रुघ्नका यह वचन सुनकर शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले पुष्कलके हृदयमें दमनको जीतनेका उत्साह हुआ और उन्होंने इस प्रकार कहा—'स्वामिन्! कहाँ वह छोटा-सा राजकुमार दमन और कहाँ आपका असीम बल! महामते! मैं अभी जा रहा हूँ, आपके प्रतापसे दमनको परास्त करूँगा। युद्धके लिये मुझ सेवकके उद्यत रहते हुए कौन घोड़ा ले जायगा? श्रीरघुनाथजीका प्रताप ही सारा कार्य सिद्ध करेगा। स्वामिन्! मेरी प्रतिज्ञा सुनिये; इससे आपको प्रसन्नता होगी। यदि मैं दमनको परास्त न करूँ तो श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंके रसास्वादनसे विलग (श्रीरामचरणचिन्तनसे दूर) रहनेवाले पुरुषोंको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे। यदि मैं दमनपर विजय न पाऊँ तो जो पुत्र माताके चरणोंसे पृथक् दूसरा कोई तीर्थ मानकर उसके साथ विरोध करता है, उसको लगनेवाला पाप मुझे भी लगे।'

पुष्कलकी यह प्रतिज्ञा सुनकर शत्रुघ्नजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने उन्हें युद्धमें जानेकी आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर पुष्कल बहुत बड़ी सेनाके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ वीरवंशमें उत्पन्न राजकुमार दमन मौजूद था। युद्धक्षेत्रमें पुष्कलको आया जान वीराग्रगण्य दमन भी अपनी सेनासे घिरा हुआ आगे बढ़ा। दोनोंका एक दूसरेसे सामना हुआ। अपने-अपने रथपर बैठे हुए दोनों वीर बड़ी शोभा पा रहे थे, उस समय पुष्कलने महाबली राजकुमारसे कहा—'दमन! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं तुम्हारे साथ युद्ध करनेके लिये प्रतिज्ञा करके आया हूँ, मेरा नाम पुष्कल है, मैं भरतजीका पुत्र हूँ; तुम्हें अपने शस्त्रोंसे परास्त करूँगा। महामते! तुम भी हर तरहसे तैयार हो जाओ।' पुष्कलकी उपर्युक्त बात सुनकर उसने हँसते-हँसते उत्तर दिया—'भरतनन्दन! मुझे राजा सुबाहुका पुत्र समझो, मेरा नाम दमन है, पिताके प्रति भक्ति रखनेके कारण मेरे सारे पाप दूर हो गये हैं, महाराज शत्रुघ्नका घोड़ा ले जानेवाला मैं ही हूँ। विजय तो दैवके अधीन है, दैव जिसे देगा—जिसे अपनी कृपासे अलंकृत करेगा, उसे ही विजय मिलेगी। परन्तु तुम युद्धके मुहानेपर डटे रहकर मेरा पराक्रम देखो।'

यों कहकर दमनने धनुष चढ़ाया और उसे कानतक खींचकर शत्रुओंके प्राण लेनेवाले तीखे बाणोंको छोड़ना आरम्भ किया। उन बाणोंने आकाशमण्डलको ढक लिया और उनकी छायासे सूर्यदेवकी किरणोंका प्रकाश भी रुक गया। राजकुमारके चलाये हुए उन बाणोंकी चोट खाकर कितने ही मनुष्य, रथ, हाथी और घोड़े धरतीपर लोटते दिखायी देने लगे। शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले पुष्कलने उसका यह पराक्रम देखा तथा आचमन करके एक बाण हाथमें लिया और उसे अग्निदेवके मन्त्रसे विधिपूर्वक अभिमन्त्रित करके अपने धनुषपर रखा। तदनन्तर भलीभाँति खींचकर उसे शत्रुओंके ऊपर छोड़ दिया। धनुषसे छूटते ही उस बाणसे युद्धके मुहानेपर भयंकर आग प्रकट हुई। वह अपनी ज्वालाओंसे आकाशको चाटती हुई प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित हो उठी। फिर तो दमनकी सेना रणभूमिमें दग्ध होने लगी, उसके ऊपर त्रास छा गया और वह आगकी लपटोंसे पीड़ित होकर भाग चली।

राजकुमार दमनके छोड़े हुए सभी बाण अग्निकी ज्वालाओंमें झुलसकर सब ओरसे नष्ट हो गये। अपनी सेना दग्ध होती देख दमन क्रोधसे भर गया। वह सभी अस्त्र-शस्त्रोंका विद्वान् था; इसलिये उसने वह आग बुझानेके लिये वरुणास्त्र हाथमें लिया और शत्रुपर छोड़ दिया। उसके छोड़े हुए वरुणास्त्रने रथ और घोड़े आदिसे भरी हुई पुष्कलकी सेनाको जलसे आप्लावित कर दिया। शत्रुओंके रथ और हाथी पानीमें डूबते दिखायी देने लगे तथा अपने पक्षके योद्धाओंको शान्ति मिली। पुष्कलने देखा, मेरी सेना जलराशिसे पीड़ित होकर काँपती, क्षुब्ध होती और नष्ट होती जा रही है तथा मेरा आग्नेयास्त्र शत्रुके वरुणास्त्रसे शान्त हो गया है। तब अत्यन्त क्रोधके कारण उसकी आँखें लाल हो गयीं और उसने वायव्यास्त्रसे अभिमन्त्रित करके एक बहुत बड़ा बाण अपने धनुषपर रखा। तदनन्तर वायव्यास्त्रकी प्रेरणासे बड़े जोरकी हवा उठी और उसने अपने वेगसे वहाँ घिरी हुई मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न कर दिया। राजकुमार दमनने अपने सैनिकोंको वायुसे पराजित होते देख अपने धनुषपर पर्वतास्त्रका संधान किया। फिर तो शत्रुयोद्धाओंके मस्तकपर पर्वतोंकी वर्षा होने लगी। उन पर्वतोंने वायुकी गतिको रोक दिया। अब हवा कहीं भी नहीं जा पाती थी। यह देख पुष्कलने अपने धनुषपर वज्रास्त्रका प्रयोग किया। तब वज्रके आघातसे वे सभी पर्वत क्षणभरमें तिलके समान टुकड़े-टुकड़े हो गये। साथ ही वह वज्र उच्चस्वरसे गर्जना करता हुआ राजकुमार दमनकी छातीपर बड़े वेगसे गिरा। छातीके बिंध जानेके कारण राजकुमारको गहरी चोट पहुँची, इससे उस बलवान् वीरको बड़ी व्यथा हुई। उसका हृदय व्याकुल हो उठा और वह मूर्च्छित हो गया। दमनका सारथि युद्धनीतिमें निपुण था। वह राजकुमारको मूर्च्छित देखकर उसे रणभूमिसे एक कोस दूर हटा ले गया। फिर तो उसके योद्धा अदृश्य हो गये—इधर-उधर भाग खड़े हुए और राजधानीमें जाकर उन्होंने राजकुमारके मूर्च्छित होनेका समाचार कह सुनाया। पुष्कल धर्मके ज्ञाता थे; उन्होंने संग्राम-भूमिमें इस प्रकार विजय पाकर श्रीरघुनाथजीके चरणोंका स्मरण करते हुए फिर किसीपर प्रहार नहीं किया। तदनन्तर दुन्दुभि बज उठी, जोर-जोरसे जय जयकार होने लगा। सब ओरसे साधुवादके मनोहर वचन सुनायी देने लगे। पुष्कलको विजयी देखकर शत्रुघ्न बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सुमति आदि मन्त्रियोंसे घिरकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

राजा सुबाहुका भाई और पुत्रोंसहित युद्धमें आना तथा सेनाका क्रौंच-व्यूहनिर्माण

शेषजी कहते हैं—मुने! उधर राजा सुबाहुने जब देखा कि मेरे सैनिक रक्तमें डूबे हुए आ रहे हैं तो उनका शोक शान्त-सा करते हुए उन्होंने अपने पुत्रकी करतूत पूछी। राजाका प्रश्न सुनकर उनके सेवकोंने, जो खूनसे लथपथ हो रहे थे तथा जिन्होंने रक्तसे भीगे हुए वस्त्र धारण कर रखा था, इस प्रकार उत्तर दिया—'राजन्! आपके पुत्रने स्वर्णमय पत्र आदिके चिह्नोंसे अलंकृत यज्ञसम्बन्धी अश्वको जब आते देखा तो वीरताके गर्वसे शत्रुघ्नको तिनकेके समान समझकर—उनकी कुछ भी परवा न करके उसे पकड़वा लिया। इतनेहीमें घोड़ेके पीछे चलनेवाला रक्षक थोड़ी-सी सेनाके साथ वहाँ आ पहुँचा। उसके साथ राजकुमारका बड़ा भारी युद्ध हुआ, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। आपके पुत्र दमन अपने बाणोंसे उस अश्व रक्षकको मूर्च्छित करके ज्यों ही स्थिर हुए त्यों ही शत्रुघ्न भी अपनी सेनाओंसे घिरे हुए उपस्थित हो गये। तदनन्तर दोनों दलोंमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ा, उसमें सब प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंका प्रयोग होने लगा। उस युद्धमें आपके महाबली पुत्रने अनेकों बार विजय पायी है, किन्तु इस समय शत्रुघ्नके भतीजेने वज्रास्त्र छोड़कर आपके वीर पुत्रको रणभूमिमें मूर्च्छित कर दिया है।'

सेवकोंकी यह बात सुनकर राजा सुबाहु राजधानीमें

निकलकर उस स्थानको चले, जहाँ उनके पुत्रको पीड़ा पहुँचानेवाले शत्रुघ्न मौजूद थे।

राजा सुबाहुको सुवर्णभूषित रथपर सवार हो नगरसे निकलते देख समस्त शत्रुओंपर प्रहार करनेवाली शत्रुघ्नकी सेना युद्धके लिये तैयार हो गयी। राजा सुबाहुके भाईका नाम था सुकेतु, वे गदायुद्धमें प्रवीण थे। वे भी अपने रथपर सवार होकर युद्धके लिये आये। राजाका पुत्र चित्रांग सब प्रकारकी युद्धकलामें निपुण था। वह भी रथारूढ़ होकर शीघ्र ही शत्रुघ्नकी मतवाली सेनापर चढ़ आया। उसके छोटे भाईका नाम था विचित्र। वह विचित्र प्रकारसे संग्राम करनेमें कुशल था। अपने भाईका दुःख सुनकर उसके मनमें बड़ी व्यथा हो रही थी, इसलिये वह भी सोनेके रथपर सवार हो युद्धके लिये उपस्थित हुआ। इनके सिवा और भी अनेकों धनुर्धर वीर, जो सभी अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता थे, राजाकी आज्ञा पाकर वीरोंसे भरी हुई संग्रामभूमिमें गये। राजा सुबाहुने बड़े रोषमें भरकर युद्धक्षेत्रमें पदार्पण किया और वहाँ अपने पुत्रको बाणोंसे पीड़ित एवं मूर्च्छित देखा। अपने प्यारे पुत्र दमनको रथकी बैठकमें मूर्च्छित होकर पड़ा देख राजाको बड़ा दुःख हुआ और वे पल्लवोंसे उसके ऊपर हवा करने लगे। उन्होंने कुमारके शरीरपर जलका छींटा दिया और अपने कोमल हाथसे उसका स्पर्श किया। इससे महान् अस्त्रवेत्ता वीरवर दमनको धीरे-धीरे चेत हो आया। होशमें आते ही दमन उठ बैठा और बोला—'मेरा धनुष कहाँ है? और पुष्कल यहाँसे कहाँ चला गया? मुझसे भिड़कर मेरे बाणोंके आघातसे पीड़ित होकर वह युद्ध छोड़कर कहाँ भाग गया?' पुत्रके ये वचन सुनकर राजा सुबाहु बड़े प्रसन्न हुए और उसे छातीसे लगा लिया। पिताको उपस्थित देख दमनने लज्जासे गर्दन झुका ली। उसका सारा शरीर अस्त्रोंकी मारसे घायल हो गया था, तो भी उसने बड़ी भक्तिके साथ पिताके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। बेटेको पुनः रथपर बिठाकर युद्धकर्ममें कुशल राजा सुबाहुने सेनापतिसे कहा—'इस युद्धमें तुम अपनी सेनाको क्रौंच-व्यूहके रूपमें खड़ी करो; उस व्यूहको जीतना शत्रुके लिये अत्यन्त कठिन है। उसीका आश्रय लेकर मैं राजा शत्रुघ्नकी सेनापर विजय प्राप्त करूँगा।' महाराज सुबाहुकी बात सुनकर सेनापतिने अपने सैनिकोंका क्रौंच नामक सुन्दर व्यूह बनाया। उसमें मुखके स्थानपर सुकेतु और कण्ठकी जगह चित्रांग खड़े हुए। पंखोंके स्थानपर दोनों राजकुमार—दमन और विचित्र थे। स्वयं राजा सुबाहु व्यूहके पुच्छ भागमें स्थित हुए। मध्यभागमें उनकी विशाल सेना थी, जो रथ, गज, अश्व और पैदल—इन चारों अंगोंसे शोभा पा रही थी। इस प्रकार विचित्र क्रौंच-व्यूहकी रचना करके सेनाध्यक्षने राजासे निवेदन किया—'महाराज! व्यूह सम्पन्न हो गया।'

राजा सुबाहुकी प्रशंसा तथा लक्ष्मीनिधि और सुकेतुका द्वन्द्वयुद्ध

शेषजी कहते हैं—मुनिवर! राजा सुबाहुकी सेनाका आकार बड़ा भयंकर दिखायी देता था, वह मेघोंकी घटाके समान जान पड़ती थी। उसे देखकर शत्रुघ्नने अपने मन्त्री सुमतिसे गम्भीर वाणीमें कहा—'मन्त्रिवर! मेरा घोड़ा किसके नगरमें जा पहुँचा है? यह सेना तो समुद्रकी लहरोंके समान दिखायी पड़ती है।'

सुमतिने कहा—राजन्! यहाँसे पास ही चक्रांका नामवाली सुन्दर नगरी विराजमान है। उसके भीतर ऐसे मनुष्य निवास करते हैं, जो भगवान् विष्णुकी भक्तिसे पापरहित हो गये हैं। ये धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ राजा सुबाहु उसी नगरीके स्वामी हैं। इस समय ये अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ तुम्हारे सामने विराजमान हैं। ये नरेश सदा अपनी ही स्त्रीके प्रति अनुराग रखते हैं। परायी स्त्रियोंपर कभी दृष्टि नहीं डालते। इनके कानोंमें सदा विष्णुकी ही कथा गूँजती है। अन्य विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली कथा-वार्ता ये कभी नहीं सुनते। प्रजाकी आयके छठे भागसे अधिक दूसरेका धन कभी नहीं ग्रहण करते। ये

धर्मात्मा हैं और विष्णु-बुद्धिसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं। सदा भगवान्‌की सेवामें लगे रहते और भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंका मकरन्द पान करनेके लिये भ्रमरकी भाँति लोलुप बने रहते हैं। परधर्मसे विमुख हो सदा स्वधर्मका ही सेवन करते हैं। वीरोंमें कहीं भी इनके बलकी समानता नहीं है। इस समय अपने पुत्रका युद्धके मैदानमें गिरना सुनकर ये क्रोध और शोकसे व्याकुल होकर युद्धके लिये उपस्थित हुए हैं।

मन्त्रीकी बात सुनकर शत्रुघ्नने अपने श्रेष्ठ योद्धाओंसे कहा—'वीरो! राजा सुबाहुके सैनिकोंने आज क्रौंच-व्यूहका निर्माण किया है। इसके मुख और पक्षभागमें प्रधान-प्रधान योद्धा खड़े हुए हैं। तुमलोगोंमें कौन ऐसा शस्त्रवेत्ता है, जो उन वीरोंका भेदन करेगा? जिसमें व्यूहका भेदन करनेकी शक्ति हो, जो वीरोंपर विजय पानेके लिये उद्यत हो, वह मेरे हाथसे पानका बीड़ा उठा ले।' उस समय वीर लक्ष्मीनिधिने क्रौंच-व्यूहको तोड़नेकी प्रतिज्ञा करके बीड़ा उठा लिया। पुष्कलने उनके पीछे सहायताके लिये जानेका विचार किया। तदनन्तर शत्रुघ्नकी आज्ञासे रिपुताप, नीलरत्न, उग्रास्य और वीरमर्दन—ये सब लोग क्रौंच-व्यूहका भेदन करनेके लिये लक्ष्मीनिधिके साथ गये।

व्यूहके मुख-भागमें सुकेतु खड़े थे, उनसे लक्ष्मीनिधिने कहा—'मैं राजा जनकका पुत्र हूँ, मेरा नाम लक्ष्मीनिधि है; मैं कहता हूँ, समस्त दानवकुलका विनाश करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञसम्बन्धी अश्वको छोड़ दो, नहीं तो मेरे बाणोंसे घायल होकर तुम्हें यमराजके लोकमें जाना पड़ेगा।' वीराग्रगण्य लक्ष्मीनिधिके ऐसा कहनेपर महाबली सुकेतुने बड़े वेगसे अपना धनुष चढ़ाया और तुरंत ही रण-क्षेत्रमें बाणोंकी झड़ी लगा दी। यह देख लक्ष्मीनिधिने भी अपने धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ायी और सुकेतुके बाण-समूहको वेगपूर्वक नष्ट करके उनकी छातीमें छः तीखे बाण मारे। उनके प्रहारसे सुकेतुकी छाती छिद गयी। इससे क्रोधमें भरकर उन्होंने बीस तीखे बाणोंसे लक्ष्मीनिधिको मारा। तब लक्ष्मीनिधिने अपने धनुषपर अनेकों सुदृढ़ एवं तेज धारवाले बाण चढ़ाये। उनमेंसे चार सायकोंद्वारा उन्होंने सुकेतुके घोड़ोंको मार डाला, एकसे उनकी भयंकर ध्वजाको हँसते-हँसते काट गिराया, एक बाणसे सारथिका मस्तक धड़से अलग करके पृथ्वीपर डाल दिया, एकके द्वारा उन्होंने रोषमें भरकर प्रत्यंचासहित सुकेतुके धनुषको काट डाला तथा एक बाणसे उनकी छातीमें बड़े वेगसे प्रहार किया। लक्ष्मीनिधिके इस अद्भुत कर्मको देखकर समस्त वीरोंको बड़ा विस्मय हुआ।

धनुष, रथ, घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर सुकेतु बहुत बड़ी गदा हाथमें लेकर युद्धके लिये आगे बढ़े। गदायुद्धमें कुशल शत्रुको विशाल गदा लिये आते देख लक्ष्मीनिधि भी लोहेकी बनी हुई भारी गदा लेकर रथसे उतर पड़े और गदायुद्धमें प्रवीण वे दोनों वीर एक-दूसरेको जीतनेके लिये अत्यन्त क्रोधपूर्वक युद्ध करने लगे। उस समय लक्ष्मीनिधिने कुपित होकर गदा ऊपर उठायी और सुकेतुकी छातीपर गहरी चोट पहुँचानेके लिये वे बड़े वेगसे उनकी ओर झपटे; किन्तु महाबली सुकेतुने उनकी चलायी हुई गदाको अपने हाथमें पकड़ लिया और पुनः वही गदा उनकी छातीमें दे मारी। अपनी गदाको शत्रुके हाथमें गयी देख राजा लक्ष्मीनिधिने बाहु-युद्धके द्वारा लड़नेका विचार किया। फिर तो दोनों एक-दूसरेसे गुथ गये, पैरमें पैर, हाथमें हाथ और छातीमें छाती सटाकर बड़े वेगसे युद्ध करने लगे। इस प्रकार एक-दूसरेका वध करनेकी इच्छासे परस्पर भिड़े हुए वे दोनों वीर आपसके बलसे आक्रान्त होकर मूर्च्छित हो गये, यह देखकर हजारों योद्धा विस्मय-विमुग्ध हो उन दोनोंकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'राजा लक्ष्मीनिधि धन्य हैं! तथा महाराज सुबाहुके बलवान् भ्राता सुकेतु भी धन्य हैं!!'

पुष्कलके द्वारा चित्रांगका वध, हनुमान्‌जीके चरण-प्रहारसे सुबाहुका शापोद्धार तथा उनका आत्मसमर्पण

शेषजी कहते हैं—मुने! राजकुमार चित्रांग क्रौंच-व्यूहके कण्ठभागमें रथपर विराजमान था। अनेकों वीरोंसे घिरे हुए होनेके कारण उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वाराहावतारधारी भगवान् विष्णुने जिस प्रकार समुद्रमें प्रवेश किया था, उसी प्रकार उसने भी शत्रुघ्नकी सेनामें प्रवेश किया। उसका धनुष अत्यन्त सुदृढ़ और मेघ-गर्जनाके समान टंकार करनेवाला था। चित्रांगने उसे खींचकर चढ़ाया और करोड़ों शत्रुओंको भस्म करनेवाले तीखे बाणोंका प्रहार आरम्भ किया। उन बाणोंसे समस्त शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण बहुत-से योद्धा धराशायी हो गये। इस प्रकार घोर संग्राम आरम्भ हो जानेपर पुष्कल भी युद्धके लिये गये। चित्रांग और पुष्कल दोनों एक-दूसरेसे भिड़ गये। उस समय उन दोनोंका स्वरूप बड़ा ही मनोहर दिखायी देता था। पुष्कलने सुन्दर भ्रामकास्त्रका प्रयोग करके चित्रांगके दिव्य रथको आकाशमें घुमाना आरम्भ किया। यह एक अद्भुत-सी बात हुई। एक मुहूर्ततक आकाशमें चक्कर लगानेके बाद घोड़ोंसहित वह रथ बड़े कष्टसे स्थिर हुआ और युद्धभूमिमें आकर ठहरा। उस समय चित्रांगने कहा—'पुष्कल! तुमने बड़ा उत्तम पराक्रम दिखाया। श्रेष्ठ योद्धा संग्राममें ऐसे कर्मोंकी बड़ी सराहना करते हैं। तुम घोड़ोंसहित मेरे रथको आकाशमें घुमाते रह गये! किन्तु अब मेरा भी पराक्रम देखो, जिसकी शूरवीर प्रशंसा करते हैं।' ऐसा कहकर चित्रांगने युद्धमें बड़े भयंकर अस्त्रका प्रयोग किया। उस बाणसे आबद्ध होकर पुष्कलका रथ आकाशमें पक्षीकी भाँति घोड़े और सारथिसहित चक्कर लगाने लगा। पुत्रका यह पराक्रम देखकर राजा सुबाहुको बड़ा विस्मय हुआ।

शत्रुवीरोंका दमन करनेवाले पुष्कल जब किसी तरह धरतीपर आकर ठहरे तो उन्होंने घोड़े और सारथिसहित चित्रांगके रथको अपने बाणोंसे नष्ट कर दिया। जब वह रथ टूट गया तो वीर चित्रांग पुनः दूसरे रथपर सवार हुआ; परन्तु पुष्कलने लगे हाथ उसे भी अपने बाणोंसे नष्ट कर डाला। इस प्रकार उस युद्धके मैदानमें वीर पुष्कलने राजकुमार चित्रांगके दस रथ चौपट कर दिये। तब चित्रांग एक विचित्र रथपर सवार होकर पुष्कलके साथ युद्ध करनेके लिये बड़े वेगसे आया। उसने क्रोधमें भरकर पाँच भल्ल हाथमें लिये और महातेजस्वी भरतपुत्रके मस्तकको उनका निशाना बनाया। उन भल्लोंकी चोट खाकर पुष्कल क्रोधसे जल उठे और धनुषपर बाणका सन्धान करके चित्रांगको मार डालनेकी प्रतिज्ञा करते हुए बोले—'चित्रांग! यदि इस बाणसे मैं तुम्हारे प्राण न ले लूँ तो शील और सदाचारसे शोभा पानेवाली सती नारीको कलंकित करनेसे यमराजके वशमें पड़े हुए पापी मनुष्योंको जिस लोककी प्राप्ति होती है, वही मुझे भी मिले! मेरी यह प्रतिज्ञा सत्य हो।' पुष्कलका यह उत्तम वचन सुनकर शत्रुपक्षके वीरोंका नाश करनेवाला बुद्धिमान् वीर चित्रांग हँसकर बोला—'शूरशिरोमणे! प्राणियोंकी मृत्यु सदा और सर्वत्र ही हो सकती है; अतः मुझे अपने मरनेका दुःख नहीं है; किन्तु तुम मेरे वधके लिये जो बाण छोड़ोगे, उसे मैं यदि काट न डालूँ तो उस अवस्थामें मेरी प्रतिज्ञा सुनो—जो मनुष्य तीर्थ-यात्राकी इच्छा रखनेवाले पुरुषका मानसिक उत्साह नष्ट करता है, उसको लगनेवाला पाप मुझे भी लगे; क्योंकि उस दशामें मैं प्रतिज्ञा-भंगका अपराधी समझा जाऊँगा।' इतना कहकर चित्रांग चुप हो गया। उसने अपने धनुषको सँभाला।

पुष्कल बोले—'यदि मैंने निष्कपट भावसे श्रीरामचन्द्रजीके युगल चरणोंकी उपासना की हो तो मेरी बात सच्ची हो जाय। यदि मैं अपनी स्त्रीके सिवा दूसरी किसी स्त्रीका मनमें भी विचार न करता होऊँ तो इस सत्यके प्रभावसे युद्धमें मेरा वचन सत्य हो।' यह कहकर पुष्कलने तुरंत ही अपने धनुषपर एक बाण चढ़ाया, जो कालाग्निके समान तेजस्वी तथा वीरोंके

मस्तकका उच्छेद करनेवाला था। उस बाणको उन्होंने चित्रांगके ऊपर छोड़ दिया। वह बाण छूटता देख बलवान् राजकुमारने भी धनुषपर कालाग्निके समान एक तीक्ष्ण बाण रखा और उससे अपने वधके लिये आते हुए पुष्कलके बाणको काट डाला। उस समय बाणके कट जानेपर पुष्कलकी सेनामें भारी हाहाकार मचा। कटे हुए बाणका पिछला आधा भाग धरतीपर गिर पड़ा; किन्तु पूर्वार्ध भाग, जिसमें बाणका फल (नोंक) जुड़ा हुआ था, आगे बढ़ा। उसने एक ही क्षणमें कमलकी नालके समान चित्रांगका गला काट डाला। राजकुमारका सुन्दर मस्तक किरीट और कुण्डलोंसहित पृथ्वीपर गिर पड़ा और आकाशसे गिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाने लगा। भरतकुमार वीरवर पुष्कलने राजकुमार चित्रांगको भूमिपर पड़ा देख उस क्रौंच-व्यूहके भीतर प्रवेश किया, जो समस्त वीरोंसे सुशोभित हो रहा था।

तदनन्तर अपने पुत्र चित्रांगको प्राणहीन होकर धरतीपर पड़ा देख राजा सुबाहु पुत्रशोकसे अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगे। उस समय राजकुमार विचित्र और दमन अपने-अपने रथपर बैठकर आये और पिताके चरणोंमें प्रणाम करके समयोचित वचन बोले—'राजन्! हमलोगोंके जीते-जी आपके हृदयमें दुःख क्यों हो रहा है। वीर पुरुषोंको तो युद्धमें मृत्यु अत्यन्त अभीष्ट होती है। वह चित्रांग धन्य है, जो वीर-भूमिमें शोभा पा रहा है। महामते! आप शोक छोड़िये, दुःखसे इतने आतुर क्यों हो रहे हैं? माल्यवर! हम दोनोंको युद्धके लिये आज्ञा दीजिये और स्वयं भी युद्धमें मन लगाइये।' अपनी वीरतापर गर्व करनेवाले दोनों पुत्रोंका यह वचन सुनकर महाराजने शोक छोड़ दिया और युद्धके लिये निश्चय किया। साथ ही संग्राममें उन्मत्त होकर लड़नेवाले वे दोनों भाई विचित्र और दमन भी अपने समान योद्धाकी अभिलाषा करते हुए असंख्य सैनिकोंसे भरी हुई शत्रुकी सेनामें घुस गये। दमनने रिपुतापके और विचित्रने नीलरत्नके साथ लोहा लिया। वे दोनों वीर रणभूमिमें उत्साहपूर्वक युद्ध करने लगे। स्वयं राजा सुबाहु सुवर्णजटित रथपर सवार हो करोड़ों वीरोंसे घिरे हुए शत्रुघ्नके साथ युद्ध करनेके लिये चले। सुबाहुको पुत्रवधके कारण रोषमें भरकर युद्धके लिये आते और सैनिकोंका नाश करते देखकर शत्रुघ्नके पार्श्वभागकी रक्षा करनेवाले हनुमानजी उनकी ओर दौड़े। नख ही उनके आयुध थे और वे युद्धमें मेघकी भाँति विकट गर्जना कर रहे थे। उस समय सुबाहुने दस बाणोंसे हनुमानजीकी छातीमें बड़े वेगसे चोट की। परन्तु हनुमानजी बड़े भयंकर वीर थे। उन्होंने सुबाहुके छोड़े हुए सभी बाण अपने हाथसे पकड़ लिये और उन्हें तिल-तिल करके तोड़ डाला। वे महान् बलवान् तो थे ही; राजाके रथको अपनी पूँछमें लपेटकर वेगपूर्वक खींच ले चले। उन्हें रथ लेकर जाते देख नृपश्रेष्ठ सुबाहु आकाशमें ही खड़े हो गये और तीखी नोकवाले सायकोंसे उनकी पूँछ, मुख, हृदय, बाहु और चरणोंमें बारम्बार चोट पहुँचाने लगे। तब कपिवर हनुमानजीको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने वेगसे उछलकर उत्तम योद्धाओंसे सुशोभित राजा सुबाहुकी छातीमें लात मारी। राजा उनके चरण-प्रहारसे मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़े और मुखसे गरम-गरम रक्त वमन करने लगे। उस समय वे ज़ोर-ज़ोरसे साँस लेते हुए काँप रहे थे। मूर्च्छावस्थामें ही राजाने एक स्वप्न देखा—'अयोध्यापुरीमें सरयूके तटपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यज्ञ-मण्डपके भीतर विराजमान हैं। यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ अनेक ब्राह्मण उन्हें घेरकर बैठे हुए हैं। ब्रह्मा आदि देवता और करोड़ों ब्रह्माण्डके प्राणी हाथ जोड़े खड़े हैं तथा बारम्बार भगवान्की स्तुति कर रहे हैं। भगवान् श्रीरामका विग्रह श्याम रंगका है, उनके नेत्र सुन्दर हैं। उन्होंने अपने हाथमें मृगका सींग धारण कर रखा है। नारद आदि देवर्षिगण हाथोंसे वीणा बजाते हुए उनका सुयश गान कर रहे हैं। चारों वेद मूर्तिमान् होकर रघुनाथजीकी उपासना करते हैं। संसारमें जो कुछ भी सुन्दर वस्तुएँ हैं, उन सबके दाता पूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीराम ही हैं।'

इस प्रकार स्वप्न देखते-देखते वे जाग उठे, उन्हें चेत हो आया। फिर तो वे शत्रुघ्नजीके चरणोंकी ओर

पैदल ही चल दिये। धर्मज्ञ महाराजने युद्धके लिये उद्यत हुए सुकेतु, विचित्र और दमनको बुलाकर लड़नेसे रोका और कहा—"अब शीघ्र ही युद्ध बंद करो, दमन! यह बहुत बड़ा अन्याय हुआ, जो तुमने भगवान् श्रीरामके तेजस्वी अश्वको पकड़ लिया। ये श्रीरामचन्द्रजी कार्य और कारणसे परे साक्षात् परब्रह्म हैं, चराचर जगत्के स्वामी हैं, मानव-शरीर धारण करनेपर भी ये वास्तवमें मनुष्य नहीं हैं। इन्हें इस रूपमें जान लेना ही ब्रह्मज्ञान है। इस तत्त्वको मैं अभी समझ पाया हूँ। मेरे पापहीन पुत्रो! पूर्वकालमें असितांगमुनिके शापसे मेरा ज्ञानरूपी धन नष्ट हो गया था। [वह प्रसंग मैं सुना रहा हूँ—] प्राचीन समयकी बात है, मैं तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे तीर्थयात्राके लिये निकला था। उस यात्रामें मुझे अनेकों धर्मज्ञ ऋषि-महर्षियोंके दर्शन हुए। एक दिन ज्ञान-प्राप्तिकी इच्छासे मैं असितांगमुनिकी सेवामें गया। उस समय उन ब्रह्मर्षिने मेरे ऊपर कृपा करके इस प्रकार उपदेश देना आरम्भ किया—'ये जो अयोध्यापुरीके स्वामी महाराज श्रीरामचन्द्रजी हैं, उन्हींका नाम परब्रह्म है तथा जो उनकी धर्मपत्नी जनककिशोरी भगवती सीता हैं, वे भगवान्‌की साक्षात् चिन्मयी शक्ति मानी गयी हैं। दुस्तर एवं अपार संसार-सागरसे पार जानेकी इच्छा रखनेवाले योगीजन यम-नियम आदि साधनोंके द्वारा साक्षात् श्रीरघुनाथजीकी ही उपासना करते हैं। वे ही ध्वजामें गरुड़का चिह्न धारण करनेवाले भगवान् नारायण हैं। स्मरण करनेमात्रसे ही वे बड़े-बड़े पापोंको हर लेते हैं। जो विद्वान् उनकी उपासना करेगा, वह इस संसार-समुद्रसे तर जायगा।' मुनिकी बात सुनकर मैंने उनका उपहास करते हुए कहा—'राम कौन बड़े शक्तिशाली हैं। ये तो एक साधारण मनुष्य हैं! इसी प्रकार हर्ष और शोकमें डूबी हुई ये जानकीदेवी भी क्या चीज हैं? जो अजन्मा है, उसका जन्म कैसा? तथा जो अकर्ता है, उसके लिये संसारमें आनेका क्या प्रयोजन है? मुने! मुझे तो आप उस तत्त्वका उपदेश दीजिये, जो जन्म, दुःख और जरावस्थासे परे हो।' मेरे ऐसा कहनेपर उन विद्वान् मुनीश्वरने मुझे शाप दे दिया। वे बोले—'ओ नीच! तू श्रीरघुनाथजीके स्वरूपको नहीं जानता तो भी मेरे कथनका प्रतिवाद कर रहा है, इन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी निन्दा करता है और 'ये साधारण मनुष्य हैं' ऐसा कहकर उनका उपहास कर रहा है; इसलिये तू तत्त्वज्ञानसे शून्य होकर केवल पेट पालनेमें लगा रहेगा।' यह सुनकर मैंने महर्षिके चरण पकड़ लिये और अपने प्रति उनके हृदयमें दयाका संचार किया। वे करुणाके सागर थे, मेरी प्रार्थनासे पिघल गये और बोले—'राजन्! जब तुम श्रीरघुनाथजीके यज्ञमें विघ्न डालोगे और हनुमान्‌जी वेगपूर्वक तुम्हारे ऊपर चरण-प्रहार करेंगे, उसी समय तुम्हें भगवान् श्रीरामके स्वरूपका ज्ञान होगा; अन्यथा अपनी बुद्धिसे तुम उन्हें नहीं जान सकोगे।' मुनिवर असितांगने पहले ही जो बात बतायी थी, उसका इस समय मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। अतः अब मेरे महाबली सैनिक रघुनाथजीके शोभायमान अश्वको ले आवें। इसके साथ ही मैं बहुत-सा धन-वस्त्र तथा यह राज्य भी भगवान्‌को अर्पण कर दूँगा। वह यज्ञ अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाला है। उसमें श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके मैं कृतार्थ हो जाऊँगा, इसलिये घोड़ेसहित अपना सर्वस्व समर्पण कर देना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है।"

उत्तम रीतिसे युद्ध करनेवाले सुबाहुपुत्रोंने पिताकी बात सुनकर बड़ा हर्ष प्रकट किया। वे महाराज सुबाहुको श्रीरघुनाथजीके दर्शनके लिये उत्कण्ठित देखकर उनसे बोले—'राजन्! हमलोग आपके चरणोंके सिवा और कुछ नहीं जानते, अतः आपके हृदयमें जो शुभ संकल्प प्रकट हुआ है, वह शीघ्र ही पूर्ण होना चाहिये। सफेद चँवरसे सुशोभित, रत्न और माला आदिकी शोभासे सम्पन्न तथा चन्दन आदिके द्वारा चर्चित यह यज्ञसम्बन्धी अश्व शत्रुघ्नजीके पास ले जाइये। आपकी आज्ञाके अनुसार उपयोग होनेमें ही इस राज्यकी सार्थकता है। स्वामिन्! प्रचुर समृद्धियोंसे भरे हुए कोष, हाथी, घोड़े, वस्त्र, रत्न, मोती तथा मूँगे आदि द्रव्य लाखोंकी संख्यामें प्रस्तुत हैं। इनके सिवा और भी जो-जो महान् अभ्युदयकी वस्तुएँ हैं, उन सबको

श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें समर्पित कीजिये। महामते! हम सभी पुत्र आपके किंकर हैं, हमें भी भगवान्‌की सेवामें अर्पण कीजिये।'

पुत्रोंके ये वचन सुनकर महाराज सुबाहुको बड़ा हर्ष हुआ। वे आज्ञा-पालनके लिये उद्यत हुए अपने वीर पुत्रोंसे इस प्रकार बोले—'तुम सब लोग हाथोंमें हथियार ले नाना प्रकारके रथोंसे घिरकर कवच आदिसे सुसज्जित हो घोड़ेको यहाँ ले आओ। तत्पश्चात् मैं राजा शत्रुघ्नके पास चलूँगा।'

शेषजी कहते हैं—राजा सुबाहुके वचन सुनकर विचित्र, दमन, सुकेतु तथा अन्यान्य शूरवीर उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये उद्यत हो नगरमें गये और उस मनोहर अश्वको, जो सफेद चँवरसे संयुक्त और स्वर्णपत्र आदिसे अलंकृत था, राजाके सामने ले आये। रत्नमाला आदिसे विभूषित और मनके समान वेगवान् उस अश्वमेध यज्ञके घोड़ेको लाया गया देख बुद्धिमान् राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ परम धार्मिक शत्रुघ्नजीके समीप पैदल ही चले। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि 'यह धन नश्वर है, जो लोग

इसमें आसक्त होते हैं; उन्हें यह दुःख ही देता है।' यही सोचकर वे विनाशकी ओर जानेवाले धनका सदुपयोग करनेके लिये वहाँसे चले। निकट जाकर उन्होंने देखा—शत्रुघ्नजी श्वेतछत्रसे सुशोभित हैं तथा मन्त्री सुमतिसे भगवान् श्रीरामकी कथावार्ता पूछ रहे हैं। भयकी बात तो उन्हें छू भी नहीं सकी थी। वे वीरोचित शोभासे उद्दीप्त हो रहे थे।

उनका दर्शन करके पुत्रसहित राजा सुबाहुने शत्रुघ्नजीके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त हर्षमें भरकर कहा—'मैं धन्य हो गया।' उस समय उनका मन एकमात्र श्रीरघुनाथजीके चिन्तनमें लगा हुआ था। शत्रुघ्नने देखा ये उद्भट राजा सुबाहु मेरे प्रेमी होकर मिलने आये हैं, तो वे आसनसे उठ खड़े हुए और सबके साथ बाँहें पसारकर मिले। विपक्षी वीरोंका नाश करनेवाले राजा सुबाहुने शत्रुघ्नजीका भलीभाँति पूजन करके अत्यन्त हर्ष प्राप्त किया और गद्गद स्वरसे कहा—'करुणानिधे! आज मैं पुत्र, कुटुम्ब और वाहनसहित धन्य हो गया; क्योंकि इस समय मुझे करोड़ों राजाओंद्वारा अभिवन्दित आपके चरणोंका दर्शन हो रहा है। मेरा पुत्र दमन अभी नादान है, इसीलिये इसने इस श्रेष्ठ अश्वको पकड़ लिया है; आप इसके अनीतिपूर्ण बर्तावको क्षमा कीजिये। जो सम्पूर्ण देवताओंके भी देवता हैं तथा जो लीलासे ही इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, उन रघुवंशशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीको यह नहीं जानता, इसीसे इसके द्वारा यह अपराध हो गया है। हमारे इस राज्यका प्रत्येक अंग समृद्धिशाली है। सेना और सवारियोंकी संख्या भी बहुत बड़ी-चढ़ी है। ये सब श्रीरामकी सेवामें समर्पित हैं। ये मेरे पुत्र और हम भी आपहीके हैं। हम सब लोगोंके स्वामी भगवान् श्रीराम ही हैं। हम आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करेंगे। मेरी दी हुई ये सभी वस्तुएँ स्वीकार करके इन्हें सफल बनाइये। मेरे पास कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो ग्रहण करनेके योग्य न हो। श्रीरामजीके चरणारविन्दोंके मधुकर हनुमानजी कहाँ हैं? उन्हींकी कृपासे मैं राजाधिराज भगवान् रामका दर्शन

करूँगा। साधुओंका संग हो जानेपर इस पृथ्वीपर क्या-क्या नहीं मिल जाता! मैं महामूढ़ था; किन्तु संतके प्रसादसे ही आज मेरा ब्रह्मशापसे उद्धार हुआ है। अब मैं पद्मपत्रके समान विशाल लोचनोंवाले महाराज श्रीरघुनाथजीका दर्शन करके इस लोकमें जन्म लेनेका सम्पूर्ण एवं दुर्लभ फल प्राप्त करूँगा। मेरी आयुका बहुत बड़ा भाग श्रीरामके वियोगमें ही बीत गया। अब थोड़ी-सी ही आयु शेष रह गयी है; इसमें मैं श्रीरघुनाथजीका कैसे दर्शन करूँगा? मुझे यज्ञकर्ममें कुशल श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन कराइये, जिनके चरणोंकी धूलिसे पवित्र होकर शिला भी मुनिपत्नी हो गयी तथा युद्धमें जिनके मुखारविन्दका अवलोकन करके अनेकों वीर परमपदको प्राप्त हो गये। जो लोग आदरपूर्वक श्रीरघुनाथजीके नाम लेते हैं, वे उसी परम धामको प्राप्त होते हैं, जिसका योगी लोग चिन्तन किया करते हैं। अयोध्याके लोग धन्य हैं, जो अपने नेत्र-पुटोंके द्वारा श्रीरामके मुखकमलका मकरन्द पान करके सुख पाते और महान् अभ्युदयको प्राप्त होते हैं।'

शत्रुघ्नने कहा—राजन्! आप ऐसा क्यों कहते हैं? आप वृद्ध होनेके नाते मेरे पूज्य हैं। आपका यह सारा राज्य राजकुमार दमनके अधिकारमें रहना चाहिये। क्षत्रियोंका कर्तव्य ही ऐसा है, जो युद्धका अवसर उपस्थित कर देता है। सम्पूर्ण राज्य और यह धन—सब मेरी आज्ञासे लौटा ले जाइये। महीपते! जिस प्रकार श्रीरघुनाथजी मेरे लिये मन-वाणीद्वारा सदा ही पूज्य हैं, उसी प्रकार आप भी पूजनीय होंगे। इस घोड़ेके पीछे चलनेके लिये आप भी तैयार हो जाइये।

परम बुद्धिमान् शत्रुघ्नजीका कथन सुनकर सुबाहुने अपने पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। उस समय शत्रुघ्नजीने उनकी बड़ी सराहना की। तदनन्तर वे महारथियोंसे घिरकर रणभूमिमें गये और पुष्कलके हाथसे मरे हुए अपने पुत्रका विधिपूर्वक दाह-संस्कार करके कुछ देरतक शोकमें डूबे रहे; उनका वह शोक साधारण लोगोंकी ही दृष्टिमें था। वास्तवमें तो वे महारथी नरेश तत्त्वज्ञानी थे; अतः श्रीरघुनाथजीका निरन्तर स्मरण करते हुए उन्होंने ज्ञानके द्वारा अपना समस्त शोक दूर कर दिया। फिर अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर रथपर बैठे और विशाल सेनाके साथ महारथियोंको आगे करके शत्रुघ्नके पास आये। राजा शत्रुघ्नने सुबाहुको सम्पूर्ण सेनाके साथ उपस्थित देख घोड़ेकी रक्षाके लिये जानेका विचार किया। सुबाहुके यहाँसे छूटनेपर वह भालपत्रसे चिह्नित अश्व भारतवर्षकी वामावर्त परिक्रमा करता हुआ पूर्वदिशाके अनेकों देशोंमें गया। उन सभी देशोंमें बड़े-बड़े शूरवीरोंद्वारा पूजित भूपाल उस अश्वको प्रणाम करते थे। कोई भी उसे पकड़ता नहीं था। कोई विचित्र-विचित्र वस्त्र, कोई अपना महान् राज्य तथा कोई धन-वैभव या और कोई वस्तु भेंटके लिये लाकर अश्वसहित शत्रुघ्नको प्रणाम करते थे।

तेजःपुरके राजा सत्यवान्‌की जन्मकथा—सत्यवान्‌का शत्रुघ्नको सर्वस्व-समर्पण

शेषजी कहते हैं—मुनिवर! सुवर्णपत्रसे शोभा पानेवाला वह यज्ञसम्बन्धी अश्व पूर्वोक्त देशोंमें भ्रमण करता हुआ तेजःपुरमें गया, जहाँके राजा सत्यवान् सत्यधर्मका आश्रय लेकर प्रजाका पालन करते थे। तदनन्तर शत्रुके नगरका विध्वंस करनेवाले श्रीरघुनाथजीके भाई शत्रुघ्नजी करोड़ों वीरोंसे घिरकर घोड़ेके पीछे-पीछे उस राजाके नगरसे होकर निकले। वह नगर बड़ा रमणीय था। चित्र-विचित्र प्राकार उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। हजारों देव-मन्दिरोंके कारण वह सब ओरसे शोभायमान दिखायी देता था। भगवान् शंकरके मस्तकपर निवास करनेवाली महादेवी भगवती भागीरथी वहाँ प्रवाहित हो रही थीं। उनके तटपर ऋषि-महर्षियोंका समुदाय निवास करता था। तेजःपुरमें रहनेवाले प्रत्येक ब्राह्मणके घरमें जो अग्निहोत्रका धुआँ उठता था, वह पापमें डूबे हुए बड़े-बड़े पातकियोंको भी पवित्र कर देता था। उस नगरको देखकर शत्रुघ्नने सुमतिसे पूछा—

'मन्त्रिवर! यह सामने दिखायी देनेवाला नगर किसका है, जो धर्मपूर्वक पालित होनेके कारण मेरे मनको अपार आनन्द प्रदान करता है?'

सुमतिने कहा—स्वामिन्! यहाँके राजा भगवान् विष्णुके भक्त हैं। आप सावधान होकर उनकी कल्याणमयी कथाओंको सुनें। उनका श्रवण करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्या-जैसे पापसे भी मुक्त हो जाता है। इस नगरके राजाका नाम है सत्यवान्। वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंका रस पान करनेके लिये भ्रमर एवं जीवन्मुक्त हैं। उन्हें यज्ञ और उसके अंगोंका पूर्ण ज्ञान है। वे महान् कर्मठ और प्रजाजनोंके रक्षक हैं। पूर्वकालमें यहाँ ऋतम्भर नामके एक राजा हो गये हैं। उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। उनके कई स्त्रियाँ थीं, परन्तु उनमेंसे किसीके गर्भसे भी राजाको पुत्रकी प्राप्ति नहीं हुई। एक दिन दैववश उनके यहाँ जाबालि नामक मुनि पधारे। राजाने कुशल प्रश्नके पश्चात् उनसे पुत्र उत्पन्न होनेका उपाय पूछा।

ऋतम्भरने कहा—स्वामिन्! मैं सन्तानहीन हूँ; मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये, जो पुत्र उत्पन्न होनेमें सहायक हो। जिसका प्रयोग करनेसे मेरी वंश-परम्पराकी रक्षा करनेवाला एक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो।

राजाकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ जाबालिने कहा—"राजन्! सन्तान-प्राप्तिकी इच्छावाले मनुष्यके लिये तीन प्रकारके उपाय बताये गये हैं—भगवान् विष्णुकी, गौकी अथवा भगवान् शिवकी कृपा; अतः तुम देवस्वरूपा गौकी पूजा करो; क्योंकि उसकी पूँछ, मुँह, सींग तथा पृष्ठभागमें भी देवताओंका निवास है। जो प्रतिदिन अपने घरपर घास आदिके द्वारा गौकी पूजा करता है, उसपर देवता और पितर सदा सन्तुष्ट रहते हैं। जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य प्रतिदिन नियमपूर्वक गौको भोजन देता है, उसके सभी मनोरथ उस सत्य धर्मका अनुष्ठान करनेके कारण पूर्ण हो जाते हैं। यदि घरमें प्यासी हुई गाय बँधी रहे, रजस्वला कन्या अविवाहित हो तथा देवताके विग्रहपर दूसरे दिनका चढ़ाया हुआ निर्माल्य पड़ा रहे तो ये सभी दोष पहलेके किये हुए पुण्यको नष्ट कर डालते हैं। जो मनुष्य घास चरती हुई गौको रोकता है, उसके पूर्वज पितर पतनोन्मुख होकर काँप उठते हैं। जो मूढ़बुद्धि मानव गौको लाठीसे मारता है, उसे हाथसे हीन होकर यमराजके नगरमें जाना पड़ता है।* जो गौके शरीरसे डाँस और मच्छरोंको हटाता है, उसके पूर्वज कृतार्थ होकर अधिक प्रसन्नताके कारण नाच उठते हैं और कहते हैं—'हमारा यह वंशज बड़ा भाग्यवान् है, अपनी गो-सेवाके द्वारा यह हमें तार देगा।'

"इस विषयमें जानकार लोग एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जो धर्मराजके नगरमें राजा जनकके सामने अद्भुत रूपसे घटित हुआ था। एक समयकी बात है, राजा जनकने योगके द्वारा अपने शरीरका परित्याग कर दिया। उस समय उनके पास एक विमान आया, जो क्षुद्र घण्टिकाओंसे शोभा पा रहा था। राजा दिव्य-देहसे विमानपर आरूढ़ होकर चल दिये और उनके त्यागे हुए शरीरको सेवकगण उठा ले गये। राजा जनक धर्मराजकी संयमनीपुरीके निकटवर्ती मार्गसे जा रहे थे। उस समय करोड़ों नरकोंमें जो पापाचारी जीव यातना भोग रहे थे, वे जनकके शरीरकी वायुका स्पर्श पाकर सुखी हो गये। परन्तु जब वे उस स्थानसे आगे निकले तो पापपीड़ित प्राणी उन्हें जाते देख भयभीत होकर जोर-जोरसे चीत्कार करने लगे। वे नहीं चाहते थे कि राजा जनकसे वियोग हो। उन्होंने करुणाजनक वाणीमें कहा—'पुण्यात्मन्! यहाँसे न जाओ। तुम्हारे

*तृषिता गौर्गृहे बद्धा गेहे कन्या रजस्वला। देवतारच्च निर्माल्यं हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥
यो वै गां प्रतिषिध्येत चरन्तीं स्वं तृणं नरः। तस्य पूर्वे च पितरः कम्पन्ते पतनोन्मुखाः॥
यो वै ताडयते यष्ट्या धेनुं मर्त्यो विमूढधीः। धर्मराजस्य नगरे स याति करवर्जितः॥ (३०। २५—२७)

शरीरको छूकर चलनेवाली वायुका स्पर्श पाकर हम यातनापीड़ित प्राणियोंको बड़ा सुख मिल रहा है।'

''राजा बड़े धर्मात्मा थे, उन दुःखी जीवोंकी पुकार सुनकर उनके हृदयमें करुणा भर आयी। वे सोचने लगे—'यदि मेरे रहनेसे इन प्राणियोंको सुख होता है, तो अब मैं इसी नगरमें निवास करूँगा; यही मेरे लिये मनोहर स्वर्ग है।' ऐसा विचार करके राजा जनक दुःखी प्राणियोंको सुख पहुँचानेके लिये वहीं—नरकके दरवाजेपर ही ठहर गये। उस समय उनका हृदय दयासे परिपूर्ण हो रहा था। इतनेहीमें नरकके उस दुःखदायी द्वारपर नाना प्रकार पातकके करनेवाले प्राणियोंको कठोर यातना देते हुए स्वयं धर्मराज उपस्थित हुए। उन्होंने देखा, महान् पुण्यात्मा तथा दयालु राजा जनक विमानपर आरूढ़ हो नरकके दरवाजेपर खड़े हैं। उन्हें देखकर प्रेतराज हँस पड़े और बोले—'राजन्! तुम तो समस्त धर्मात्माओंके शिरोमणि हो, भला तुम यहाँ कैसे आये? यह स्थान तो प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले पापाचारी एवं दुष्टात्मा जीवोंके लिये है। यहाँ तुम्हारे समान पुण्यात्मा पुरुष नहीं आते। यहाँ उन्हीं मनुष्योंका आगमन होता है, जो अन्य प्राणियोंसे द्रोह करते, दूसरोंपर कलंक लगाते तथा औरोंका धन लूट-खसोटकर जीविका चलाते हैं। जो अपनी सेवामें लगी हुई धर्म-परायणा पत्नीको बिना किसी अपराधके त्याग देता है, उसको भी यहाँ आना पड़ता है। जो धनके लालचमें फँसकर मित्रके साथ धोखा करता है, वह मनुष्य यहाँ आकर मेरे हाथसे भयंकर यातना प्राप्त करता है। जो मूढ़चित्त मानव दम्भ, द्वेष अथवा उपहासवश मन, वाणी एवं क्रियाद्वारा कभी भगवान् श्रीरामका स्मरण नहीं करता, उसे बाँधकर मैं नरकोंमें डाल देता हूँ और अच्छी तरह पकाता हूँ। जिन्होंने नरकके कष्टका निवारण करनेवाले रमानाथ भगवान् श्रीविष्णुका स्मरण किया है, वे मेरे स्थानको छोड़कर बहुत शीघ्र वैकुण्ठधामको प्राप्त होते हैं। मनुष्योंके शरीरमें तभीतक पाप ठहर पाता है, जबतक कि वे अपनी जिह्वासे श्रीराम-नामका उच्चारण नहीं करते।* महामते! जो बड़े-बड़े पापोंका आचरण करनेवाले हैं, उन्हीं लोगोंको मेरे दूत यहाँ ले आते हैं। तुम्हारे-जैसे पुण्यात्माओंकी ओर तो वे देख ही नहीं सकते; अतः महाराज! यहाँसे जाओ और अनेक प्रकारके दिव्य भोगोंका उपभोग करो। इस श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर अपने उपार्जित किये हुए पुण्यको भोगो।'

जनकने कहा—'नाथ! मुझे इन दुःखी जीवोंपर दया आती है, अतः इन्हें छोड़कर मैं नहीं जा सकता। मेरे शरीरकी वायुका स्पर्श पाकर इन लोगोंको सुख मिल रहा है। धर्मराज! यदि आप नरकमें पड़े हुए इन सभी प्राणियोंको छोड़ दें, तो मैं पुण्यात्माओंके निवासस्थान स्वर्गको सुखपूर्वक जा सकता हूँ।'

धर्मराज बोले—'राजन्! [यह जो तुम्हारे सामने खड़ा है] इस पापीने अपने मित्रकी पत्नीके साथ, जो इसके ऊपर पूर्ण विश्वास करती थी, बलात्कार किया है; इसलिये मैंने इसे लोहशंकु नामक नरकमें डालकर दस हजार वर्षोंतक पकाया है। इसके पश्चात् इसे सूअरकी योनिमें डालकर अन्तमें मनुष्यके शरीरमें उत्पन्न करना है। मनुष्य-योनिमें यह नपुंसक होगा। इस दूसरे पापीने अनेकों बार बलपूर्वक परायी स्त्रियोंका आलिंगन किया है, इसलिये यह सौ वर्षोंतक रौरव नरकमें पकाया जायगा और यह जो पापी खड़ा है, यह बड़ी नीच बुद्धिका है। इसने दूसरोंका धन चुराकर स्वयं भोगा है; इसलिये इसके दोनों हाथ काटकर मैं इसे पूयशोणित नामक नरकमें पकाऊँगा। इसने सायंकालके समय

* यो रामं मनसा वाचा कर्मणा दम्भतोऽपि वा। द्वेषाद्वा चोपहासाद्वा न स्मरत्येव मूढधीः॥
तं बध्वाहं पुनस्तेषु निक्षिप्य पचामि च। यैः स्मृतो वै रमानाथो नरकक्लेशवारकः॥
ते मत्स्थानं विहायाशु विष्णुधाम प्रयान्ति हि। तावत्पापं मनुष्याणामङ्गेषु नृप तिष्ठति॥
यावद्रामं रसनया न गृह्णाति सुदुर्मतिः॥

[३० । ४८—५१]

भूखसे पीड़ित हो घरपर आये हुए अतिथिका वचनद्वारा भी स्वागत-सत्कार नहीं किया है; अतः इसे अन्धकारसे भरे हुए तामिस्र नामक नरकमें गिराना उचित है। वहाँ भ्रमरोंसे पीड़ित होकर यह सौ वर्षोंतक यातना भोगे। यह पापी उच्च स्वरसे दूसरोंकी निन्दा करते हुए कभी लज्जित नहीं हुआ है तथा उसने भी कान लगा-लगाकर अनेकों बार दूसरोंकी निन्दा सुनी है; अतः ये दोनों पापी अन्धकूपमें पड़कर दुःख-पर-दुःख उठा रहे हैं। यह जो अत्यन्त उद्विग्न दिखायी दे रहा है, मित्रोंसे द्रोह करनेवाला है, इसीलिये इसे रौरव नरकमें पकाया जाता है। नरश्रेष्ठ! इन सभी पापियोंको इनके पापोंका भोग कराकर छुटकारा दूँगा। अतः तुम उत्तम लोकोंमें जाओ; क्योंकि तुमने पुण्य-राशिका उपार्जन किया है।

जनकने पूछा—'धर्मराज! इन दुःखी जीवोंका नरकसे उद्धार कैसे होगा? आप वह उपाय बतावें, जिसका अनुष्ठान करनेसे इन्हें सुख मिले।

धर्मराज बोले—'महाराज! इन्होंने कभी भगवान् विष्णुकी आराधना नहीं की, उनकी कथा नहीं सुनी, फिर इन पापियोंको नरकसे छुटकारा कैसे मिल सकता है! इन्होंने बड़े-बड़े पाप किये हैं तो भी यदि तुम इन्हें छुड़ाना चाहते हो तो अपना पुण्य अर्पण करो। कौन-सा पुण्य? सो मैं बतलाता हूँ। एक दिन प्रातःकाल उठकर तुमने शुद्ध चित्तसे श्रीरघुनाथजीका ध्यान किया था, जिनका नाम महान् पापोंका भी नाश करनेवाला है। नरश्रेष्ठ! उस दिन तुमने जो अकस्मात् 'राम राम' का उच्चारण किया था, उसीका पुण्य इन पापियोंको दे डालो; जिससे इनका नरकसे उद्धार हो जाय।'

जाबालि कहते हैं—महाराज! बुद्धिमान् धर्मराजके उपर्युक्त वचन सुनकर राजा जनकने अपने जीवनभरका कमाया हुआ पुण्य उन पापियोंको दे डाला। उनके संकल्प करते ही नरकमें पड़े हुए जीव तत्काल वहाँसे मुक्त हो गये और दिव्य शरीर धारण करके जनकसे बोले—'राजन्! आपकी कृपासे हमलोग एक ही क्षणमें इस दुःखदायी नरकसे छुटकारा पा गये, अब हम परमधामको जा रहे हैं।' राजा जनक सम्पूर्ण प्राणियों पर दया करनेवाले थे; उन्होंने नरकसे निकले हुए प्राणियोंका सूर्यके समान तेजस्वी रूप देखकर मन-ही-मन बड़े सन्तोषका अनुभव किया। वे सभी प्राणी दयासागर महाराज जनककी प्रशंसा करते हुए दिव्य लोकको चले गये। नरकस्थ प्राणियोंके चले जानेपर राजा जनकने सम्पूर्ण धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ यमराजसे प्रश्न किया।

राजाने कहा—धर्मराज! आपने कहा था कि पाप करनेवाले मनुष्य ही आपके स्थानपर आते हैं, धार्मिक चर्चामें लगे रहनेवाले जीवोंका यहाँ आगमन नहीं होता। ऐसी दशामें मेरा यहाँ किस पापके कारण आना हुआ है? आप धर्मात्मा हैं; इसलिये मेरे पापका समस्त कारण आरम्भसे ही बतावें।

धर्मराज बोले—राजन्! तुम्हारा पुण्य बहुत बड़ा है। इस पृथ्वीपर तुम्हारे समान पुण्य किसीका नहीं है। तुम श्रीरघुनाथजीके युगलचरणारविन्दोंका मकरन्द पान करनेवाले भ्रमर हो। तुम्हारी कीर्तिमयी गंगा मलसे भरे हुए समस्त पापियोंको पवित्र कर देती है। वह अत्यन्त आनन्द प्रदान करनेवाली और दुष्टोंको तारनेवाली है। तथापि तुम्हारा एक छोटा सा पाप भी है, जिसके कारण तुम पुण्यसे भरे होनेपर भी संयमनीपुरीके पास आये हो। एक समयकी बात है—एक गाय कहीं चर रही थी, तुमने पहुँचकर उसके चरनेमें रुकावट डाल दी। उसी पापका यह फल है कि तुम्हें नरकका दरवाजा देखना पड़ा है। इस समय तुम उससे छुटकारा पा गये तथा तुम्हारा पुण्य पहलेसे बहुत बढ़ गया; अतः अपने पुण्यद्वारा उपार्जित नाना प्रकारके उत्तम भोगोंका उपभोग करो। श्रीरघुनाथजी करुणाके सागर हैं। उन्होंने इन दुःखी जीवोंका दुःख दूर करनेके लिये ही संयमनीके उस महामार्गमें तुम-जैसे वैष्णवको भेज दिया है। सुव्रत! यदि तुम इस मार्गसे नहीं आते तो इन बेचारोंका नरकसे उद्धार कैसे होता। महामते! दूसरोंके दुःखसे दुःखी होनेवाले तुम्हारे-जैसे दया-धाम महात्मा आर्त प्राणियोंका दुःख दूर करते ही हैं।

जाबालि कहते हैं—ऐसा कहते हुए यमराजको प्रणाम करके राजा जनक परमधामको चले गये।

इसलिये नृपश्रेष्ठ! तुम गौकी पूजा करो; वह सन्तुष्ट होनेपर तुम्हें शीघ्र ही धर्मपरायण पुत्र देगी।

सुमति कहते हैं—सुमित्रानन्दन! जाबालिके मुँहसे धेनु-पूजाकी बात सुनकर राजा ऋतम्भरने आदरपूर्वक पूछा—'मुने! गौकी किस प्रकार यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये? पूजा करनेसे वह मनुष्यको कैसा बना देती है?' तब जाबालिने विधिके अनुसार धेनु-पूजाका इस प्रकार वर्णन किया—'राजन्! गो-सेवाका व्रत लेनेवाला पुरुष प्रतिदिन गौको चरानेके लिये जंगलमें जाय। गायको यव खिलाकर उसके गोबरमें जो यव आ जायँ, उनका संग्रह करे। पुत्रकी इच्छा रखनेवाले पुरुषके लिये उन्हीं यवोंको भक्षण करनेका विधान है। जब गौ जल पीये तभी उसको भी पवित्र जल पीना चाहिये। जब वह ऊँचे स्थानमें रहे तो उसको उससे नीचे स्थानमें रहना चाहिये, प्रतिदिन गौके शरीरसे डाँस और मच्छरोंको हटावे और स्वयं ही उसके खानेके लिये घास ले आवे। इस प्रकार सेवामें लगे रहनेपर गौ तुम्हें धर्मपरायण पुत्र प्रदान करेगी।'

जाबालि मुनिकी यह बात सुनकर राजा ऋतम्भरने श्रीरघुनाथजीका स्मरण किया और शुद्धचित्त होकर व्रतका पालन आरम्भ किया। वे पहले बताये अनुसार धेनुकी रक्षा करते हुए उसे चरानेके लिये प्रतिदिन महान् वनमें जाया करते थे। श्रीरामचन्द्रजीके नामका स्मरण करना और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगे रहना—यही उनका प्रतिदिनका कार्य था। उनकी सेवासे सन्तुष्ट होकर सुरभिने कहा—'राजन्! तुम अपने हार्दिक अभिप्रायके अनुसार मुझसे कोई वर माँगो, जो तुम्हारे मनको प्रिय लगे।' तब राजा बोले—'देवि! मुझे ऐसा पुत्र दो, जो परम सुन्दर, श्रीरघुनाथजीका भक्त, पिताका सेवक तथा अपने धर्मका पालन करनेवाला हो।' पुत्रकी इच्छा रखनेवाले राजाको मनोवाञ्छित वरदान देकर दयामयी देवी कामधेनु वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं। समय आनेपर राजाको पुत्रकी प्राप्ति हुई, जो परम वैष्णव—श्रीरामचन्द्रजीका सेवक हुआ। पिताने उसका नाम सत्यवान् रखा। सत्यवान् बड़े ही पितृभक्त और इन्द्रके समान पराक्रमी हुए। उनको पुत्रके रूपमें पाकर राजा ऋतम्भरको बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने पुत्रको धार्मिक जानकर राजा हर्षमें मग्न रहते थे। वे राज्यका भार सत्यवान्को ही सौंप स्वयं तपस्याके लिये वनमें चले गये। वहाँ भक्तिपूर्ण हृदयसे भगवान् हृषीकेशकी आराधना करके वे निष्पाप हो गये और शरीरसहित भगवद्धामको प्राप्त हुए।

शत्रुघ्नजी! ऋतम्भरके चले जानेपर राजा सत्यवान्ने भी अपने धर्मके अनुष्ठानसे लोकनाथ श्रीरघुनाथजीको सन्तुष्ट किया। भगवान् रमानाथने प्रसन्न होकर सत्यवान्को अपने चरणकमलोंमें अविचल भक्ति प्रदान की, जो यज्ञ करनेवाले पुरुषोंके लिये करोड़ों पुण्योंके द्वारा भी दुर्लभ है। वे प्रतिदिन सुस्थिर चित्तसे सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली श्रीरघुनाथजीकी कथाका आयोजन करते हैं। उनके हृदयमें सबके प्रति दया भरी हुई है। जो लोग रमानाथ श्रीरघुनाथजीका पूजन नहीं करते, उनको वे इतना कठोर दण्ड देते हैं, जो यमराजके लिये भी भयंकर है। आठ वर्षके बाद अस्सी वर्षकी अवस्था होनेतक सभी मनुष्योंसे वे एकादशीका व्रत कराया करते हैं। तुलसीकी सेवा उन्हें बड़ी प्रिय है। लक्ष्मीपतिके चरणकमलोंमें चढ़ी हुई उत्तम माला उनके गलेसे कभी दूर नहीं होती है [अपनी भक्तिके कारण] वे ऋषियोंके भी पूजनीय हो गये हैं, फिर औरोंके लिये क्यों न होंगे। श्रीरघुनाथजीके स्मरणसे तथा उनके प्रति प्रेम करनेसे राजा सत्यवान्के सारे पाप धुल गये हैं, सम्पूर्ण अमंगल नष्ट हो गये हैं। वे श्रीरामचन्द्रजीके अद्भुत अश्वको पहचानकर यहाँ आयेंगे और तुम्हें अपना यह अकण्टक राज्य समर्पित करेंगे। राजन्! जिसके विषयमें तुमने पूछा था, वह उत्तम प्रसंग मैंने तुमको सुना दिया।

शेषजी कहते हैं—तदनन्तर नाना प्रकारके आश्चर्योंसे युक्त वह यज्ञसम्बन्धी अश्व राजा सत्यवान्के नगरमें प्रविष्ट हुआ। उसे देखकर वहाँकी सारी जनताने राजाके पास जा निवेदन किया—'महाराज! भगवान् श्रीरामका अश्व इस नगरके मध्यसे होकर आ रहा है। शत्रुघ्न उसके रक्षक हैं।' 'राम' यह दो अक्षरोंका

अत्यन्त मनोरम नाम सुनकर सत्यवान्‌के हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी वाणी गद्गद हो गयी। वे कहने लगे—'जिन भगवान् श्रीरामको मैं सदा अपने हृदयमें धारण करता हूँ, मनमें चिन्तन करता हूँ, उन्हींका अश्व शत्रुघ्नजीके साथ मेरे नगरमें आया है। उसके पास श्रीरामके चरणोंकी सेवा करनेवाले हनुमान्‌जी भी होंगे, जो कभी भी श्रीरघुनाथजीको अपने मनसे नहीं बिसारते। जहाँ शत्रुघ्न हैं, जहाँ वायुनन्दन हनुमान्‌जी हैं तथा जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंकी सेवामें रहनेवाले अन्य लोग मौजूद हैं, वहाँ मैं भी जाता हूँ।' उन्होंने मन्त्रीको आज्ञा दी—'तुम समूचे राज्यका बहुमूल्य धन लेकर शीघ्र ही मेरे साथ आओ। मैं श्रीरघुनाथजीके श्रेष्ठ अश्वकी रक्षा अथवा श्रीरामचरणोंकी सुदुर्लभ सेवा करनेके लिये जाऊँगा।' यह कहकर वे सैनिकोंके साथ शत्रुघ्नके पास चल दिये। इतनेहीमें श्रीरामके छोटे भाई शत्रुघ्न भी राजधानीमें आ पहुँचे। राजा सत्यवान् मन्त्रियोंके साथ उनके पास आये और चरणोंमें पड़कर उन्हें अपना समृद्धिशाली राज्य अर्पण कर दिया। शत्रुघ्नने राजा सत्यवान्‌को श्रीरामभक्त जानकर उनका विशाल राज्य उन्हींके पुत्रको, जिसका नाम रुक्म था, दे दिया। सत्यवान् हनुमान्‌जीसे मिलनेके पश्चात् श्रीरामसेवक सुबाहुसे मिले तथा और भी जितने राम-भक्त वहाँ पधारे थे, उन सबको हृदयसे लगाकर उन्होंने अपने-आपको कृतार्थ माना। फिर शत्रुघ्नजीके साथ होकर वे मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। इतनेहीमें वीर पुरुषोंद्वारा सुरक्षित वह अश्व दूर निकल गया; अतः शूरवीरोंसे घिरे हुए शत्रुघ्नजी भी राजा सत्यवान्‌को साथ लेकर वहाँसे चल दिये।

शत्रुघ्नके द्वारा विद्युन्माली और उग्रदंष्ट्रका वध तथा उसके द्वारा चुराये हुए अश्वकी प्राप्ति

शेषजी कहते हैं—मुनिवर! रथियोंमें श्रेष्ठ शत्रुघ्न आदि बहुसंख्यक राजे-महाराजे करोड़ों रथोंके साथ चले जा रहे थे, इसी समय उस मार्गपर सहसा अत्यन्त भयंकर अन्धकार छा गया; जिसमें बुद्धिमान् पुरुषोंको भी अपने या परायेकी पहचान नहीं हो पाती थी। तदनन्तर पातालनिवासी विद्युन्माली नामक राक्षस निशाचरोंके समुदायसे घिरा हुआ वहाँ आया। वह रावणका हितैषी सुहृद् था। उसने घोड़ेको चुरा लिया। फिर तो दो ही घड़ीके पश्चात् वह सारा अन्धकार नष्ट हो गया। आकाश स्वच्छ दिखायी देने लगा। शत्रुघ्न आदि वीरोंने एक-दूसरेसे पूछा—'घोड़ा कहाँ है?' उस अश्वराजके विषयमें परस्पर पूछ-ताछ करते हुए वे सब लोग कहने लगे—'अश्वमेधका अश्व कहाँ है? किस दुर्बुद्धिने उसका अपहरण किया है?' वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि राक्षसराज विद्युन्माली अपने समस्त योद्धाओंके साथ दिखायी दिया। उसके योद्धा रथपर विराजमान हो अपने शौर्यसे शोभा पा रहे थे। विद्युन्माली स्वयं एक श्रेष्ठ विमानपर बैठा था और प्रधान-प्रधान राक्षस उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े थे। उन राक्षसोंके मुख दूषित एवं विकराल थे, दाढ़ें लम्बी थीं और आकृति बड़ी भयानक थी। वे ऐसे दिखायी दे रहे थे, मानो शत्रुघ्नकी सेनाको निगल जानेके लिये तैयार हों। तब सैनिकोंने राजाओंमें श्रेष्ठ शत्रुघ्नसे निवेदन किया—'राजन्! एक राक्षसने घोड़ेको पकड़ लिया है, अब आपको जैसा उचित जान पड़े वैसा कीजिये।' उनकी बात सुनकर शत्रुघ्न अत्यन्त रोषमें भर गये और बोले—'कौन ऐसा पराक्रमी राक्षस है, जिसने मेरे घोड़ेको पकड़ रखा है?' फिर वे मन्त्रीसे बोले—'मन्त्रिवर! बताओ, इस राक्षससे लोहा लेनेके लिये किन-किन वीरोंको नियुक्त करना चाहिये, जो उसका वध करनेके लिये उत्साह रखनेवाले, अत्यन्त शूर, महान् शस्त्र धारण करनेवाले तथा प्रधान अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हों।'

सुमतिने कहा—हमारी सेनामें कुमार पुष्कल महान् वीर, अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता और शत्रुओंको ताप देनेवाले हैं; अतः ये ही विजयके लिये उद्यत हो युद्धमें उस राक्षसको जीतनेके लिये जायँ। इनके सिवा

लक्ष्मीनिधि, हनुमान्‌जी तथा अन्य योद्धा भी युद्धके लिये प्रस्थित हों। वीरोंमें अग्रगण्य अमात्य सुमतिके ऐसा कहनेपर शत्रुघ्नने संग्रामकुशल वीर योद्धाओंसे कहा—'सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंमें प्रवीण पुष्कल आदि जो-जो वीर यहाँ उपस्थित हैं, वे राक्षसको मारनेके विषयमें मेरे सामने कोई प्रतिज्ञा करें।'

पुष्कल बोले—राजन्! मेरी प्रतिज्ञा सुनिये, मैं अपने पराक्रमके भरोसे सब लोगोंके सुनते हुए यह अद्‌भुत प्रतिज्ञा कर रहा हूँ। यदि मैं अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी तीखी धारसे उस दैत्यको मूर्च्छित न कर दूँ—मुखपर खाल छितरावें यदि वह धरतीपर न पड़ जाय, यदि उसके महाबली सैनिक मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर धराशायी न हो जायँ तथा यदि मैं अपनी बात सच्ची करके न दिखा सकूँ तो मुझे वही पाप लगे, जो विष्णु और शिवमें तथा शिव और शक्तिमें भेद दृष्टि रखनेवालेको लगता है। श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंमें मेरी निश्चल भक्ति है, वही मेरी कही हुई सब बातें सत्य करेगी।

पुष्कलकी प्रतिज्ञा सुनकर युद्धकुशल हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका स्मरण करते हुए यह कल्याणमय वचन कहा—'योगीजन अपने हृदयमें नित्य-निरन्तर जिनका ध्यान किया करते हैं, देवता और असुर भी अपना मुकुटमण्डित मस्तक झुकाकर जिनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं तथा बड़े-बड़े लोकेश्वर जिनकी पूजा करते हैं, वे अयोध्याके अधिनायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं। मैं उनका स्मरण करके जो कुछ कहता हूँ, वह सब सत्य होगा। राजन्! अपनी इच्छाके अनुसार चलनेवाले विमानपर बैठा हुआ यह दुर्बल एवं तुच्छ दैत्य किस गिनतीमें है! शीघ्र आज्ञा दीजिये, मैं अकेला ही इसे मार गिराऊँगा। राजा श्रीरघुनाथजी तथा महारानी जनककिशोरीकी कृपासे इस पृथ्वीपर कोई ऐसा कार्य नहीं है, जो मेरे लिये कभी भी असाध्य हो। यदि मेरी कही हुई यह बात झूठी हो तो मैं तत्काल श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिसे दूर हो जाऊँ। यदि मैं अपनी बात झूठी कर दूँ, तो मुझे वही पाप लगे, जो काममोहित शूद्रको मोहवश ब्राह्मणीके साथ समागम करनेसे लगता है। जिसको सूँघनेसे मनुष्य नरकमें पड़ता है, जिसका स्पर्श करनेसे रौरव नरककी यातना भोगनी पड़ती है, उस मदिराको जो पुरुष जिह्वाके स्वादके वशीभूत होकर लोलुपतावश पान करता है, उसको जो पाप होता है वह मुझे ही लगे, यदि मैं श्रीरामजीकी कृपाके बलसे अपनी प्रतिज्ञाको सत्य न कर सकूँ तो निश्चय ही उपर्युक्त पापोंका भागी होऊँ।'

उनके ऐसा कहनेपर दूसरे-दूसरे महावीर योद्धाओंने आवेशमें आकर अपने-अपने पराक्रमसे शोभा पानेवाली बड़ी-बड़ी प्रतिज्ञाएँ कीं। उस समय शत्रुघ्नने भी उन युद्धविशारद वीरोंको साधुवाद देकर उनकी प्रशंसा की और सबके देखते-देखते प्रतिज्ञा करते हुए कहा—'वीरो! अब मैं तुमलोगोंके सामने अपनी प्रतिज्ञा बता रहा हूँ। यदि मैं उसके मस्तकको अपने सायकोंसे काटकर, छिन्न-भिन्न करके धड़ और विमानसे नीचे पृथ्वीपर न गिरा दूँ। तो आज निश्चय ही मुझे वह पाप लगे, जो झूठी गवाही देने, सुवर्ण चुराने और ब्राह्मणकी निन्दा करनेमें लगता है।'

शत्रुघ्नके ये वचन सुनकर वीर-पूजित योद्धा कहने लगे—'श्रीरघुनाथजीके अनुज! आप धन्य हैं। आपके सिवा दूसरा कौन ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है। यह दुष्ट राक्षस क्या चीज है! इसका तुच्छ बल किस गिनतीमें है! महामते! आप एक ही क्षणमें इसका नाश कर डालेंगे।' ऐसा कहकर वे महावीर योद्धा अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो गये और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये युद्धके मैदानमें उस राक्षसकी ओर प्रसन्नतापूर्वक चले। वह इच्छानुसार चलनेवाले विमानपर बैठा था। पुष्कल आदि वीरोंको उपस्थित देख उस राक्षसने कहा—'अरे! राम कहाँ है? मेरे सखा रावणको मारकर वह कहाँ चला गया है? आज उसको और उसके भाईको भी मारकर उन दोनोंके कण्ठसे निकलती हुई रक्तकी धाराका पान करूँगा और इस प्रकार रावण-वधका बदला चुकाऊँगा।'

पुष्कलने कहा—दुर्बुद्धि निशाचर! क्यों इतनी

शेखी बघार रहा है? अच्छे योद्धा संग्राममें डींग नहीं हाँकते, अपने अस्त्र-शस्त्रोंको वर्षा करके पराक्रम दिखाते हैं। जिन्होंने सुहृद्, सेना और सवारियोंसहित रावणका संहार किया है, उन भगवान् श्रीरामके अश्वको लेकर तू कहाँ जा सकता है?

शेषजी कहते हैं—युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले वीर पुष्कलको ऐसी बातें करते देख राक्षसराज विद्युन्मालीने उनकी छातीको लक्ष्य करके बड़े वेगसे शक्तिका प्रहार किया। उसे आती देख पुष्कलने तेज धारवाले तीखे बाणोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले तथा अपने धनुषपर बहुत से बाणोंका सन्धान किया, जो बड़े ही तीक्ष्ण और मनके समान वेगशाली थे। वे बाण राक्षसकी छातीमें लगकर तुरंत ही रक्तकी धारा बहाने लगे; पुष्कलके बाणप्रहारसे राक्षसपर मोह छा गया, उसके मस्तिष्कमें चक्कर आने लगा तथा वह अचेत होकर अपने कामग विमानसे धरतीपर गिर पड़ा। विद्युन्मालीका छोटा भाई उग्रदंष्ट्र वहाँ मौजूद था। उसने अपने बड़े भाईको जब गिरते देखा तो उसे पकड़ लिया और पुनः विमानके भीतर ही पहुँचा दिया; क्योंकि विमानके बाहर उसे शत्रुकी ओरसे अनिष्ट प्राप्त होनेकी आशंका थी। उसने बलवानोंमें श्रेष्ठ पुष्कलसे बड़े रोषके साथ कहा—'दुर्मते! मेरे भाईको गिराकर अब तू कहाँ जायगा।' पुष्कलके नेत्र भी क्रोधसे लाल हो उठे थे। उग्रदंष्ट्र उपर्युक्त बातें कह ही रहा था कि उन्होंने दस बाणोंसे उस दुष्टकी छातीमें वेगपूर्वक प्रहार किया। उनकी चोटसे व्यथित होकर दैत्यने एक जलता हुआ त्रिशूल हाथमें लिया, जिससे अग्निकी तीन शिखाएँ उठ रही थीं। महावीर पुष्कलके हृदयमें वह भयंकर त्रिशूल लगा और वे गहरी मूर्च्छाको प्राप्त हो रथपर गिर पड़े। पुष्कलको मूर्च्छित जानकर पवननन्दन हनुमान्‌जी मन-ही-मन क्रोधसे अस्थिर हो उठे और उस राक्षससे बोले—'दुर्बुद्धे! मैं युद्धके लिये उपस्थित हूँ, मेरे रहते तू कहाँ जा सकता है? तू घोड़ेका चोर है और सामने आ गया है; अतः मैं लातोंसे मारकर तेरे प्राण ले लूँगा।' ऐसा कहकर हनुमान्‌जी आकाशमें स्थित हो गये और विमानपर बैठे हुए शत्रुपक्षके योद्धा महान् दैत्योंको नखोंसे विदीर्ण करके मौतके घाट उतारने लगे। किन्हींको पूँछसे मार डाला, किन्हींको पैरोंसे कुचल डाला तथा कितनोंको उन्होंने दोनों हाथोंसे चीर डाला। जहाँ-जहाँ वह विमान जाता था, वहीं-वहीं वायुनन्दन हनुमान्‌जी इच्छानुसार रूप धारण करके प्रहार करते हुए ही दिखायी देते थे। इस प्रकार जब विमानपर बैठे हुए बड़े-बड़े योद्धा व्याकुल हो गये तब दैत्यराज उग्रदंष्ट्रने हनुमान्‌जीपर आक्रमण किया। उस दुर्बुद्धिने प्रज्वलित अग्निके समान कान्ति धारण करनेवाले अत्यन्त तीखे त्रिशूलसे उनके ऊपर प्रहार किया; परन्तु महाबली हनुमान्‌जीने अपने पास आये हुए उस त्रिशूलको अपने मुँहमें ले लिया। यद्यपि वह सारा-का-सारा लोहेका बना हुआ था, तथापि उसे दाँतोंसे चबाकर उन्होंने चूर्ण कर डाला तथा उस दैत्यको कई तमाचे जड़ दिये। उनके थप्पड़ोंकी मार खाकर राक्षसको बड़ी पीड़ा हुई और उसने सम्पूर्ण लोकोंमें भय उत्पन्न करनेवाली मायाका प्रयोग किया। उस समय चारों ओर घोर अन्धकार छा गया, जिसमें कोई भी दिखायी नहीं देता था। इतने बड़े जनसमुदायमें वहाँ अपना या पराया कोई भी किसीको पहचान नहीं पाता था। चारों ओर नंगे, कुरूप, उग्र एवं भयंकर दैत्य दिखायी देते थे। उनके बाल बिखरे हुए थे और मुख विकराल प्रतीत होते थे। उस समय सब लोग व्याकुल हो गये, सबको एक-दूसरेसे भय होने लगा। सभी यह समझकर कि कोई महान् उत्पात आया हुआ है, वहाँसे भागने लगे। तब महायशस्वी शत्रुघ्नजी रथपर बैठकर वहाँ आये और भगवान् श्रीरामका स्मरण करके उन्होंने अपने धनुषपर बाणोंका सन्धान किया। वे बड़े पराक्रमी थे। उन्होंने मोहनास्त्रके द्वारा राक्षसी मायाका नाश कर दिया और आकाशमें उस असुरको लक्ष्य करके बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी। उस समय सारी दिशाएँ प्रकाशमय हो गयीं, सूर्यके चारों ओर पड़ा हुआ घेरा निवृत्त हो गया। सुवर्णमय पंखसे शोभा पानेवाले लाखों बाण उस राक्षसके विमानपर पड़ने लगे। कुछ ही देरमें वह विमान टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। वह इतना

ऊँचा दिखायी देता था, मानो अमरावतीपुरीका एक भाग ही टूटकर भूतलके एक स्थानमें पड़ा हो। तब उस दैत्यको बड़ा क्रोध हुआ और उसने अपने धनुषपर अनेकों बाणोंका सन्धान किया तथा रामभ्राता शत्रुघ्नको उन बाणोंका निशाना बनाकर बड़ी विकट गर्जना की। शत्रुघ्न बड़े शक्तिशाली थे, उन्होंने अपने धनुषपर वायव्यास्त्रका प्रयोग किया, जो राक्षसोंको कँपा देनेवाला था। उस अस्त्रकी मार खाकर व्योमचारी भूत-बेताल मस्तकके बाल छितराये आकाशसे पृथ्वीपर गिरते दिखायी देने लगे। रामभ्राता शत्रुघ्नके उस अस्त्रको देखकर राक्षसकुमारने अपने धनुषपर पाशुपतास्त्रका प्रयोग किया। समस्त वीरोंका विनाश करनेवाले उस अस्त्रको चारों ओर फैलते देखकर उसका निवारण करनेके लिये शत्रुघ्नने नारायण नामक अस्त्र छोड़ा। नारायणास्त्रने एक ही क्षणमें शत्रुपक्षके सभी अस्त्रोंको शान्त कर दिया। निशाचरोंके छोड़े हुए सभी बाण विलीन हो गये। तब विद्युन्मालीने क्रोधमें भरकर शत्रुघ्नको मारनेके लिये एक तीक्ष्ण एवं भयंकर त्रिशूल हाथमें लिया। उसे शूल हाथमें लिये आते देख शत्रुघ्नने अर्धचन्द्राकार बाणसे उसकी भुजा काट डाली। फिर कुण्डलोंसहित उसके मस्तकको भी खड्गसे अलग कर दिया। भाईका मस्तक कट गया, यह देखकर प्रतापी उग्रदंष्ट्रने शूरवीरोंद्वारा सेवित शत्रुघ्नको मुक्केसे मारना आरम्भ किया। किन्तु शत्रुघ्नने क्षुरप्र नामक सायकसे उसका भी मस्तक उड़ा दिया। तदनन्तर मरनेसे बचे हुए सभी राक्षस अनाथ हो गये; इसलिये उन्होंने शत्रुघ्नके चरणोंमें पड़कर वह यज्ञका घोड़ा उन्हें अर्पण कर दिया। फिर तो विजयके उपलक्ष्यमें वीणा झंकृत होने लगी; सब ओर शंख बज उठे तथा शूरवीरोंका मनोहर विजयनाद सुनायी देने लगा।

शत्रुघ्न आदिका घोड़ेसहित आरण्यक मुनिके आश्रमपर जाना, मुनिकी आत्मकथामें रामायणका वर्णन और अयोध्यामें जाकर उनका श्रीरघुनाथजीके स्वरूपमें मिल जाना

शेषजी कहते हैं—राक्षसोंद्वारा अपहरण किये हुए घोड़ेको पाकर पुष्कलसहित राजा शत्रुघ्नको बड़ा हर्ष हुआ। दुर्जय दैत्य विद्युन्मालीके मारे जानेपर समस्त देवता निर्भय हो गये। उन्हें बड़ा सुख मिला। तदनन्तर शत्रुघ्नने उस उत्तम अश्वको छोड़ा। फिर तो वह उत्तर दिशामें भ्रमण करने लगा। सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंमें प्रवीण श्रेष्ठ रथी, घुड़सवार और पैदल सिपाही उसकी रक्षामें नियुक्त थे। घूमता-घामता वह नर्मदाके तटपर जा पहुँचा; जहाँ बहुत-से ऋषि-महर्षि निवास करते हैं। नर्मदाका जल ऐसा जान पड़ता था, मानो पानीके ब्याजसे नील रत्नोंका रस ही दिखायी दे रहा हो। वहाँ तटपर उन्होंने एक पुरानी पर्णशाला देखी, जो पलाशके पत्तोंसे बनी हुई थी और नर्मदाकी लहरें उसे अपने जलसे सींच रही थीं। शत्रुघ्नजी सम्पूर्ण धर्म, अर्थ, कर्म और कर्तव्यके ज्ञानमें निपुण थे; उन्होंने सर्वज्ञ एवं नीतिकुशल मन्त्री सुमतिसे पूछा—'मन्त्रिवर! बताओ, यह पवित्र आश्रम किसका है?'

सुमतिने कहा—महाराज! यहाँ एक श्रेष्ठ मुनि रहते हैं, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके विद्वान् हैं; इनका दर्शन करके हमलोगोंके समस्त पाप धुल जायँगे। इसलिये तुम इन्हें प्रणाम करके इन्हींसे पूछो। ये तुम्हें सब कुछ बता देंगे। इनका नाम आरण्यक है, ये श्रीरघुनाथजीके चरणोंके सेवक हैं तथा उनके चरणकमलोंके मकरन्दका आस्वादन करनेके लिये सदा लोलुप बने रहते हैं। इन्होंने बड़ी उग्र तपस्या की है और ये समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं।

सुमतिका यह धर्मयुक्त वचन सुनकर शत्रुघ्नजी थोड़े-से सेवकोंको साथ ले मुनिका दर्शन करनेके लिये गये। पास जा उन सभी वीरोंने विनीतभावसे मस्तक झुकाकर तापसोंमें श्रेष्ठ आरण्यक मुनिको नमस्कार किया। मुनिने उन सब लोगोंसे पूछा—'आपलोग कहाँ एकत्रित हुए हैं तथा कैसे यहाँ पधारे हैं? ये सब बातें स्पष्टरूपसे बताइये।'

सुमतिने कहा—मुने! ये सब लोग रघुकुल

नरेशके अश्वकी रक्षा कर रहे हैं। वे इस समय सब सामग्रियोंसे युक्त अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले हैं।

आरण्यक बोले—सब सामग्रियोंको एकत्रित करके भाँति-भाँतिके सुन्दर यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे क्या लाभ? वे तो अत्यन्त अल्प पुण्य प्रदान करनेवाले हैं तथा उनसे क्षणभंगुर फलकी ही प्राप्ति होती है। स्थिर ऐश्वर्यपदको देनेवाले तो एकमात्र रमानाथ भगवान् श्रीरघुवीर ही हैं। जो लोग उन भगवान्‌को छोड़कर दूसरेकी पूजा करते हैं, वे मूर्ख हैं। जो मनुष्योंके स्मरण करनेमात्रसे पहाड़-जैसे पापोंका भी नाश कर डालते हैं, उन भगवान्‌को छोड़कर मूढ़ मनुष्य योग, याग और व्रत आदिके द्वारा क्लेश उठाते हैं। सकाम पुरुष अथवा निष्काम योगी भी जिनका अपने हृदयमें चिन्तन करते हैं तथा जो मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं, वे भगवान् श्रीराम स्मरण करनेमात्रसे सारे पापोंको दूर कर देते हैं।*

पूर्वकालकी बात है, मैं तत्त्वज्ञानकी इच्छासे ज्ञानी गुरुका अनुसन्धान करता हुआ बहुत-से तीर्थोंमें भ्रमण करता रहा; किन्तु किसीने मुझे भी तत्त्वका उपदेश नहीं दिया। उसी समय एक दिन भाग्यवश मुझे लोमश मुनि मिल गये। वे स्वर्गलोकसे तीर्थयात्राके लिये आये थे। उन महर्षिको प्रणाम करके मैंने पूछा—'स्वामिन्! मैं इस अद्भुत और दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर भयंकर भव-सागरके पार जाना चाहता हूँ, ऐसी दशामें मुझे क्या करना चाहिये?' मेरी यह बात सुनकर वे मुनिश्रेष्ठ बोले—'विप्रवर! एकाग्रचित्त होकर पूर्ण श्रद्धाके साथ सुनो, संसार-समुद्रसे तरनेके लिये दान, तीर्थ, व्रत, नियम, यम, योग तथा यज्ञ आदि अनेकों साधन हैं। ये सभी स्वर्ग प्रदान करनेवाले हैं; किन्तु महाभाग! मैं तुमसे एक परम गोपनीय तत्त्वका वर्णन करता हूँ, जो सब पापोंका नाश करनेवाला और संसार-सागरसे पार उतारनेवाला है। नास्तिक और श्रद्धाहीन पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। निन्दक, शठ तथा भक्तिसे द्वेष रखनेवाले पुरुषके लिये भी उस तत्त्वका उपदेश करना मना है। जो काम और क्रोधसे रहित हो, जिसका चित्त शान्त हो तथा जो भगवान् श्रीरामका भक्त हो उसीके सामने इस गूढ़ तत्त्वका वर्णन करना चाहिये। यह समस्त दुःखोंका नाश करनेवाला सर्वोत्तम साधन है। श्रीरामसे बड़ा कोई देवता नहीं, श्रीरामसे बढ़कर कोई व्रत नहीं, श्रीरामसे बड़ा कोई योग नहीं तथा श्रीरामसे बढ़कर कोई यज्ञ नहीं है। श्रीरामका स्मरण, जप और पूजन करके मनुष्य परम पदको प्राप्त होता है। उसे इस लोक और परलोककी उत्तम समृद्धि मिलती है। श्रीरघुनाथजी सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंके दाता हैं। मनके द्वारा स्मरण और ध्यान करनेपर वे अपनी उत्तम भक्ति प्रदान करते हैं, जो संसार-समुद्रसे तारनेवाली है। चाण्डाल भी

*मूढो लोको हरिं त्यक्त्वा करोत्यन्यसमर्चनम्। रघुवीरं रमानाथं स्थिरैश्वर्यपदप्रदम्॥
यो नरैः स्मृतमात्रोऽसौ हरते पापपर्वतम्। तं मुक्त्वा क्लिश्यते मूढो योगयागव्रतादिभिः॥
सकामैर्योगिभिर्वापि चिन्त्यते कामवर्जितैः। अपवर्गप्रदं नृणां स्मृतमात्राखिलार्तिहम्॥ (३५। २१—२३)

श्रीरामका स्मरण करके परमगतिको प्राप्त कर लेता है। फिर तुम्हारे-जैसे वेद-शास्त्रपरायण पुरुषोंके लिये तो कहना ही क्या है? यह सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंका रहस्य है, जिसे मैंने तुमपर प्रकट कर दिया। अब जैसा तुम्हारा विचार हो, वैसा ही करो। एक ही देवता हैं—श्रीराम, एक ही व्रत है—उनका पूजन, एक ही मन्त्र है—उनका नाम, तथा एक ही शास्त्र है—उनकी स्तुति। अतः तुम सब प्रकारसे परममनोहर श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो; इससे तुम्हारे लिये यह महान् संसार-सागर गायके खुरके समान तुच्छ हो जायगा।'[1]

महर्षि लोमशका वचन सुनकर मैंने पुनः प्रश्न किया—'मुनिवर! मनुष्योंको भगवान् श्रीरामका ध्यान और पूजन कैसे करना चाहिये?' यह सुनकर उन्होंने स्वयं श्रीरामका ध्यान करते हुए मुझे सब बातें बतायीं—'साधकको इस प्रकार ध्यान करना चाहिये; रमणीय अयोध्या नगरी परम चित्र-विचित्र मण्डपोंसे शोभा पा रही है। उसके भीतर एक कल्पवृक्ष है, जिसके मूलभागमें परम मनोहर सिंहासन विराजमान है। वह सिंहासन बहुमूल्य मरकतमणि, सुवर्ण तथा नीलमणि आदिसे सुशोभित है और अपनी कान्तिसे गहन अन्धकारका नाश कर रहा है। वह सब प्रकारकी मनोभिलषित समृद्धियोंको देनेवाला है। उसके ऊपर भक्तोंका मन मोहनेवाले श्रीरघुनाथजी बैठे हुए हैं। उनका दिव्य विग्रह दूर्वादलके समान श्याम है, जो देवराज इन्द्रके द्वारा पूजित होता है। भगवान्का सुन्दर मुख अपनी शोभासे राकाके पूर्ण चन्द्रकी कमनीय कान्तिको भी तिरस्कृत कर रहा है। उनका तेजस्वी ललाट अष्टमीके अर्धचन्द्रकी सुषमा धारण करता है। मस्तकपर काले-काले घुँघराले केश शोभा पा रहे हैं। मुकुटकी मणियोंसे उनका मुखमण्डल उद्भासित हो रहा है। कानोंमें पहने हुए मकराकार कुण्डल अपने सौन्दर्यसे भगवान्की शोभा बढ़ा रहे हैं। मूँगेके समान सुन्दर कान्ति धारण करनेवाले लाल-लाल ओठ बड़े मनोहर जान पड़ते हैं। चन्द्रमाकी किरणोंसे होड़ लगानेवाली दन्तपंक्तियों तथा जपा-पुष्पके समान रंगवाली जिह्वाके कारण उनके श्रीमुखका सौन्दर्य और भी बढ़ गया है। शंखके आकारवाला कमनीय कण्ठ, जिसमें ऋक् आदि चारों वेद तथा सम्पूर्ण शास्त्र निवास करते हैं, उनके श्रीविग्रहको सुशोभित कर रहा है। श्रीरघुनाथजी सिंहके समान ऊँचे और मांसल कंधेवाले हैं। वे केयूर एवं कड़ोंसे विभूषित विशाल भुजाएँ धारण किये हुए हैं। उनकी दोनों बाँहें अँगूठोंमें जड़े हुए हीरेकी शोभासे देदीप्यमान और घुटनोंतक लंबी हैं। विस्तृत वक्षःस्थल लक्ष्मीके निवाससे शोभा पा रहा है। श्रीवत्स आदि चिह्नोंसे अंकित होनेके कारण भगवान् अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं। महान् उदर, गहरी नाभि तथा सुन्दर कटिभाग उनकी शोभा बढ़ाते हैं। रत्नोंकी बनी हुई करधनीके कारण श्रीअंगोंकी सुषमा बहुत बढ़ गयी है। निर्मल ऊरु और सुन्दर घुटने भी सौन्दर्यवृद्धिमें सहायक हो रहे हैं। भगवान्के चरण, जिनका योगीलोग ध्यान करते हैं, बड़े कोमल हैं। उनके तलवेमें वज्र, अंकुश और यव आदिकी उत्तम रेखाएँ हैं। उन युगल चरणोंसे श्रीरघुनाथजीके विग्रहकी बड़ी शोभा हो रही है।'[2]

'इस प्रकार ध्यान और स्मरण करके तुम संसार-

१. रामान्नास्ति परो देवो रामान्नास्ति परं व्रतम्। न हि रामात्परो योगो न हि रामात्परो मखः॥
तं स्मृत्वा चैव जप्त्वा च पूजयित्वा नरः पदम्। प्राप्नोति परमामृद्धिमैहिकामुष्मिकीं तथा॥
संस्मृतो मनसा ध्यातः सर्वकामफलप्रदः। ददाति परमां भक्तिं संसाराम्भोधितारिणीम्॥
श्वपाकोऽपि हि संस्मृत्य रामं याति परां गतिम्। ये वेदशास्त्रनिरतास्त्वादृशास्तत्र किं पुनः॥
सर्वेषां वेदशास्त्राणां रहस्यं ते प्रकाशितम्। समाचर तथा त्वं वै यथा स्यात्ते मनीषितम्॥
एको देवो रामचन्द्रो व्रतमेकं तदर्चनम्। मन्त्रोऽप्येकश्च तन्नाम शास्त्रं तद्ध्येव तत्स्तुतिः॥
तस्मात्सर्वात्मना रामचन्द्रं भज मनोहरम्। यथा गोष्पदवत्तुच्छो भवेत्संसारसागरः॥ (३५।४६—५२)

२. अयोध्यानगरे रम्ये चित्रमण्डपशोभिते। ध्यायेत्कल्पतरोर्मूले सर्वकामसमृद्धिदम्॥

सागरसे तर जाओगे। जो मनुष्य प्रतिदिन चन्दन आदि सामग्रियोंसे इच्छानुसार श्रीरामचन्द्रजीका पूजन करता है, उसे इहलोक और परलोकको उत्तम समृद्धि प्राप्त होती है, तुमने श्रीरामके ध्यानका प्रकार पूछा था। सो मैंने तुम्हें बता दिया। इसके अनुसार ध्यान करके भवसागरके पार हो जाओ।'

आरण्यकने कहा—मुनिश्रेष्ठ! मैं आपसे पुनः कुछ प्रश्न करता हूँ, मुझे उनका उत्तर दीजिये। महामते! गुरुजन अपने सेवकपर कृपा करके उन्हें सब बातें बता देते हैं। महाभाग! आप प्रतिदिन जिनका ध्यान करते हैं वे श्रीराम कौन हैं तथा उनके चरित्र कौन-कौन-से हैं? यह बतानेकी कृपा कीजिये। द्विजश्रेष्ठ! श्रीरामने किसलिये अवतार लिया था? वे क्यों मनुष्य-शरीरमें प्रकट हुए थे? आप मेरा सन्देह निवारण करनेके लिये सब बातोंको शीघ्र बताइये।

मुनिके परम कल्याणमय वचन सुनकर महर्षि लोमशने श्रीरामचन्द्रजीके अद्भुत चरित्रका वर्णन किया। वे बोले—'योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान्ने सम्पूर्ण लोकोंको दुःखी जानकर संसारमें अपनी कीर्ति फैलानेका विचार किया। ऐसा करनेका उद्देश्य यह था कि जगत्‌के मनुष्य मेरी कीर्तिका गान करके घोर संसारसे तर जायँगे। यह समझकर भक्तोंका मन लुभानेवाले दयासागर भगवान्ने चार विग्रहोंमें अवतार धारण किया। साथ ही उनकी ह्लादिनी शक्ति लक्ष्मी भी अवतीर्ण हुईं। पूर्वकालमें त्रेतायुग आनेपर सूर्यवंशमें श्रीरघुनाथजीका पूर्णावतार हुआ। उनकी श्रीरामके नामसे प्रसिद्धि हुई। श्रीरामके नेत्र कमलके समान शोभायमान थे। लक्ष्मण सदा उनके साथ रहते थे। धीरे-धीरे उन्होंने यौवनमें प्रवेश किया। तत्पश्चात् पिताकी आज्ञासे दोनों भाई—श्रीराम और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्रके अनुगामी हुए। राजा दशरथने यज्ञकी रक्षाके लिये अपने दोनों कुमारोंको विश्वामित्रके अर्पण कर दिया था। वे दोनों भाई जितेन्द्रिय, धनुर्धर और वीर थे। मार्गमें जाते समय उन्हें भयंकर वनके भीतर ताड़का नामकी राक्षसी मिली। उसने उनके रास्तेमें विघ्न डाला। तब महर्षि विश्वामित्रकी आज्ञासे रघुकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजीने ताड़काको परलोक भेज दिया। गौतम-पत्नी अहल्या, जो इन्द्रके साथ सम्पर्क करनेके कारण पत्थर हो गयी थी, श्रीरामके चरणस्पर्शसे पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त हो गयी। विश्वामित्रका यज्ञ प्रारम्भ होनेपर श्रीरघुनाथजीने अपने श्रेष्ठ बाणोंसे मारीचको घायल किया और सुबाहुको मार डाला। तदनन्तर राजा जनकके भवनमें रखे हुए शंकरजीके धनुषको तोड़ा। उस समय श्रीरामचन्द्रजीकी अवस्था पंद्रह वर्षकी थी। उन्होंने छः वर्षकी अवस्थावाली मिथिलेशकुमारी सीताको, जो परम सुन्दरी और अयोनिजा थीं, वैवाहिक विधिके अनुसार ग्रहण

महारत्नकृतस्वर्णनीलरत्नादिशोभितम् ॥
सितामलं विनाहं कान्त्या तामिस्रनाशनम् । तत्रोपरि समासीनं रघुराजं मनोरमम् ॥
दूर्वादलश्यामतनुं देवं देवेन्द्रपूजितम् । राकायां पूर्णशीतांशुकान्तिधिक्कारिवक्त्रकम् ॥
अष्टमीचन्द्रशकलसमभालाधिधारिणम् । नीलकुन्तलशोभाढ्यं किरीटमणिरञ्जितम् ॥
मकराकारसौन्दर्यकुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥
विद्रुमप्रभसत्कान्तिरदच्छदविराजितम् ।
तारापतिकराकारद्विजराजिसुशोभितम् । जपाकुसुमसंकाश माध्व्या जिह्वया शोभिताननम् ॥
यस्यां वसन्ति निगमा ऋगाद्याः शास्त्रसंयुताः । कम्बुकान्तिधरग्रीवाशोभया समलङ्कृतम् ॥
सिंहवदुच्चकौ स्कन्धौ मांसलौ बिभ्रतं वरम् । बाहू दधानं दीर्घाङ्गौ केयूरकटकाङ्कितौ ॥
मुद्रिकाहीरशोभाभिर्भासितौ जानुलम्बिनौ । वक्षो दधानं विपुलं लक्ष्मीवत्सेन शोभितम् ॥
श्रीवत्सादिविचित्राङ्कैरङ्कितं सुमनोहरम् । महोदरं महानाभिं शुभकट्या विराजितम् ॥
काञ्च्या वै मणिमय्या च विशेषेण विराजितम् । ऊरुभ्यां विमलाभ्यां च जानुभ्यां शोभितं श्रिया ॥
चरणाभ्यां वज्ररेखायवाङ्कुशसुरेखया । युताभ्यां योगिध्येयाभ्यां कोमलाभ्यां विराजितम् ॥ (३५।५७—६९)

किया। इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी बारह वर्षोंतक सीताके साथ रहे। सत्ताईसवें वर्षकी उम्रमें उन्हें युवराज बनानेकी तैयारी हुई। इसी बीचमें रानी कैकेयीने राजा दशरथसे दो वर माँगे। उनमेंसे एकके द्वारा उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि 'श्रीराम मस्तकपर जटा धारण करके चौदह वर्षोंतक वनमें रहें।' तथा दूसरे वरके द्वारा यह माँगा कि 'मेरे पुत्र भरत युवराज बनाये जायँ'. राजा दशरथने श्रीरामको वनवास दे दिया। श्रीरामचन्द्रजी तीन रात्रितक केवल जल पीकर रहे, चौथे दिन उन्होंने फलाहार किया और पाँचवें दिन चित्रकूटपर पहुँचकर अपने लिये रहनेका स्थान बनाया। [इस प्रकार वहाँ बारह वर्ष बीत गये।] तदनन्तर तेरहवें वर्षके आरम्भमें वे पंचवटीमें जाकर रहने लगे। महामुने! वहाँ श्रीरामने [लक्ष्मणके द्वारा] शूर्पणखा नामकी राक्षसीको [उसकी नाक कटाकर] कुरूप बना दिया। तत्पश्चात् वे जानकीके साथ वनमें विचरण करने लगे। इसी बीचमें अपने पापोंका फल उदय होनेपर दस मस्तकोंवाला राक्षसराज रावण सीताको हर ले जानेके लिये वहाँ आया और माघ कृष्णा अष्टमीको वृन्द नामक मुहूर्तमें, जब कि श्रीराम और लक्ष्मण आश्रमपर नहीं थे, उन्हें हर ले गया। उसके द्वारा अपहरण होनेपर देवी सीता कुररीकी भाँति विलाप करने लगीं—'हा राम! हा राम! मुझे राक्षस हरकर लिये जा रहा है, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' रावण कामके अधीन होकर जनककिशोरी सीताको लिये जा रहा था। इतनेहीमें पक्षिराज जटायु वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने राक्षसराज रावणके साथ युद्ध किया, किन्तु स्वयं ही उसके हाथसे मारे जाकर धरतीपर गिर पड़े। इसके बाद दसवें महीनेमें मार्गशीर्ष* शुक्ल नवमीके दिन सम्पातिने वानरोंको इस बातकी सूचना दी कि 'सीता देवी रावणके भवनमें निवास कर रही हैं।'

'फिर एकादशीको हनुमान्‌जी महेन्द्र पर्वतसे उछलकर सौ योजन चौड़ा समुद्र लाँघ गये। उस रातमें वे लंकापुरीके भीतर सीताकी खोज करते रहे। रात्रिके अन्तिम भागमें हनुमान्‌जीको सीताका दर्शन हुआ। द्वादशीके दिन वे शिंशपा नामक वृक्षपर बैठे रहे। उसी दिन रातमें जानकीजीको विश्वास दिलानेके लिये उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुनायी। फिर त्रयोदशीको अक्ष आदिके साथ उनका युद्ध हुआ। चतुर्दशीके दिन इन्द्रजित्‌ने आकर ब्रह्मास्त्रसे उन्हें बाँध लिया। इसके बाद उनकी पूँछमें आग लगा दी गयी और उसी आगके द्वारा उन्होंने लंकापुरीको जला डाला। पूर्णिमाको वे पुनः महेन्द्र पर्वतपर आ गये। फिर मार्गशीर्ष कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर पाँच दिन उन्होंने मार्गमें बिताये। छठे दिन मधुवनमें पहुँचकर उसका विध्वंस किया और सप्तमीको श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँचकर सीताजीका दिया हुआ चिह्न उन्हें अर्पण किया तथा वहाँका सारा समाचार कह सुनाया। तत्पश्चात् अष्टमीको उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र और विजय नामक मुहूर्तमें दोपहरके समय श्रीरघुनाथजीका लंकाके लिये प्रस्थान हुआ। श्रीरामचन्द्रजी यह प्रतिज्ञा करके कि 'मैं समुद्रको लाँघकर राक्षसराज रावणका वध करूँगा', दक्षिण दिशाकी ओर चले। उस समय सुग्रीव उनके सहायक हुए। सात दिनोंके बाद समुद्रके तटपर पहुँचकर उन्होंने सेनाको ठहराया। पौषशुक्ल प्रतिपदासे लेकर तृतीयातक श्रीरघुनाथजी सेनासहित समुद्र-तटपर टिके रहे। चतुर्थीको विभीषण आकर उनसे मिले। फिर पंचमीको समुद्र पार करनेके विषयमें विचार हुआ। इसके बाद श्रीरामने चार दिनोंतक अनशन किया। फिर समुद्रसे वर मिला और उसने पार जानेका उपाय भी दिखा दिया। तदनन्तर दशमीको सेतु बाँधनेका कार्य आरम्भ होकर त्रयोदशीको समाप्त हुआ। चतुर्दशीको श्रीरामने सुवेल पर्वतपर अपनी सेनाको ठहराया। पूर्णिमासे द्वितीयातक तीन दिनोंमें सारी सेना समुद्रके पार हुई। समुद्र पार करके लक्ष्मणसहित श्रीरामने वानरराजकी

* यह गणना शुक्लपक्षसे महीनेका आरम्भ मानकर की गयी है, अतः यहाँ मार्गशीर्ष शुक्लका अर्थ यहाँकी प्रचलित गणनाके अनुसार कार्तिक शुक्लपक्ष समझना चाहिये। तथा इसी प्रकार आगे बतायी जानेवाली अन्य तिथियोंको भी जानना चाहिये।

सेना साथ ले सीताके लिये लंकापुरीको चारों ओरसे घेर लिया। तृतीयासे दशमीपर्यन्त आठ दिनोंतक सेनाका घेरा पड़ा रहा। एकादशीके दिन शुक और सारण सेनामें घुस आये थे। पौषकृष्ण द्वादशीको शार्दूलके द्वारा वानर-सेनाकी गणना हुई। साथ ही उसने प्रधान-प्रधान वानरोंकी शक्तिका भी वर्णन किया। शत्रुसेनाकी संख्या जानकर रावणने त्रयोदशीसे अमावास्यापर्यन्त तीन दिनोंतक लंकापुरीमें अपने सैनिकोंको युद्धके लिये उत्साहित किया। माघशुक्ल प्रतिपदाको अंगद दूत बनकर रावणके दरबारमें गये। उधर रावणने मायाके द्वारा सीताको, उनके पतिके कटे हुए मस्तक आदिका दर्शन कराया। माघकी द्वितीयासे लेकर अष्टमीपर्यन्त सात दिनोंतक राक्षसों और वानरोंमें घमासान युद्ध होता रहा। माघशुक्ल नवमीको रात्रिके समय इन्द्रजित्‌ने युद्धमें श्रीराम और लक्ष्मणको नाग-पाशसे बाँध लिया। इससे प्रधान-प्रधान वानर जब सब ओरसे व्याकुल और उत्साहहीन हो गये तो दशमीको नाग-पाशका नाश करनेके लिये वायुदेवने श्रीरामचन्द्रजीके कानमें गरुड़के मन्त्रका जप और उनके स्वरूपका ध्यान बता दिया। ऐसा करनेसे एकादशीको गरुड़जीका आगमन हुआ। फिर द्वादशीको श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे धूम्राक्षका वध हुआ। त्रयोदशीको भी उन्हींके द्वारा कम्पन नामका राक्षस युद्धमें मारा गया। माघशुक्ल चतुर्दशीसे कृष्णपक्षकी प्रतिपदातक तीन दिनमें नीलके द्वारा प्रहस्तका वध हुआ। माघ कृष्ण द्वितीयासे चतुर्थीपर्यन्त तीन दिनोंतक तुमुल युद्ध करके श्रीरामने रावणको रणभूमिसे भगा दिया। पंचमीसे अष्टमीतक चार दिनोंमें रावणने कुम्भकर्णको जगाया और जागनेपर उसने आहार ग्रहण किया। फिर नवमीसे चतुर्दशीपर्यन्त छः दिनोंतक युद्ध करके श्रीरामने कुम्भकर्णका वध किया। उसने बहुत-से वानरोंको भक्षण कर लिया था। अमावास्याके दिन कुम्भकर्णकी मृत्युके शोकसे रावणने युद्धको बंद रखा। उसने अपनी सेना पीछे हटा ली। फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदासे चतुर्थीतक चार दिनोंके भीतर विसतनु आदि पाँच राक्षस मारे गये। पंचमीसे सप्तमीतकके युद्धमें अतिकायका वध हुआ। अष्टमीसे द्वादशीतक पाँच दिनोंमें निकुम्भ और कुम्भ मौतके घाट उतारे गये। उसके बाद तीन दिनोंमें मकराक्षका वध हुआ। फाल्गुन कृष्ण द्वितीयाके दिन इन्द्रजित्‌ने लक्ष्मणपर विजय पायी। फिर तृतीयासे सप्तमीतक पाँच दिन लक्ष्मणके लिये दवा आदिके प्रबन्धमें व्यग्र रहनेके कारण श्रीरामने युद्धको बंद रखा। तदनन्तर त्रयोदशीपर्यन्त पाँच दिनोंतक युद्ध करके लक्ष्मणने विख्यात बलशाली इन्द्रजित्‌को युद्धमें मार डाला। चतुर्दशीको दशग्रीव रावणने यज्ञकी दीक्षा ली और युद्धको स्थगित रखा। फिर अमावास्याके दिन वह युद्धके लिये प्रस्थित हुआ। चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे लेकर पंचमीतक रावण युद्ध करता रहा; उसमें पाँच दिनोंके भीतर बहुत-से राक्षसोंका विनाश हुआ। षष्ठीसे अष्टमीतक महापार्श्व आदि राक्षस मारे गये। चैत्र शुक्ल नवमीके दिन लक्ष्मणजीको शक्ति लगी। तब श्रीरामने क्रोधमें भरकर दशशीशको मार भगाया। फिर अंजना-नन्दन हनुमान्‌जी लक्ष्मणकी चिकित्साके लिये द्रोण पर्वत उठा लाये। दशमीके दिन श्रीरामचन्द्रजीने भयंकर युद्ध किया, जिसमें असंख्य राक्षसोंका संहार हुआ। एकादशीके दिन इन्द्रके भेजे हुए मातलि नामक सारथि श्रीरामचन्द्रजीके लिये रथ ले आये और उसे युद्धक्षेत्रमें भक्तिपूर्वक उन्होंने श्रीरघुनाथजीको अर्पण किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी चैत्र शुक्ल द्वादशीसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशीतक अठारह दिन रोषपूर्वक युद्ध करते रहे। अन्ततोगत्वा उस द्वैरथयुद्धमें रामने रावणका वध किया। उस तुमुल संग्राममें श्रीरघुनाथजीने ही विजय प्राप्त की। माघ शुक्ल द्वितीयासे लेकर चैत्र कृष्ण चतुर्दशीतक सतासी दिन होते हैं, इनके भीतर केवल पंद्रह दिन युद्ध बंद रहा। शेष बहत्तर दिनोंतक संग्राम चलता रहा। रावण आदि राक्षसोंका दाहसंस्कार अमावास्याके दिन हुआ। वैशाख शुक्ल प्रतिपदाको श्रीरामचन्द्रजी युद्धभूमिमें ही ठहरे रहे। द्वितीयाको लंकाके राज्यपर विभीषणका अभिषेक किया गया। तृतीयाको सीताजीकी अग्निपरीक्षा हुई और देवताओंसे वर मिला। इस प्रकार लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामने लंकापति रावणको थोड़े ही दिनोंमें

मारकर परमपवित्र जनककिशोरी सीताको ग्रहण किया, जिन्हें राक्षसने बहुत कष्ट पहुँचाया था। जानकीजीको पाकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे लंकामें लौटे। वैशाख शुक्ल चतुर्थीको पुष्पकविमानपर आरूढ़ होकर वे आकाशमार्गसे पुनः अयोध्यापुरीकी ओर चले। वैशाख शुक्ल पंचमीको भगवान् श्रीराम अपने दल-बलके साथ भरद्वाजमुनिके आश्रमपर आये और चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर षष्ठीको नन्दिग्राममें जाकर भरतसे मिले। फिर सप्तमीको अयोध्यापुरीमें श्रीरघुनाथजीका राज्याभिषेक हुआ। मिथिलेशकुमारी सीताको अधिक दिनोंतक रामसे अलग होकर रावणके यहाँ रहना पड़ा था। बयालिसवें वर्षकी उम्रमें श्रीरामचन्द्रजीने राज्य ग्रहण किया, उस समय सीताकी अवस्था तैंतीस वर्षकी थी। रावणका संहार करनेवाले भगवान् श्रीराम चौदह वर्षोंके बाद पुनः अपनी पुरी अयोध्यामें प्रविष्ट होकर बड़े प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् वे भाइयोंके साथ राज्यकार्य देखने लगे। श्रीरघुनाथजीके राज्य करते समय ही अगस्त्यजी, जो एक अच्छे वक्ता हैं तथा जिनकी उत्पत्ति कुम्भसे हुई है, उनके पास पधारेंगे। उनके कहनेसे श्रीरघुनाथजी अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करेंगे। सुव्रत! भगवान्‌का वह यज्ञसम्बन्धी अश्व तुम्हारे आश्रमपर आवेगा तथा उसकी रक्षा करनेवाले योद्धा भी बड़े हर्षके साथ तुम्हारे आश्रमपर पधारेंगे। उनके सामने तुम श्रीरामचन्द्रजीकी मनोहर कथा सुनाओगे तथा उन्हीं लोगोंके साथ अयोध्यापुरीको भी जाओगे। द्विजश्रेष्ठ! अयोध्यामें कमलनयन श्रीरामका दर्शन करके तुम तत्काल ही संसारसागरसे पार हो जाओगे।'

मुनिश्रेष्ठ लोमश सर्वज्ञ हैं; उन्होंने मुझसे उपर्युक्त बातें कहकर पूछा—'आरण्यक! तुम्हें अपने कल्याणके लिये और क्या पूछना है?' तब मैंने उनसे कहा—'महर्षे! आपकी कृपासे मुझे भगवान् श्रीरामके अद्‌भुत चरित्रका पूर्ण ज्ञान हो गया। अब आपहीके प्रसादसे मैं उनके चरणकमलोंको भी प्राप्त करूँगा।' ऐसा कहकर मैंने मुनीश्वरको प्रणाम किया। तत्पश्चात् वे चले गये। उन्हींकी कृपासे मुझे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी पूजन-विधि भी प्राप्त हुई है। तबसे मैं सदा ही श्रीरामके चरणोंका चिन्तन करता हूँ तथा आलस्य छोड़कर बारम्बार उन्हींके चरित्रका गान करता रहता हूँ। उनके गुणोंका गान मेरे चित्तको लुभाये रहता है। मैं उसके द्वारा दूसरे लोगोंको भी पवित्र किया करता हूँ तथा मुनिके वचनोंका बारम्बार स्मरण करके भगवत्-दर्शनकी उत्कण्ठासे पुलकित हो उठता हूँ। इस पृथ्वीपर मैं धन्य हूँ; कृतकृत्य हूँ और परम सौभाग्यशाली हूँ, क्योंकि मेरे हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंको देखनेकी जो अभिलाषा है, वह निश्चय ही पूर्ण होगी। अतः सब प्रकारसे परम मनोहर श्रीरामचन्द्रजीका ही भजन करना चाहिये। संसार-समुद्रके पार जानेकी इच्छासे सब लोगोंको श्रीरघुनाथजीकी ही वन्दना करनी चाहिये।*

* धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सभाग्योऽहं महीतले। रामचन्द्रपदाम्भोजदिदृक्षा मे भविष्यति॥
तस्मात्सर्वात्मना रामो भजनीयो मनोहरः। वन्दनीयो हि सर्वेषां संसाराब्धितितीर्षया॥ (३६।८९-९०)

अच्छा, अब तुमलोग बताओ, किसलिये यहाँ आये हो? कौन धर्मात्मा राजा अश्वमेध नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान कर रहा है? ये सब बातें यहाँ बतलाकर अश्वकी रक्षाके लिये जाओ और श्रीरघुनाथजीके चरणोंका निरन्तर स्मरण करते रहो।'

आरण्यक मुनिके ये वचन सुनकर सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए उनसे बोले—'ब्रह्मर्षिवर! इस समय आपका दर्शन पाकर हम सब लोग पवित्र हो गये; क्योंकि आप श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुनाकर यहाँ सब लोगोंको पवित्र करते रहते हैं। आपने हमलोगोंसे जो कुछ पूछा है, वह सब हम बता रहे हैं। आप हमारे यथार्थ वचनको श्रवण करें। महर्षि अगस्त्यजीके कहनेसे भगवान् श्रीराम ही सब सामग्री एकत्रित करके अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान कर रहे हैं। उन्हींका यज्ञसम्बन्धी अश्व यहाँ आया है और उसीकी रक्षा करते हुए हम सब लोग भी अश्वके साथ ही आपके आश्रमपर आ पहुँचे हैं। महामते! यही हमारा वृत्तान्त है; आप इसे हृदयंगम करें।'

रसायनके समान मनको प्रिय लगनेवाला यह उत्तम वचन सुनकर राम भक्त ब्राह्मण आरण्यक मुनिको बड़ा हर्ष हुआ। वे कहने लगे—'आज मेरे मनोरथरूपी वृक्षमें फल आ गया, वह उत्तम शोभासे सम्पन्न हो गया। मेरी माताने जिसके लिये मुझे उत्पन्न किया था, वह शुभ उद्देश्य आज पूरा हो गया। आजतक हविष्यके द्वारा मैंने जो हवन किया है, उस अग्निहोत्रका फल आज मुझे मिल गया; क्योंकि अब मैं श्रीरामचन्द्रजीके युगल-चरणारविन्दोंका दर्शन करूँगा। अहा! जिनका मैं प्रतिदिन अपने हृदयमें ध्यान करता था, वे मनोहर रूपधारी अयोध्यानाथ भगवान् श्रीराम निश्चय ही मेरे नेत्रोंके समक्ष होकर दर्शन देंगे। हनुमान्‌जी मुझे हृदयसे लगाकर मेरी कुशल पूछेंगे। वे संतोंके शिरोमणि हैं; मेरी भक्ति देखकर उन्हें बड़ा सन्तोष होगा।' आरण्यक मुनिके ये वचन सुनकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने उनके दोनों चरण पकड़ लिये और कहा—'ब्रह्मर्षे! मैं ही हनुमान् हूँ, स्वामिन्! मैं आपका सेवक हूँ और आपके सामने खड़ा हूँ। मुनीश्वर! मुझे श्रीरघुनाथजीके दासकी चरण-धूलि समझिये।' हनुमान्‌जी श्रीरामभक्त होनेके कारण अत्यन्त शोभा पा रहे थे। उनकी उपर्युक्त बातें सुनकर आरण्यक मुनिको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने हनुमान्‌जीको हृदयसे लगा लिया। दोनोंके हृदयमें प्रेमकी धारा फूटकर बह रही थी। दोनों ही आनन्दसुधामें निमग्न होकर शिथिल एवं चित्रलिखित-से प्रतीत हो रहे थे। श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंके प्रेमसे दोनोंका ही मानस भरा हुआ था। अतः दोनों ही बैठकर आपसमें भगवान्‌की मनोहारिणी कथाएँ कहने लगे। मुनिश्रेष्ठ आरण्यक श्रीरामके चरणोंका ध्यान कर रहे थे। हनुमान्‌जीने उनसे यह मनोहर वचन कहा—'महर्षे! ये श्रीरघुनाथजीके भ्राता महावीर शत्रुघ्न आपको प्रणाम कर रहे हैं। ये उद्भट वीरोंमें सेवित भरतकुमार पुष्कल भी आपके चरणोंमें शीश झुकाते हैं तथा इधरको ओर जो ये महान् बली और अनेक गुणोंसे विभूषित सज्जन खड़े हैं, इन्हें श्रीरघुनाथजीके मन्त्री समझिये। अत्यन्त भयंकर योद्धा महायशस्वी राजा सुबाहु भी आपको प्रणाम करते हैं। ये श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका मकरन्द पान करनेवाले मधुकर हैं। ये राजा सुमद हैं, जिन्हें पार्वतीजीने श्रीरघुनाथजीके चरणोंकी भक्ति प्रदान की है, जिससे ये संसार-समुद्रके पार हो चुके हैं; ये भी आपके चरणोंमें नमस्कार करते हैं। जिन्होंने अपने सेवकके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीके अश्वको आया हुआ सुनकर अपना सारा राज्य ही भगवान्‌को समर्पण कर दिया है, वे राजा सत्यवान् भी पृथ्वीपर माथा टेककर आपके चरणोंमें प्रणाम करते हैं।'

हनुमान्‌जीके ये वचन सुनकर आरण्यक मुनिने बड़े आदरके साथ सबको हृदयसे लगाया और फल-मूल आदिके द्वारा सबका स्वागत-सत्कार किया। फिर शत्रुघ्न आदि सब लोगोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ महर्षिके आश्रमपर निवास किया। प्रातःकाल नर्मदामें नित्यकर्म करके वे महान् उद्योगी सैनिक आगे जानेको उद्यत हुए। शत्रुघ्नने आरण्यक मुनिको पालकीपर बिठाकर अपने सेवकोंद्वारा उन्हें श्रीरघुनाथजीकी निवासभूत अयोध्या-